Digitized by Arya Samaj Foundation

सारिका

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

कहानियों और कथाजगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : 25; अंक : 392; 1 से 15 नवंबर, 1985

संपादक
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक
रमेश बत्तरा
सुरेश उनियाल
बलराम
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन
सज्जा
सुमीता

कथा-पीढ़ी विशेषांक : दो

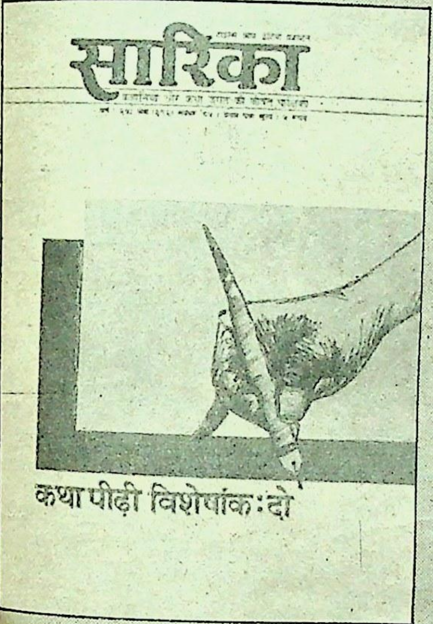

आवरण : आनंद

कहानियां

10. लोक-परलोक:
अमर कांत
14. ...भाग गया :
राजेंद्र यादव
17. इक्कीसवीं सदी में:
हरिशंकर परसाई
18. दंगा:
श्रीलाल शुक्ल
22. देवेन:
भीष्म साहनी
27. संधि:
कुंवर नारायण
36. राजपूत और राजपूत
ठाकुर प्रसाद सिंह
40. अफवाहें
हृदयेश
48. कुश्ती
मुद्राराक्षस
52. दमरी की खोज में
विवेकी राय
58. नाजायज कब्जा
यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र'
62. वह औरत
रामदरश मिश्र
64. दिल्ली कहां है ?
महीप सिंह

पीढ़ियां : आमने-सामने

31. जहां तक ज़िंदगानी है, कहानी ही कहानी है:
शिवप्रसाद सिंह, बच्चन सिंह, काशीनाथ सिंह, अब्दुल बिस्मिल्लाह एवं दानिश का विचार-विमर्श

साक्षात्कार

56. "मैं अपने आप को फुर्सत नहीं देना चाहता!":
रमेश बक्षी से महेश दर्पण की बातचीत

स्थायी स्तंभ

6. आपकी बात
9. अपनी बात
68. हलचल:कथापर्व
71. पखवारे की पुस्तकें

संपादकीय पता : सारिका, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

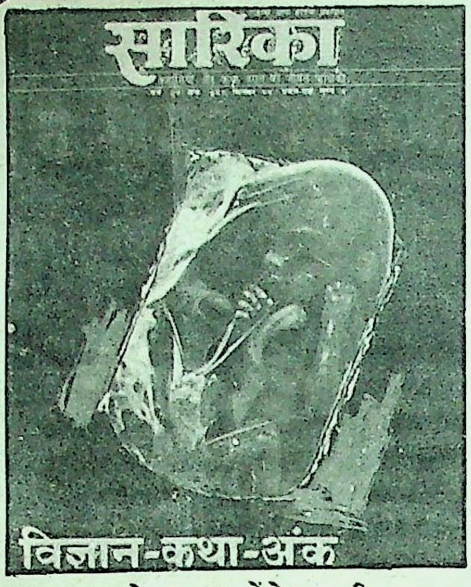

शिकायत का भी तो मौका दें

सारिका की विवश होकर प्रशंसा करनी पड़ रही है. विवश होकर इसीलिए कि मात्र प्रशंसा ही अच्छी नहीं मानी जाती, किंतु आप शिकायत का मौका ही नहीं दे रहे हैं. एक के बाद एक विशेषांक ने चौंधिया तो दिया है, यद्यपि, इस बहुआयामी विविधता ने पाठकों का जो भला किया है, उसे वे बाद में समझ पायेंगे.

विज्ञान कथा अंक ने तो एक प्रमुख साहित्यिक विधा में विश्व की श्रेष्ठतम रचनाओं ने दर्शन करा दिए. जिस विधा को दुर्भाग्यवश हमारे यहां 'असाहित्यिक' माना जाता रहा है, हां, अनुवाद में प्रायः भूलें रह जाती हैं.

चंद्रमा में थोड़े कलंक की भांति, नजर न लगने के हेतु सारिका की ऐसी भूलें स्वीकार्य हैं, इसी हेतु, दाम बढ़ने की बात भी नहीं उठा रहा हूं.

o चंद्रमोहन प्रधान, मुजफ्फरपुर

सारिका की अंतरात्मा

मैं सारिका का लगभग सन् 80 से नियमित पाठक हूं लेकिन बहुत चाहकर भी अपनी राय व्यक्त नहीं कर पाया. हो सकता है यह मेरी मजबूरी ही रही हो. लेकिन आज मैं कुछ पहलुओं पर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं. आप यह तो जानते ही हैं कि सारिका के सुधी पाठकगण इसके निरंतर बाढ़ की तरह बढ़ते हुए मूल्य को नजर अंदाज करके इसकी उपयुक्तता को सार्थक सिद्ध कर रहे हैं. फिर भी आपने कभी उन के मनोभावों को पढ़ने की शायद ही कोशिश की हो. यह मैं दावे के साथ लिख सकता हूं कि सारिका के माध्यम से जो बात हम पाठकगण तक पहुंचती है वह काफी स्तरीय होती है और मेरी समझ में सारिका साहित्य की अच्छी पत्रिकाओं में से एक है.

इसकी प्रत्येक कहानी में एक विशेष-तरह की नवीनता होती है, जो इसकी अपनी एक विशेषता है. लेकिन अब इसमें एक कमी अवश्य खटकने लगी है. वह यह कि जहां आपने सारिका की अंतरात्मा (लघुकथा और गजल) बाहर निकाल फेंकी है, वहीं दिन-प्रतिदिन व्यावसायिकता का सफल समावेश करते जा रहे हैं. यदि इसका प्रवाह इसी तरह बढ़ता रहा तो हम पाठकों को मजबूर होकर अपनी इस प्रिय पत्रिका को अंतिम विदाई देनी ही पड़ जायेगी.

o जयप्रकाश ओझा, इलाहाबाद

इसे क्या कहेंगे आप?

सारिका के रजत जयंती वर्ष में दो बार मूल्य वृद्धि से इसके पाठकों के साथ मेरी समझ में, न्याय नहीं हुआ है. 43 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी किस प्रकार उचित ठहरती है, इसे सारिका परिवार ही समझ सकता है. सारिका का कलेवर 'रविवार' से भिन्न नहीं है, परंतु दोनों के मूल्यों में बहुत भिन्नता है. रजत जयंती वर्ष में सारिका का नियमित पाठक बनने की योजना में अब व्यवधान नजर आता है. सारिका के प्रति स्नेह और इसके मूल्य में अब सामंजस्य बिठा पाना मुश्किल पड़ रहा है.

o अमरनाथ सिंह बिष्ट, रुड़की

आनेवाला कल

वाकई विज्ञान की भयावहता मानवता को किस काल-कोठरी में ले जा रही है?. . . अज्ञान प्रतिक्रिया. . . यह काल ही बतायेगा. काल एक 'टेंस' है, इसलिए काल को 'टेंशन' भी कहा जा सकता है. यह बहुत ही खराब बीमारी है—'मानवता' की. बिल्कुल कैंसर की तरह.

'हठधर्मी' (अलफर्ड बैस्टर की कलम की जुबान) यह सिद्ध करती है कि आनेवाला समय पूरी तरह विज्ञान के चंगुल में होगा. . . क्या हो सकता है ?. . भयावहता ! क्या इस भयावहता का कोई विकल्प है ?. . . शायद नहीं. क्योंकि आज का विज्ञान खुद विज्ञान के चंगुल में है. उसकी तो खुद की त्रासदियों के आयाम हैं.

यह 'टेंस' का 'टेंशन' इंसान को बिल्कुल मशीन बना चुका है. उसकी विशेषता 'हठधर्मिता' है. क्योंकि इसमें 'चेतन' नहीं है. यह कठोर है. इसलिए यह 'चेतनहीन' है.

'चेतनहीन'. तभी तो टॉम मुस्कुरा रहा था. आदमी और मशीन तथा मशीन और आदमी आपस में इतने मिल गये हैं कि उनमें विभेद करना कठिन है. हम अब तो भेद करते भी नहीं, हमने समन्वय (बिल्कुल चेतनहीनता का एहसास) कर लिया है.

o अरुण अभिषेक, पूर्णियां

अब नहीं खरीदूंगा

सारिका का **विज्ञान कथा अंक** सिर्फ देख पाया. हिम्मत नहीं हुई खरीदने की. पिछले कुछ वर्षों में **सारिका** (पत्रिकाओं) के बढ़ते मूल्यों के समक्ष आज मेरी बेरोजगार पर उदार जेब ने आत्म समर्पण कर दिया है. मैं जानता हूं आपके पास वही पुराना बहाना तैयार है 'कागज एवं अन्य सामग्रियों के मूल्य में असाधारण वृद्धि'. पिछले तीन वर्षों से मैं पढ़ने-लिखने के लिए कागज एक ही दाम (दो रुपये प्रति जिल्दे) पर खरीद रहा हूं. जब कि सारिका के मूल्य में दूनी वृद्धि हुई है. स्कूल के दिनों से पढ़ रहा था इसे, रिश्ता टूटने का दुख है मुझे. खैर, शुभेच्छु हूं मैं, पर अब खरीदूंगा नहीं.

● समीर मिश्र, सिंदरी (बिहार)

महंगा कौन, सस्ता कौन?

बड़ी निराशा हुई, **सारिका** की मूल्य वृद्धि पर. पांच तो क्या पंद्रह भी हो जाए तो भी सारिका खरीद कर ही पढ़ूंगा. लेकिन उस व्यवस्था का क्या करूं जो इलेक्ट्रानिक्स को सस्ता कर साहित्य को महंगा कर रही है? आम जनता को साहित्य से काटने की शासक वर्ग की इच्छा तो फलीभूत हो रही है लेकिन इसकी बहुत बड़ी कीमत देश को चुकानी पड़ेगी.

● असित, अरगडा, हजारीबाग (बिहार)

विज्ञान, विज्ञान, विज्ञान

विज्ञान जैसा गूढ़ विषय वैसे भी हिंदी में काफी कम है. फिर कहानी जैसी विधा में तो इसका अभाव ही है. हिंदी की साहित्यिक पत्रिकाएं विज्ञान कथाएं तो कभी-कभी देती रही हैं लेकिन **विज्ञान कथा विशेषांक** निकालने का साहस शायद सर्वप्रथम **सारिका** ने ही किया है. एक साथ ढेर सारे देशी-विदेशी विज्ञान कहानीकारों की प्रसिद्ध कृतियों को देकर आपने विज्ञान पाठकों और विज्ञान लेखकों का काफी उत्साह बढ़ाया है. आपको ढेर सारी बधाई. मेरा सुझाव है कि हर अंक में कम से कम एक विज्ञान कथा जरूर दें.

इस अंक की **'रोसुम के यंत्र मानव', 'हठधर्मी', 'एक मशीन एक वैज्ञानिक', 'नया विमान',**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बदला हुआ प्रेमी', 'मृत्युंजयी' कहानियां विशेष पसंद आयीं.

o विजय जी, इलाहाबाद-212106

मेरा कस्बा और इक्कीसवीं सदी

विज्ञान-कथा अंक प्रकाशित कर आपने उत्तरी भारत के एक कस्बे में बैठे मेरे जैसे एक युवा मन को कुरेद दिया.

अब अपने कस्बे को देखता हूं और इक्कीसवीं सदी को. गनीमत है कंप्यूटरी सपने नहीं आते रात को. घर के दरवाजे के सामने से 'चर्र-चों...चर्र-चों' करती हुई एक बैलगाड़ी निकल गयी. हाथ में ठीक उसी समय आपकी सारिका का विज्ञान-कथा अंक था. बधाई.

o विनयविहारी सिंह, बलिया (उ. प्र.)

कंप्यूटर युग का साहित्य

विज्ञान-कथा अंक बहुत ही अच्छा रहा. आद्योपांत पढ़कर मन प्रसन्न हो उठा.

सुधांशु गुप्त द्वारा आयोजित परिचर्चा—'कैसा होगा कंप्यूटर युग का मानव और उसका साहित्य' में विभिन्न लेखकों के प्रस्तुत विचार रोचक, मनोरंजक एवं महत्वपूर्ण रहे. निश्चय ही कंप्यूटर युग मानव इतिहास का एक महत्वपूर्ण कालखंड होगा, जिसमें मानव के व्यक्तित्व के विकास की संभावनाएं घट जायेंगी तथा यंत्रों का महत्व बढ़ जायेगा.

परंतु उपरोक्त मशीनी-संस्कृति से सबसे अधिक प्रभावित तथा लाभान्वित देश का तथाकथित उच्च संपन्न समाज ही होगा, शेष लोगों के जीवन में अपेक्षित परिवर्तन आने की संभावना कम ही है. जहां तक उस समय के साहित्य का प्रश्न है, साहित्य समाज का दर्पण होता है, जिस प्रकार कि उस समय का समाज मशीनों पर आश्रित होगा, साहित्य भी कृत्रिम एवं छिछला होगा.

ऐसे तो कंप्यूटर युग की उपरोक्त संस्कृति पूज्य महात्मा गांधी के 'मशीनों पर आश्रित न रहो' सिद्धांत के सर्वथा विपरीत है. देखना है कि भारत जैसे ग्राम्य प्रधान देश में वह सफल होती है अथवा नहीं.

o शकुनचंद गुप्त विशारद, रायबरेली

एक नया कीर्तिमान

सारिका एक ही वर्ष में लगातार दो बार अपनी कीमत में वृद्धि करके एक नये कीर्तिमान की स्थापना में योगदान का श्रेय ले रही है. इसमें दो मत नहीं हैं, किसी भी पत्रिका ने संभवतः एक साल में अपने मूल्य में चालीस प्रतिशत वृद्धि नहीं की है. साढ़े तीन रुपये से चार रुपये एवं चार रुपये से पांच रुपये...और अभी साल में तीन माह बाकी हैं! आखिर आप सभी का इरादा क्या है? कृपया स्पष्ट ही कर दें. क्या विज्ञापन में कुछ अंश की बढ़ोत्तरी करके पाठकों पर पड़ रहे बोझ को सारिका हल्का नहीं कर सकती थी. जबकि लेखकों का पारिश्रमिक उस अंश में सारिका नहीं बढ़ा पायी है. यह भी निर्विवाद है. इस मुद्दे पर मैं सारिका पाठकों के भी विचार जानना चाहूंगा. आखिर सारिका पाठक की जेब से कितना चाहती है? रजत जयंती विशेषांकों की परंपरा में लघुकथा-विशेषांक क्यों नहीं...?

o अतुलमोहन प्रसाद, गिरिडीह

विज्ञान और मानवीय संवेदना

विज्ञान-कथा अंक सामयिक पकड़ को सिद्ध करता है. पढ़ने के बाद निश्चित रूप से ऐसा कोई पाठक न होगा जिसने भविष्य के प्रति किसी भी तरह का अपना वैचारिक परिणाम लेने से वंचित रहा हो, चाहे वह विज्ञान के चरमोत्कर्ष की कल्पना हो या मानवता के प्रति संदेहास्पद स्थिति की हो.

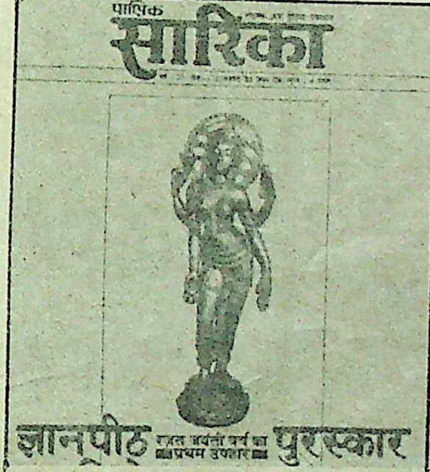

एक अच्छा काम

आपने चाहा और हमने किया

सारिका के 'ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथाकार विशेषांक' (1 व 2) पाठकों को इतने रोचक, ज्ञानवर्धक लगे कि वे इन्हें संभालकर रखना चाहते हैं. आपकी सुविधा के लिए हमने ये दोनों विशेषांक एक साथ जिल्द करवा दिये हैं, मूल्य वही 8 रुपये. डाक से मंगवाने पर 10 रुपये. मनीआर्डर/पोस्टल आर्डर/ड्राफ्ट कृपया इस पते पर भेजें :—

प्रसार मैनेजर,
टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन,
7, बहादुरशाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002

मस्तिष्क में कुछ प्रश्नचिन्ह उठते हैं कि क्या प्रत्येक मानव इस यांत्रिक युग की विकास-धारा में प्रवाहित होकर मानवता के प्रति स्वाभाविक व्यवहारिकता को छोड़ देगा? इन सबके बावजूद हम इस तर्क की स्थिति में हैं कि ये यंत्र-मानव और यह यांत्रिकी व्यवस्था सभी मानव हित के लिए मानव मस्तिष्क की खोजें हैं न कि मानव का उद्भव इन पर आधारित है.

जैसा कि इस अंक की प्रत्येक कहानी यंत्रों की कहानी तो कहती है, लेकिन कहीं भी वो अपने पात्रों की मानवीय संवेगां, आवेगों एवं संवेदनशीलता को नहीं छोड़ पाती है, जो शाश्वत हैं.

निष्कर्ष यह है कि जब तक मानव का अस्तित्व इस संसार में है, तब तक निरंतर मानवीय संवेदनशीलता मानव का हित सोचती रहेगी और ये यंत्र तो मानव की विकासवादिता का बहुत छुद्र अंश हैं जो मनुष्य को शिथिलता दे सकते हैं, नष्ट कर सकते हैं, लेकिन मानवीय ईर्ष्या, द्वेष, स्नेह, सुख, दुख, मिलन-विछोह जैसी अनुभूतियों का अनुभव नहीं, जिसे मात्र श्रद्धा और मनु ही करेंगे.

o राजकिशोर चुन्नू, फतेहपुर

आठ से एक सौ बीस तक

सारिका का विज्ञान-कथा अंक पाकर जो प्रसन्नता हुई, वह विद्युत-रेख की तरह उसकी मूल्यवृद्धि की सूचना पढ़कर विलीन हो गयी. मैं सारिका का 1966 से नियमित पाठक हूं, जब सारिका का वार्षिक चंदा मात्र 8.00 (आठ) रुपये था. अब प्रतिवर्ष 120.00 रुपये खर्च करना बड़ा दूभर प्रतीत हो रहा है. यही बात अन्य पत्रिकाओं के साथ भी है. मेरे पास जून 1966 से अद्यतन धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, सारिका के समस्त अंक सुरक्षित हैं. 1967 से 1972 तक की नयी कहानियों के भी 75 अंक हैं. अब मेरी स्थिति दोराहे पर रुके हुए दुविधा ग्रस्त राही की है.

पहली राय यह है कि पिछले सभी अंकों को, अगर कहीं इसकी उपयोगिता हो तो, समूल्य सौंप दूं या रद्दी के मूल्य बेच दूं. क्योंकि इन पत्रिकाओं की बढ़ी हुई कीमत ने यह सोचने के लिए विवश कर दिया है कि अब पत्रिकाएं खरीदी जायें या नहीं. पत्र लिखने का उद्देश्य यही है कि अगर कोई संस्था या व्यक्ति इन पत्रिकाओं को महत्वपूर्ण समझें तो लिखें और मेरी समस्या का अंत कर दें अन्यथा वणिक-पुत्रों के पास पहुंचना तो इनकी नियति बन ही चुकी है.

o हरि किशोर सिंह, जीरादई, सीवान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भई ! अपनी-अपनी पसन्द है...

कल मेरी रीता से बात हुई।

मैने उसे बताया –
मैं तो बड़ा होकर कमांडर बनूंगा – आर्मी का
वह बोली –
मैं तो स्टार बनूंगी – फिल्म स्टार
अपनी अपनी पसंद है

पर कुछ मामले में हमारी पसंद एक है जैसे
आलिमेसा बेबी मसाज आयल

आखिर बड़ा होकर जो कुछ बनना हो, उस के
लिए चाहिए मजबूत हड्डियां और स्वस्थ्य शरीर
और इसके लिए चाहिए आलिमेसा

सिनथैटिक/सुगंध रहित

आलिमेसा

बेबी मसाज आयल

निर्माता :

शलक्स कैमिकल्स

प्रबंध कार्यालय : पूजा हाउस, मिलन काम्पलेक्स, नई दिल्ली-110 015

विजेता
INTERNATIONAL TRADEFARE DIAMOND STUDDED
PURE DIAMOND AWARD
1980-81

BDK 1205-85

हर बड़े कैमिस्ट व जनरल स्टोर पर उपलब्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

हमारी कथा-पीढ़ी विशेषांक योजना का हर जगह काफी स्वागत हुआ है और लगभग सभी अग्रज और युवा लेखकों से 'सारिका' को पूर्ण सहयोग और समर्थन मिला है. इसके लिए मैं उन सबका आभारी हूं. आजादी के बाद स्थापित हुई दूसरी जीवंत पीढ़ी के रचनाकारों की कथा प्रज्ञा आपके सामने है. ये वे रचनाकार हैं, जिन्होंने चिंतन, मानसिकता, नयी मान्यताओं और नये मूल्यों के आधार पर हिंदी कहानी को नया मोड़ दिया था और उसे नये आजाद भारत की कल्पना के साथ जोड़ा था. इन्होंने कहा था कि अब स्थितियां बदल गयी हैं, जिंदगी के अर्थ बदल रहे हैं, नये आदर्शों की परिकल्पना शुरू हो गयी है, इसलिए कहानी को भी बदलना चाहिए... और सचमुच ये सब एकजुट होकर कहानी की दिशा बदलने में लग गये थे. हिंदी कहानी को पहली बार एक व्यापक और सार्थक आंदोलन मिला था जिसका नाम था 'नयी कहानी आंदोलन'. आज की कहानी जहां भी खड़ी है वह अपनी नींव के रूप में उस आंदोलन को नकार नहीं सकती.

हिंदी कहानी का वह एक ऐसा दौर था जिसे ऐतिहासिक शब्दावली में स्वर्ण युग भी कह सकते हैं. उस समय की कहानियां लोगों को आज तक बड़े गर्व के साथ ज्यों की त्यों याद हैं.—गदल (रांगेय राघव), मलबे का मालिक (मोहन राकेश), यही सच है (मन्नू भंडारी), जहां लक्ष्मी कैद है (राजेंद्र यादव), परिंदे (निर्मल वर्मा), कोसी का घटवार (शेखर जोशी), गुलकी बन्नो (डॉ. धर्मवीर भारती), तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम (फणीश्वर नाथ रेणु), डिप्टी कलेक्टरी (अमरकांत), चीफ की दावत (भीष्म साहनी), वापसी (उषा प्रियंवदा) आदि कहानियां और उनके कहानीकार निश्चय ही हिंदी कथा-जगत की अमूल्य धरोहर हैं. इस विशेषांक में उसी दस्तावेजी दौर के महत्वपूर्ण रचनाकार हिस्सा ले रहे हैं.

इसी दौर में अन्य भारतीय भाषाओं की कहानियों तथा विश्व कथांचल में हिंदी कहानी ने अपनी स्पष्ट पहचान बनायी थी. इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रेमचंद आदि अग्रज लेखकों की भूमिका के महत्व को कम किया जाये, उन्होंने तो हिंदी को सही कहानी दी ही थी. जहां तक मैं समझता हूं, नयी कहानी के इन रचनाकारों ने प्रेमचंद की कथा-परंपरा को कभी नहीं नकारा. इन लोगों ने प्रेमचंद की विरासत को न सिर्फ सुरक्षित रखा बल्कि समृद्ध भी किया.

मेरा व्यक्तिगत विचार यह है कि हिंदी कहानी को वही एक ऐसा आंदोलन मिला था जिसमें कहानी लेखन के लिए किसी भी तरह के फार्मूले नहीं बने थे. यही कारण है कि कथ्य और शिल्प के धरातल पर जितनी विविधता उस समय की कहानियों में दिखायी देती है उतनी बाद के आंदोलनों से जुड़ी कहानियों में नहीं दिखायी देती. इसी दौर में कथाकारों ने हिंदी कहानी की समीक्षा का दायित्व भी संभाल लिया था. किसी भी लेखक द्वारा समीक्षक के तेवर अख्तियार करना उचित और सही है या नहीं, यह एक अलग बात है. लेकिन यह सच है कि मात्र कथाकार-समीक्षकों ने ही हिंदी कहानी की समीक्षा के लिए नये औजारों की तलाश शुरू की थी. पारंपरिक समीक्षकों के पास काव्य-समीक्षा के औजार थे और वे उन्हीं औजारों को कथा समीक्षा पर भी इस्तेमाल करते रहे.

कथा-पीढ़ी विशेषांकों के लिए हमारे आग्रह पर इतनी रचनाएं हमें मिली हैं कि लगता है, 'सारिका' के दो और संयुक्त पीढ़ी विशेषांक हमें निकालने पड़ेंगे. स्थान सीमा के कारण तथा विलंब से रचना मिलने के कारण जिन सम्मानित रचनाकारों की रचनाएं इन अंकों में नहीं जा पा रहीं, उन्हें हम संयुक्त पीढ़ी विशेषांकों में प्रकाशित करेंगे. जो रचनाकार इन अंकों में रह गये हैं या रह जायेंगे उसका कारण मात्र समय और स्थान की सीमा ही है. हम उनके सहयोग के लिए आभारी हैं.

हम विश्वास दिलाते हैं कि हमारे मन में सभी रचनाकारों के प्रति समान सम्मान भाव है और रहेगा.

प्रेमचंद की कथा-परंपरा और ये समकालीन कहानियां

BDK 1205-85

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक परलोक

अमरकांत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मेरे घर से एक फलांग की दूरी पर एक चुंगी घर है, वह उसी के बरामदे में सोता था. कई जगह काम किया, पर मैं जितना देता था, उतना किसी ने नहीं दिया. मुझे उसके बारे में रिपोर्ट मिलती रहती थी. सुनने में आया कि वह मजदूरों के जुलूस में नारा लगा रहा है. इसी तरह इन लोगों का जीवन बीतता है. कभी कुछ, कभी कुछ! अभी परसों ही मुझे पता लगा कि वह. . . . !"—रूपवाद को नकारकर जीवन के यथार्थ को कलम की जरूरत मानने वाले कथाकार की कहानी कि धर्म, राजनीति और व्यक्तिवाद किस रूप में खतरा बनकर हमारी अखंडता पर आंच बनकर खड़े होते जा रहे हैं! . . . .

मुझे सुबह चाय-वाय पीने के बाद बरामदे में बैठकर अखबार पढ़ना अच्छा लगता है. बरसात की कचड़-पचड़ के बाद अब मौसम भी सूखा एवं खुशनुमा हो गया है. निर्मल, विस्तृत आकाश, चटख धूप और गह-गह अंजोरिया, पर उस रोज अखबार उठाया ही था कि दिनेश को एक व्यक्ति के साथ आते हुए देखा. दिनेश कभी मेरे साथ विश्वविद्यालय में पढ़ता था, पर उस समय का दुबला-पतला, चुप्पा और मामूली लड़का अब मोटा, बातूनी और बहुधंधी हो गया है. अब सिर बायीं ओर झुकाकर दोनों हाथों को झटके-से आगे-पीछे फेंकता हुआ चलता है, जैसे उससे संतुष्ट और उत्साही व्यक्ति इस दुनिया में कोई और नहीं है. चंदा उगाहने में उसको कमाल हासिल है. होली, दिवाली, दशहरा, दुर्गा पूजा आदि त्यौहारों की तो बात ही अलग है, अन्य कई समारोहों के सिलसिले में भी उसके दर्शन होते ही रहते हैं. कभी वह कोई कवि-सम्मेलन करा रहा है, कभी मुशायरा, कभी हरिकीर्तन और कभी रामायण का अखंड पाठ. एक महिला कव्वाल और एक पुरुष कव्वाल को एक ही समारोह में बुलाकर उनके बीच कव्वाली प्रतियोगिता कराना उसका खास सालाना शौक है. मैं उसके आने की उम्मीद भी कर रहा था, क्योंकि दुर्गा पूजा भी नजदीक आ रही थी.

मैं उठ खड़ा हुआ और नमस्कार-बंदगी करने के बाद उन्हें बगल में रखी कुर्सियों पर बिठाया. दिनेश अपने साथी का परिचय पहले ही दे चुका था, जिनका नाम माहेश्वर प्रसाद 'वैरागी' है. वह मोटे-तगड़े, लंबे और सांवले चालीस वर्षीय व्यक्ति हैं, जो पान भरे अपने मुंह को लगातार बकरी की तरह चला रहे थे और बीच-बीच में मुस्कराते हुए मुझे कनखी से देख भी लेते थे. उनकी बड़ी-बड़ी चमकती आंखों में यह भाव था कि उनके जैसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के बारे में हर व्यक्ति को जानकारी होनी ही चाहिए. खेद की बात यह थी कि यद्यपि सन् 1980 और सन् 1985 के संसदीय चुनाव में वह उम्मीदवार के रूप में खड़े हो चुके थे, फिर भी अखबारों का मेरा जैसा पढ़ाकू व्यक्ति कुछ मिनट पहले तक उनके अस्तित्व से अनभिज्ञ था.

घर के अंदर जब मैं चंदे की रकम लाने के लिए गया तो पत्नी को चाय-वाय बनाकर बाहर भेजने की हिदायत भी दे दी. बाहर आकर छोटे लड़के को सड़क के नुक्कड़ से पान लाने के लिए भेज दिया. इस बीच माहेश्वर प्रसाद 'वैरागी' मुस्करा-मुस्कराकर कई बार मेरी ओर कनखी से देख चुके थे, जैसे कोई राज की बात बताना चाहते हों. अब मैं भी निश्चिंत होकर बात करने के मूड में आ गया था, पर उसके पहले ही वैरागीजी के मुंह से वाणी के बुलबुले स्वतः ही फूट पड़े.

"क्या जमाना आ गया है साहब, किसी के लिए जान भी निकाल कर रख दीजिए, पर वह उसका उलटा मतलब लगाता है, पर मुझ पर इन बातों का कोई असर नहीं होता, मैं तो चुपचाप अपना काम करता रहूंगा. . . ."

मेरी समझ में कुछ नहीं आया, इसलिए मैंने बात को निश्चित दिशा देने के उद्देश्य से उनसे पूछा, "आप किस पार्टी से चुनाव में खड़े थे?"

"इन कलियुगी पार्टियों को तो अपने राम दूर से ही नमस्कार करते हैं. यह कहते हुए उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर माथे पर रखे, "मैं लंबी-चौड़ी बात नहीं करता. मेरे सोचने का अलग ढंग है, काम करने का अलग ढंग है. क्यों दिनेशजी?"

"अरे भाई साहब, यह भी कोई कहने की बात हुई साली! आदमी का तो काम बोलता है. अब आपसे कोई साली पार्टी क्या खाकर मुकाबला करेगी? लोग आते हैं, भाषण दे जाते हैं और जब काम करने का वक्त आता है तो तिड़ी हो जाते हैं. यह भी साली कोई राष्ट्र सेवा हुई?"

दिनेश की यह खूबी बताना मैं भूल ही गया कि अब उसकी कोई भी बात 'साला-साली' के बिना नहीं पूरी होती. खैर, उन लोगों की बातों में मुझे मजा आ रहा था, क्योंकि राजनीति में मेरी भी दिलचस्पी अच्छी-खासी थी. मैंने बहस के लहजे में पूछा, "आखिर कोई विचारधारा तो होगी ही आपकी?"

"सच बात सुनना चाहते हैं आप?"

"वाह, नेकी और पूछ-पूछ!"

"तो सुनिए भाई, मैं देश एवं जाति को सबसे अधिक महत्त्व देता हूं. मैं पार्टी नहीं जानता, मैं विचारधारा नहीं जानता, पर एक बात स्पष्ट कह सकता हूं कि मैं राजनारायण की हार से खुश हूं. और कुछ जानना चाहते हैं तो कान खोलकर सुनिए, मैं समाजवाद और साम्यवाद नहीं जानता, जनतंत्र-वनतंत्र को मैं बकवास समझता हूं, पर यह जरूर जानता हूं कि इस देश में अधिक से अधिक चार सौ और कम से कम एक सौ रुपयं लोगों की तनख्वाह होनी चाहिए."

"वाह भाई साहब, खूब कहा. अब यह हुई साली विचारधारा." दिनेश ने समर्थन किया.

वैरागीजी बेहद खुश थे. उन्होंने ऊंट की तरह गर्दन उचका कर मुझे एवं दिनेश को गर्व और विजय के भाव से देखा. इसी समय भीतर से चाय और नमकीन आ गयी. लड़का पान पहले ही दे गया था. चाय पीने के बाद वैरागीजी ने पान चबाया, दो बार बाहर जाकर थूका, फिर बोले, "अभी दो दिन पहले तक मैं बहुत परेशान था. क्या बताऊं, देश और जाति का जब मामला आता है तो मेरी तबीयत मानती नहीं. परसों शाम को कुछ राहत मिली . . . क्यों दिनेशजी?"

"यह काम ही साला ऐसा है भाई साहब!"

"अरे तो मैं भी सुनूं कुछ, भाई." मैंने चापलूसी वाली मुस्कराहट के साथ कहा.

"भैया, आप तो जानते हैं, मंडी में मेरी गल्ले की एक दूकान है . . ."

"अच्छा!" मुझे सचमुच इस नयी सूचना से अचंभा हुआ.

"मेरी दूकान में एक आदमी काम करता था. नाम, अकबर. वह गांव से भाग कर आया था . . ."

"भाग कर?" मैंने बीच में फिर टोका.

"हां, भाग कर. बड़े गरीब घर का था. खेत में मजदूरी करता था. बड़ी मुश्किल से रोजी-रोटी चलती थी. मां-बाप उसके मर चुके थे. स्वयं तो वह काला भुजंग था, पर बीवी बड़ी हसीन. कुछ मनसहकी भी. अकबर के भाग्य में सुख नहीं लिखा था. उसका एक दोस्त असलम बंबई में दर्जीगिरी करता था. जब वह कुछ दिनों के लिए गांव में आया तो दोस्त की बीवी को देखकर उसके मुंह में पानी भर आया. शौकीन तो वह था ही, जब देखो, तब अकबर के घर में घुसा रहता. उसने अकबर की बीवी को सिनेमा में हीरोइन बनाने का लालच दिया और अंत में जो होना था वही हुआ . . .

"अकबर ने मुझे जो बताया था, वही मैं आपसे कह रहा हूं. वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

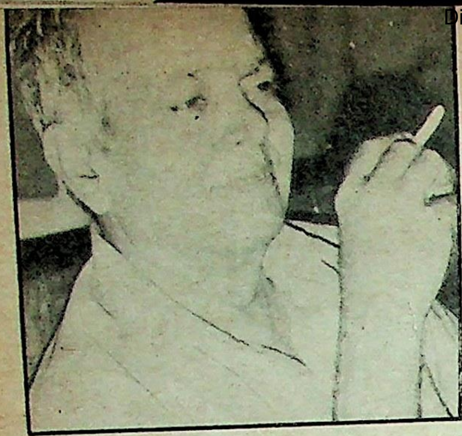

● अमरकांत

अपनी बीवी को जान से अधिक प्यार करता था. एक गोद का बच्चा था, उसे भी वह अपने साथ लेती गयी थी. अकबर का मन गांव से उचट गया. काम-धाम में उनकी तबीयत नहीं लगती.उसे बीवी एवं असलम से ही नहीं, बल्कि अपनी जाति-बिरादरी और पूरे गांव से ही नफरत हो गयी. वह एक दिन शहर भाग आया . . ."

"सीधे आपके पास आया होगा?" मैंने एक बच्चे की तरह जिज्ञासा प्रकट की.

"नहीं भाई, क्या मैं उसका कोई रिश्तेदार था?"

"फिर?"

"उसी मंडी में एक महापुरुष रहते हैं, जिनकी भी गल्ले की एक दूकान है. मैं महान व्यक्तियों का नाम नहीं लेता, आपको उनका नाम कभी मालूम भी हो जायेगा. यहां मैं उनको 'भाईजी' कहूंगा. भाईजी उसी संप्रदाय के हैं, जिस संप्रदाय का अकबर था आप दीया लेकर खोज आइए, भाईजी जैसा बेईमान और काइयां व्यक्ति दूसरा नहीं मिलेगा. हमेशा इसी फिराक में रहते हैं कि किस तरह उलटे उस्तरे से किसी को मूड़ा जाये. चेहरा गोरा है, पर दिल के बड़े काले हैं भाईजी, मुझसे तो बेहद जलते हैं. अगर एक पैसे का भी मेरा नुकसान होता हो तो वह वैसा करने से बाज नहीं आयेंगे. बड़े ही तुच्छ और नकलची हैं. जो मैं करता हूं वही वह करते हैं. अफसर लोग मेरी इज्जत करते हैं, पर भाईजी घूसखोरी से अफसरों को खुश रखते हैं. मेरी नकल करके अब वह भी पालियामेंट का चुनाव लड़ना चाहते हैं. इसीलिए वोट लेने के लिए उनकी उछल-कूद इधर अधिक ही बढ़ गयी है. . . . !"

"अभी खड़े नहीं हुए?"

"खड़े हो बच्चू. मैं तो चाहता हूं कि कुछ पैसा बरबाद करें, तभी आटा-दाल का भाव मालूम हो गया! ऐसे लोगों को तो जनता ही तमाचा मारती है. हां, तो मैं अकबर की बात कर रहा था. वह गांव से भागकर इस मंडी में सबसे पहले आया. भाईजी ने मीठी-मीठी बात करके और लालच देकर अकबर को फुसला लिया और उससे मुफ्त ही दूकान और घर का भी काम लेने लगे. . . ."

"साली दुनिया भी खूब है. . . . ." दिनेश ने हंसते हुए कहा.

"भाईजी ने एक साल तक उससे केवल खूराकी पर काम लिया. भैया, हमारे पास भी नौकर-चाकर रहते हैं; पर जाकर देखिए, हमेशा राजा की तरह रहते हैं. इतना खिलाता-पिलाता हूं कि ससुरों का पेट खराब हो जाता है," वैरागीजी हो-हो करके हंस पड़े, "तो भैया एक दिन अकबर ने भाईजी से कुछ पैसे मांगे. बस क्या था, अपनी आदत के मुताबिक भाईजी आपे के बाहर हो गये. उन्होंने गाली-गलौज और मार-पीट करके अकबर को निकाल बाहर किया. . . . ."

"अरे . . .!"

"हां, ऐसे-ऐसे पापी लोग रहते हैं इस दुनिया में. भैया, दुख में लोग मेरे पास ही दौड़े आते हैं. अकबर भी आकर फूट-फूटकर रोने लगा. मैंने उसे चुप कराया और हिम्मत बंधायी. फिर पाव भर ताजा जलेबी और कचौड़ियां मंगाकर उसे नाश्ता कराया. खाकर मस्त हो गया वह. मैंने कहा, "जब तक इच्छा हो, यहां रहो दूकान को अपना घर समझो."

सहसा वैरागीजी चुप होकर दिनेश को कनखी से देखकर शरमाई हुई हंसी हंसने लगे. फिर सिर झुकाकर ऐसी बंधी आवाज में धीमे-धीमे बोले, जैसे किसी घड़े में मुंह रखकर बोल रहे हैं, "देखिए भैया, मैं साफ बात कहता हूं. मैं इस मंत्री की किसी दूकान से निकले हुए किसी व्यक्ति को अपने यहां लेने विश्वास नहीं करता, न लेता ही हूं, पर यहां कुछ दूसरी बात थी. . ."

"क्या ?"

"यहां तो भाईजी की बात थी. भाईजी मेरे एक नौकर को पहले ही फोड़ चुके थे और कइयों को फोड़ने की कोशिश भी कर चुके थे. भाईजी मुझको जानते नहीं. मैं छोटी-छोटी हरकतों में विश्वास नहीं करता, पर जो मुझे छेड़ता है, उसे मैं आखिर तक नहीं छोड़ता. यह बड़ा अच्छा मौका था. मैं भाईजी को इस तरह डंसना चाहता था कि उनको लहर भी न आये. और अपने इसी काम से देश एवं जाति की सेवा भी करना चाहता था. एक ढेले से दो चिड़िया का शिकार."

"हां, साला खूब मौका आया था. . ." दिनेश ने ठहाका लगाते हुए कहा.

माहेश्वरजी काफी उत्साहपूर्वक अपना किस्सा सुना रहे थे. बोले, "अरे, अकबर तो भाईजी से जला-भुना था ही. मैंने मौके का लाभ उठाया. खूब सेवा की उसकी. उसको एक से एक तर माल खिलाता. पैसा-कौड़ी, कपड़ा-लत्ता किसी बात की कमी नहीं होने देता. बस समझिए जैसे दामाद की खातिर होती है. ऊपर से दो घंटा रोज उसको प्रवचन झाड़ता था. आखिर प्रभु ने सफलता दिला दी. . .".

मैं उनकी बात समझ नहीं पाया, "कैसी सफलता?"

एक लंबी मुस्कराहट के बीच वह बोले, "अरे, काम हो गया. वह हो गया. . ."

"क्या हो गया वह." मैं हतबुद्धि-सा उनको देखने लगा.

वे दोनों हंसने लगे. फिर माहेश्वर प्रसाद वैरागी ने बताया, "आप बड़े भोले हैं. मेरा मतलब यह है कि वह अकबर से बालचंद आर्य बन गया. . ."

मैं जैसे आसमान से जमीन पर गिरा. मैं कुछ दूसरा ही सोच रहा था. मैंने जिज्ञासावश ही पूछा, "कैसे हो गया यह सब ?"

"आप भी खूब पूछते हैं. अरे भाई, ऐसे कामों में बड़ी सावधानी और होशियारी से काम लेना होता है. बहेलिया जैसे चिड़िया फंसाता है, उसी तरह समझ लीजिए. . ."

"फिर तो बड़ा बवाल मचा होगा ?"

"कैसा बवाल ? चुपके-चुपके सब काम हो गया. पहले तो किसी को पता ही न लगा. हां, जब पता लगा तो भाईजी ने उछल-कूद जरूर मचायी. अकबर के पास एक आदमी को भेजा."

"आदमी को भेजा ?" मैंने सांस रोककर पूछा.

"हां-हां, भाईजी को और क्या समझते हैं आप?" माहेश्वरजी ने हंसते हुए कहा, "उस आदमी ने अकबर को खूब समझाया-बुझाया. खूब लालच दिया. जब अकबर नहीं माना तो उस आदमी ने उसे डराया कि जो आदमी अपना धर्म बदलता है, वह अगले जन्म में छिपकली होता है, पर अकबर यानी बालचंदजी मेरा प्रवचन सुन-सुनकर खूब पक्के हो गये थे. किसी की दाल नहीं गली. . ."

माहेश्वरजी हो-हो करके हंस पड़े. फिर अचानक चुप होकर गंभीर हो गये. गोया ऐसी महत्वपूर्ण बात करते समय हंसकर उन्होंने कोई अनुचित हरकत कर दी हो. इसके बाद वह जैसे गंभीर चिंतन में लीन हो गये. अंत में मेरी ओर मुंह बढ़ाकर धीमी आवाज में बोले, "समझिए काम तो बहुत बड़ा हो गया. इसे कलियुगी पार्टियां और कलियुगी नेता नहीं समझ सकते. अब आप ही बताइए चाहे एक ही सही, हमारी संख्या तो बढ़ी. हमारी जाति के लोगों की कमजोरी है, वरना यह मुश्किल नहीं है—अगर हमारी जाति का प्रत्येक आदमी एक विजातीय का जिम्मा अपने ऊपर ले ले तो देश का बड़ा कल्याण हो. खैर, मैंने तो अपना कर्तव्य कर दिया. मेरे चुनाव-प्रचार की दृष्टि से भी यह बहुत काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की घटना हुई थी. सन् 1980 वाले चुनाव में अकबर यानी बालचंद आर्य ने बड़ी मेहनत की. घूम-घूमकर खूब नारे लगाये. उसे मंच पर अपनी बगल में खड़ा करके मैं भाषण देता था. बड़ी तालियां बजती थीं. समझिए, मुझे पूरे तीन हजार वोट मिले. जिन उम्मीदवारों की जमानतें जब्त हुई थीं, उनमें मैं सबसे आगे था. . ."

"वह भाषण-वाषण भी करता था?" मैंने पूछा.

"अरे नहीं." माहेश्वरजी ने कहा, "वज्र गंवार था, उसे बोलना-बोलना क्या आता? उसको सिखाने के लिए मैंने क्या-क्या नहीं किया? मैं चाहता था कि जिस धर्म और जाति में वह शामिल हुआ है, उसी के अनुसार बातचीत करे, वैसी ही भाषा का इस्तेमाल करे, पर भैया उसने तो नाकों चने चबवा दिया."

"क्या हुआ? कैसे नाकों चने चबवा दिया?" मेरी उत्सुकता चरम सीमा पर थी.

दिनेश इस बीच मेरी कुर्सी के हत्थे पर रखे अखबार को उठाकर उसमें डूबने-उतराने लगा था. स्पष्ट है कि ये बातें वह कई बार सुन चुका होगा. कभी-कभी वह किसी बात पर हमारी ओर देखता, यांत्रिक ढंग से हंसता, फिर पढ़ने में लीन हो जाता. माहेश्वरजी का उत्साह तो खैर हर क्षण बढ़ता ही जा रहा था. मेरे प्रश्न के जवाब में उन्होंने कहा, "बस पूछिए मत. मैंने बार-बार कहा 'भगवान रामचंद्रजी कहो.' कई बार रटाया भी. पर वह ठीक-ठीक उच्चारण कर ही नहीं पाता था. हमेशा कहता था—'रामचंदरजी.' अपना नाम भी ठीक नहीं बोल पाता था. बालचंद आर्य को कहता था—'बालचन आर.' मैंने कई बार उसे समझाया और अभ्यास कराया—गंगा नदी, यमुना नदी. नदी, नदी, नदी. पर नदी शब्द कभी उसकी जबान पर चढ़ा ही नहीं. बार-बार वह नदी को 'दरिया' ही कहता. मैंने कई बार कहा, 'और कहो, सवेरा कहो, प्रातःकाल कहो?' पर वाह रे इंसान और उसकी जबान. वह हमेशा कहता था—सुबह. मैं बेहद तंग आ गया. अब आप ही बताइए, मैं क्या-क्या करूं? खैर, संतोष मुझे इसी बात का है कि मैंने किसी का परलोक तो बना ही दिया!"

मुझे बड़ी तेज हंसी आ रही थी और जब उन्होंने अपना वक्तव्य समाप्त किया तो मैं बेतहाशा हंसने लगा. माहेश्वरजी मेरी ओर चकित होकर देखने लगे और दिनेश ने भी चौंक कर मुझे देखा. पर मैंने जल्दी ही गंभीर होकर माहेश्वरजी से पूछा, "सन् 1985 के चुनाव में भी तो वह आपके साथ होगा?"

"कहां?" माहेश्वरजी ने मुंह बिचका कर कहा, "बड़े कृतघ्न हैं ये लोग. 1980 के चुनाव के बाद भी कुछ दिनों तक वह बड़ा सही रहा. हमेशा 'बाबूजी, बाबूजी' किये रहता. फिर पता नहीं किसने उसको क्या सिखा दिया या भगवान जाने कुछ खिला-पिला ही दिया हो. अचानक एक दिन सनक गया. सवेरे-सवेरे ही बोला, 'मैं डेढ़ सौ रुपल्ली पर काम नहीं करूंगा. सरकार जितना कहती है, उतना मिलने पर ही काम-धाम होगा.' मुझे बड़ा गुस्सा आया. मैं उसको डेढ़ सौ रुपये देता था. मंडी में कोई भी माई का लाल किसी को इतना न देता होगा. इसके अलावा कुछ न कुछ खाता ही रहता था. खास अवसरों पर कपड़ा-लत्ता अलग. फिर भी मैंने उसे समझाया-बुझाया, पुचकारा, बाबू-भैया कहा. वह काहे को माने! मैंने कहा, 'वह काम करता जाये, कुछ दिनों बाद बढ़ा दूंगा.' पर दूसरे दिन से वह बैठ गया."

दिनेश ने अब अखबार पढ़ना बंद कर दिया था. उसने चलने का इशारा किया.

माहेश्वरजी ने कहा, "बस चलता हूं. अपनी बात पूरी कर लूं. हां तो भैया, उसके छोड़ देने से मन को बड़ा धक्का लगा. झूठ क्यों कहूं, बड़ा ईमानदार था. पूरी दूकान उस पर छोड़कर चला जाता था. जब चाहे काम लो, जब चाहे बुला लो. डेढ़ सौ रुपये उसको देता था, पर हजार दो हजार का फायदा हो जाता था. मुझे लगा कि भाईजी ने उसे फोड़ लिया है और वह फिर अपनी पुरानी जाति में चला जायेगा.

संस्मरण

आंख झपकते ही. . .

▣ सुलोचना राघव

1961 की एक शाम मैं गांव के घर की छत पर खड़ी एक लोहपीटे दंपति को (राजस्थान में उन्हें 'गाड़िया लोहार' कहते हैं) काम करते देख रही थी और सोच रही थी उनके अनोखे जीवन के बारे में. इतने में सुनायी दी उनकी (स्व. रांगेय राघव) पुकार, "चाय नहीं पिलाओगी! कहां क्या कर रही हो?"

मैंने कहा, "सोच रही थी कि ये लोग आपके ध्यान से कैसे बच गये?"

"अरे हां, तुम ठीक कह रही हो. जाओ झट-से एक कप चाय तो बना लाओ, फिर देखना."

चाय की चुस्कियां लेते हुए उन्होंने मुझे एक 'प्लाट' सुनाया. सुनाकर पूछने लगे, "कहो कैसा लगा?"

मैंने पूछा, "किसकी लिखी कहानी है?"

"तुम्हारे सामने जो खड़ा है, उसकी." मुस्कराते हुए वे बोले, और मुझे आश्चर्य में डाल दिया. एक नया आश्चर्य, यह क्या! आंख झपकते ही प्लाट तैयार! और उससे भी अधिक विस्मय मुझे तब हुआ था, जब तीन दिनों में ही उन्होंने 'धरती मेरा घर' (उपन्यास) लिखकर इन लोहपीटों को, जो कभी एक स्थान पर बस कर नहीं रहते, सबके मन में बसा दिया. □

—'रांगेय राघव का रचना-संसार (गोविंद रजनीश) में संकलित 'भर गयी है अक्षरों से जिंदगी के पाती' शीर्षक संस्मरण से.

पर ऐसा हुआ नहीं. खैर, पक्का तो मैंने उसे खूब कर दिया था. पर बच्चू मेरे यहां से जाने के बाद दाने-दाने को तरसने लगे. कई पापड़ बेले उन्होंने. अब इसके लिए मैं क्या कर सकता हूं? मेरे घर से एक फर्लांग की दूरी पर एक चुंगी घर है, उसी के बरामदे में सोता था. कई जगह काम किया, पर मैं जितना खातिर-बात करता था, देता था, उतना किसी ने नहीं दिया. मुझे उसके बारे में रिपोर्ट मिलती रहती थी. कभी सुनने में आया कि वह मजदूरों के एक जुलूस में नारा लगा रहा है. इसी तरह इन लोगों का जीवन बीतता है. कभी कुछ कभी कुछ. अभी परसों मुझे पता लगा कि वह मर गया. . ."

"मर गया? कैसे?" मुझे सचमुच चोट लगी इस सूचना से.

"बस, मर गया. बुखार आया, मर गया. ये लोग जैसे पैदा होते हैं, वैसे ही मर जाते हैं. मुझे भाई दुख तो हुआ. खास दुख इस बात का था कि अगर सन् 1990 के चुनाव तक यह मेरे साथ रह गया होता तो देश एवं जाति का कल्याण भी होता और मैं 'चुनाव' में जीत भी जाता. खैर, उसकी वजह से जाति-बिरादरी में मुझे काफी प्रतिष्ठा मिल गयी है. कुछ लोगों ने मुझे उसके मरने की खबर दी तो मुझ पर एक व्याकुलता छा गयी. मैं दौड़ा गया. कोई भी माई का लाल उसे पूछने वाला था नहीं. मैंने परसों शाम को उसकी विधिवत अंत्येष्टि करवायी. मुझे संतोष हुआ. . ."

वह अपनी बात समाप्त नहीं कर पाये, क्योंकि दिनेश पहले ही उठ खड़ा हुआ था और उन्हें भी उठना पड़ा. मैं उन्हें छोड़ने बाहर तक गया. विदा होते समय माहेश्वरजी ने हाथ जोड़कर कहा, "अगले चुनाव में ध्यान रखिएगा. मैं अभी से आप लोगों को हर बात बताये दे रहा हूं. देश और जाति का सवाल है. . ."

"अरे वाह, आप निश्चित रहिए." मैंने उत्तर दिया. □

● 527/ए/1 ककड़ नगर, दरियाबाद, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागा गया

राजेंद्र यादव

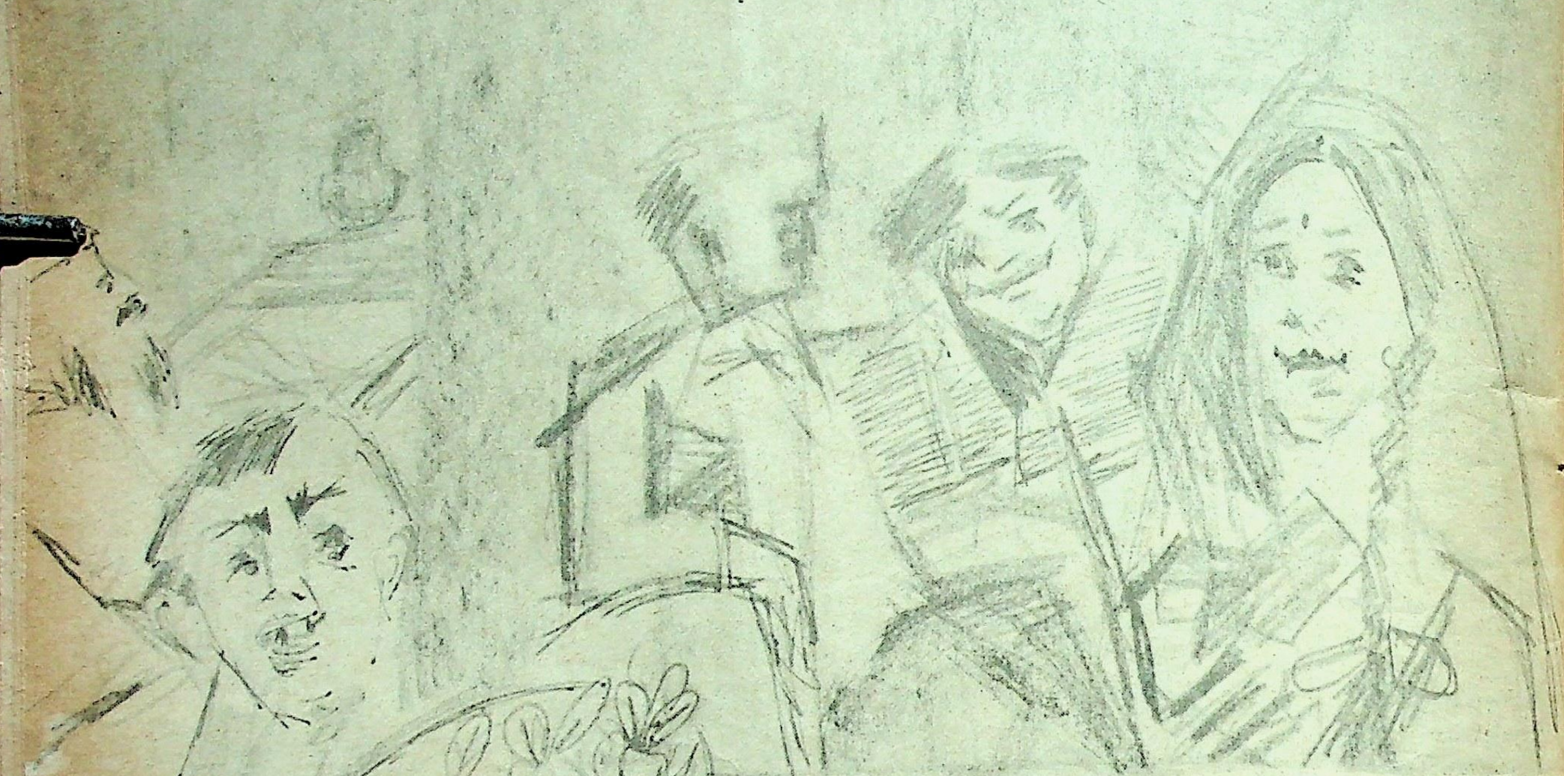

विदेश होता तो मेरी तरह खिड़की में कोई अफसर बैठा होता और टेलिस्कोप लगी बंदूक से भगोड़े को देख रहा होता. दूरबीन के कांच के गोले में आड़ी और खड़ी लाइनों में ठीक बीचों-बीच भगोड़े को बांधे उंगलियां ट्रिगर पर सन्नद्ध होतीं. . . . निगाह के घेरे में भगोड़े को कैद किये पतंग की डोर की तरह लंबी ढील दिये चला जाता. . . और फिर धायं. . . एक पके फल जैसा सिर टपक पड़ता! हमारे आसपास घटती उन घटनाओं को जीवन का अर्थ देती कहानी, जिन्हें हम देख कर भी अनदेखा कर जाते हैं. .

ब्रेक और पटरियों की रगड़ के बाद धीरे-धीरे गाड़ी फिर रुक गयी. यह खेल बहुत देर से चल रहा था. गाड़ी ढाई घंटे लेट थी. जैसे ही स्टेशन गुजरता, अचानक रफ्तार बढ़नी शुरू होती; आसपास के खेत, पेड़, तेजी से गुजरने लगते, पहियों के नीचे से पटरियों के चिचियाने की आवाजें आती और आश्वासन बंधती कि थोड़ी बहुत कमी तो पूरी हो ही जायेगी. मगर फिर दस-पंद्रह मिनट बाद ही रफ्तार कम होती और गाड़ी रुक जाती. ये साले चाहते ही नहीं हैं, गाड़ियां समय से पहुंचे!

गाड़ी रुकते ही न जाने कहां से अमरूदों की टोकरी लिये एक युवक घुस आया था और 'रुपये के चार' की आवाजें लगाने लगा था. अमरूद को पहले फुर्ती से चार हिस्सों में काटता और उसी चाकू से मसाला लगाकर दे देता. मेरी बगल वाले आदमी ने दो लिये और गाड़ी के दूसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation-Chennai and eGangotri

हिस्से की ओर बढ़ा दिये. फिर दो अपने लिए कटवाये. सामने पाजामे-नुमा पैंट में उकड़ूं बैठे युवक ने बिना किताब से निगाहें हटाये ही अमरूद मांगा और उसी तरह खाने लगा. जरूर वह प्रेम बाजपेयी के उपन्यास के किसी बहुत ही संकटपूर्ण स्थल पर था और एक भी पंक्ति नहीं छोड़ना चाहता था. उसी मुद्रा में उसने जेब से पच्चीस पैसे का सिक्का निकालकर हवा में बढ़ा दिया और पढ़ता रहा. हर स्टेशन पर कुछ न कुछ खाने वाला फैशनेबुल नौजवान हर बार अमरूद को दांत से काटता और मसाला मांगता.

मेरे सामने वाली सीट पर बैठी प्रौढ़ा अपने आदमी से फुसफुसाकर कह रही थी, "उधर भी और पूछ लो. नहीं पूछोगे तो उसे गुस्सा आ जायेगा." यह दूसरे दर्जे का थ्री टायर स्लीपर डिब्बा था, और हर हिस्सा छोटे-छोटे खानों में बंटा हुआ था. दूसरे खाने के लोगों की अलग दुनिया थी. उधर ही खिड़कियों के सहारे वाली सीट पर तंग पतलून पहने दो नवयुवक बैठे थे. एक तो अपनी निकिल की कमानी वाले चौड़े चश्मे के कारण खासा गुंडा लगता था. वह सांवला था, साथ वाला गेहुंआ, दोनों की कमीजों के बटन खुले हुए थे. फिल्मों के कारण हर लड़का या तो विनोद खन्ना लगता था या अमिताभ बच्चन. दिलीप-देवानंद वाले युवक तो अब पचास पार कर चुके होंगे. राजेश खन्ना भी दिखायी नहीं देते. मेरे सामने वाली प्रौढ़ा, अपने पतिनुमा आदमी को जिस तरह फुसफुसाकर आदेश दे रही थी और वह जैसी ताबेदारी से उधर वाले नवयुवकों की फरमाईश पूरी कर रहा था उससे मुझे लगा जैसे एक बेटा है और दूसरा उसका दोस्त. शायद वे लोग कानपुर से इस दोस्त को अपनी लड़की दिखाने ले जा रहे हैं और उसकी हर कही-अनकही इच्छा को परम-आज्ञाकारी भाव से पूरा कर रहे हैं. यह खातिर और ताबेदारी अपने लड़के की नहीं हो सकती. वह भी अपनी महत्ता समझकर हर सेवा वसूल कर रहा है. नीच, साला!

अचानक वे दोनों नौजवान मेरी बगल के आगे-पीछे निकले. या तो बाथरूम जा रहे हैं, या खड़ी ट्रेन से उतर कर नीचे चहल-कदमी करना चाहते हैं. मां-बाप के लिहाज से इधर-उधर सिगरेट पीने की बात भी हो सकती है. मगर दोनों पहले ही निस्संकोच सिगरेट पीते रहे थे. सामने वाला बाप बीड़ी पीता था. उधर से माचिस मांगी जाती थी तो बढ़ा देता था. सहसा मेरा ध्यान गया कि सांवले युवक ने (जिसने अब अपने बड़े-बड़े बालों में लाल रूमाल का पट्टा बांध लिया था) दूसरे यानी बेटे का हाथ कसकर पकड़ लिया था. कोई बात नहीं, दोस्त हैं—मैंने सोचा. सहसा औरत ने अपनी पति को टहोका मारा; 'तुम भी साथ जाओ!' हद हो गयी! माना कि ये दोनों बेहद निरीह दयनीय और गरीब जैसे थे, आदमी की कमर झुकी हुई थी और औरत अपनी निकली हड्डियों के कारण कर्कश लगती थी, मगर उसका यह मतलब तो नहीं था कि बाथरूम तक भी मां-बाप साथ जायें. . . इस बार मैंने 'राजकुमार' को ध्यान से देखा. बिखरे बाल, खुले गले में झूलती काली मिर्चों जैसे दानों की माला. पीली कमीज, बढ़ी हुई हजामत और माथे पर पुंछा हुआ सिंदूर का टीका. . . .लड़का अजीब बुझा और नीम-होश सा था. नहीं, यह शादी का उम्मीदवार तो नहीं लगता. फिर? जिस तरह की सावधानी से इसकी देखभाल की जा रही है, उससे अचानक लगा इसे कुछ खिलाकर बलि-वलि देने तो नहीं ले जा रहे हैं? लेकिन ये दोनों पति-पत्नी ऐसे बिल्कुल नहीं लगते. पत्नी चौकन्नी थी, पति हारा हुआ पस्त. मुश्किल से चालीस का होगा. पति चला गया तो मैंने धीरे से पूछा, "बीमार है क्या?"

उसने सिर पर पेंच की तरह घुमाकर बताया, "डाक्टरी का इम्तहान पास किया है, पता नहीं क्या हो गया है?" मेरे पास वाला मुझसे अधिक जानता था, उसने बताया, "एम. बी. बी. एस. किया है, कहीं गांव में पोस्टिंग हुई है, उसी से दिमाग खराब हो गया है..." मैंने सोचा जरूर दिल्ली या बंबई में पोस्टिंग चाहता होगा. अब मेरे सामने सारी बातें साफ हो गयीं. . . सोचा, जरूर ये लोग उसे घर लिये जा रहे हैं. संभालने

▣ राजेंद्र यादव

के लिए साथ वाला दोस्त आया है. खादी के मैले कुर्ते-धोती और जाकेट वाला बाप किसी प्राइमरी स्कूल का टीचर लगता था. बीमारी की खबर पाकर दोनों भागे-भागे आये होंगे. अब वापस जा रहे हैं. वैज्ञानिकों, डाक्टरों और इंजीनियरों के साथ ही इस तरह के हादसे क्यों होते हैं? कोई आत्महत्या कर रहा है, कोई पागल हो रहा है. फिर भी हैसियत से बढ़कर इन्होंने पढ़ाया होगा. परेशानी स्वाभाविक है.

दोनों लड़के लौट आये थे. दोस्त ने लड़के का हाथ उसी तरह कसकर पकड़ा हुआ था. पीछे-पीछे बाप था. इस बीच चीथड़ों जैसे सलवार-कमीज पहने एक तगड़ी लड़की छपे हुए पर्चे बांटती आगे निकल गयी थी. इन पर्चों में लिखा था, किस तरह यह लड़की बहुत ही मुसीबत-जदा है और हर हिंदू को इसकी मदद करनी चाहिए. . . सांवली-सी लड़की का चेहरा गदराया और आकर्षक था. पर्चे देते हुए भावहीन ढंग से चली गयी थी, लेकिन जब पर्चे वापस लेते हुए पैसों की उम्मीद में रुकती तो न्योतने के से भाव से मुस्कराती. इस तरह मांगने से इसका काम थोड़े ही चलता होगा. . . जरूर चालू चीज है साली. अभी तो दूर है जब मेरे पास आयेगी तो मैं पैसे नहीं दूंगा. बहुत दिनों पहले ऐसे ही सफर में एक लड़की से मेरे किसी पड़ोसी ने कहा था, "चुम्मा दे तो एक रुपया देंगे." लड़की ने इठलाकर गाल बढ़ा दिया तो पड़ोसी सकपका कर झेंप गया था. इस बार भी तो किसी न किसी ने जरूर इच्छा प्रकट की होगी. . .

तभी देखा, मेरे सामने की सीट खाली करा ली गयी थी, 'भाई साहब, ये कुछ बीमार है, जरा लेटेगा,' की प्रार्थना के साथ. और बीमार उस पर लेट गया था. और ठीक मेरे सामने था पीला, दुबला चेहरा, सुनहरी भाल, बिखरे बाल . . . सिर्फ ऊपर पंखों पर टिकी निगाहें. अचानक जैसे भीतर से उमड़ती रुलाई के बीच कातर स्वर में लड़के ने कहा, "मेरी मां, मेरे पिता, मेरे छोटे भाई-बहन को कुछ नहीं होना चाहिए. . . . मेरी मां, तुझे कुछ नहीं होना चाहिए. . . मेरे पिता. . ." अब उठकर दूर बैठी, उसे एकटक देखती मां साड़ी से आधा चेहरा ढंके निश्शब्द रो रही थी. लेटे लड़के पर झुका हुआ बाप दर्द, पराजय और निराशा भरी सूनी निगाहों से उसके सारे शरीर को सहला रहा था, माथे पर हाथ रखा था और कातर होकर सिर्फ 'बेटा. . .' कह पा रहा था. पैरों की तरफ बैठा दोस्त पालतू जानवर को डांटने के तटस्थ भाव से डांट रहा था, "राजेश. . . राजेश, किसी को कुछ नहीं होगा. . . तुम सो जाओ. . . " "मेरे पिता पानी. . . ." बाप ने तत्काल मैले-से थैले से ग्लूकोज का गंदा डिब्बा निकाला. मां ने पानी बढ़ाया, ग्लूकोज मिलाकर बांहों में सिर उठाकर होंठों से लगाया. दोस्त तटस्थ-सा देखता सिगरेट पी रहा था. बाप लड़के को ऐसे सावधानी से लिटा रहा था जैसे वह कांच का बना हो. . . लड़का एक बार फिर फूट पड़ा था, "मेरी मां. . . मेरे पिता. . ." यह बन रहा है या सचमुच. . ? दिमाग खराब होता तो क्या ऐसी शुद्ध भाषा बोलता. . . ?

अचानक लड़का झटके से उठा, पैर खींचकर ऊपर किये और अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों पंजों की ओर हाथ बढ़ाते हुए बड़बड़ाकर बोला, "मेरे मोजे लाओ, जल्दी मेरे मोजे दो, साढ़े तीन बज गये. . .देर हो रही है. . .मेरे जूते कहां हैं ?" इस बार उसकी आवाज में कड़क थी. . . बाप एकदम स्तब्ध रह गया था. दोस्त ने झपट कर उसके कंधे पकड़ लिये और बिगड़े जानवर को डांटने की तरह कड़क कर बोला, "राजेश. . .राजेश. . . चलो, लेटो उधर. . . मैं कहता हूं चलो. . . लेटो. . . " थोड़ा-सा प्रतिरोध करके लड़का धीरे-से लेट गया और कराहते हुए सुबकने लगा, "साढ़े तीन हो गये. . . मुझे जाने दो ! . . . मेरे भाई, मुझे जाने दो. . . देर हो रही है. . . तुम्हीं देख लो, साढ़े तीन बज गये. . ." मां दूसरी तरफ मुड़ कर फफक कर रो पड़ी थी और बाप ने उंगली-अंगूठे से दोनों आंखों से बहते आंसू निचोड़ने की कोशिश की थी. . . 'जरूर ही, मुझे जाना है' का वाक्य दोनों को भीतर तक चीर गया होगा. . .

बाहर से गूंजती गरज की आवाज पास घुमड़ती आ रही थी और फिर घड़घड़ाती अंधड़ जैसी राजधानी या कोई लाल धारियां वाली तेज गाड़ी धूल उड़ाती गुजर गयी थी. "इसी के लिए हमारी ट्रेन रोक रखी थी. . ." कई लोगों ने एक साथ कहा. शोर निकल जाने के बाद अपना आसपास और भी शब्दहीन हो गया था. लड़का शांत, आंखें बंद किये लेट गया था, "मेरे पिता, तुम्हें कुछ नहीं होना चाहिए ! मेरी मां. . ." उसके मुंह से कराहते से शब्द निकल रहे थे. . .

झटके से मैंने पाया कि सब लोग खिड़की के बाहर झांक रहे थे. "वो तो बहुत आगे निकल गया. . . अब हाथ नहीं आयेगा. . ." कोई कह रहा था. मैंने भी देखा गेहूं-सरसों के खेतों के हरियाले सागर के दूर-दूर तक फैले विस्तार में बहुत आगे-आगे एक धब्बा-सा पीछे सरकता जा रहा था, उससे काफी पीछे कंधों तक निकले दो सिर उधर भाग रहे थे, जैसे हरे पानी पर आगे-पीछे तीन औंधे घड़े क्षितिज की ओर सरक रहे हों. . . . "कौन है ?" जवाब आया, "सिपाही हैं. अभी लड़का यहीं से तो भगा है, अब तो काफी दूर निकल गया. इनके बाप भी नहीं पकड़ सकते. . . अजी अब क्या आयेगा इनके हाथ. . ." "कुछ लेकर भागा है क्या ?" मैंने पूछा. मुझे पिछला वाकया याद आ गया. जब इसी तरह कोई मेरी अटैची लेकर अंधेरे में भाग गया था. पास वाले ने बताया, "पता नहीं, शायद बिना टिकट हो. . . " धत्तेरे की, यह भी कोई ऐसा अपराध है जिसके लिए दोनों सिपाही मील भर की दौड़ लगा रहे थे. वैसे भी अब भगोड़े और सिपाहियों के बीच फासला इतना बढ़ गया था कि पकड़ सकने का कोई सवाल ही नहीं था. मान लीजिए, भागने वाला डाकू-कातिल होता तो ?. इन सिपाहियों के पास तो बंदूकें भी नहीं हैं कि मार गिराते. . . विदेश होता तो मेरी तरह खिड़की में कोई अफसर बैठा होता और टेलिस्कोप लगी बंदूक से भगोड़े को देख रहा होता—दूरबीन के कांच के गोले में आड़ी और खड़ी धन की लाइनों में ठीक बीचों-बीच भगोड़े को बांधे उंगलियां ट्रिगर पर सन्नद्ध होतीं. . . निगाह के घेरे में भगोड़े को कैद किये. . .पतंग की डोर की तरह लंबी ढील दिये चला जाता, ढील दिये चला जाता. . . और फिर धांय. . .एक पके फल जैसा सिर टपक पड़ता!

"अभी-अभी भाग गया. . . अब दोनों वापस आ रहे हैं. . .जैसे अम्मा को फूंक के आ रहे हों. . .!" लोग खिड़कियों से ठीक उसी तरह वापस अपनी-अपनी जगह लौट रहे थे जैसे वे पीछा करने की इस उत्तेजक होड़ में शामिल हों. . .

सामने वाला लड़का अब शांत सो रहा था. बाप भीतर की जेबें टटोल कर पर्चा वापस मांगती लड़की को पैसे दे रहा था. . . वह शायद हर भिखारी को कुछ न कुछ जरूर देगा. . . पता नहीं किसकी दुआ. . .

और तब गाड़ी धीरे-धीरे खिसकने लगी. . . हम सभी ने मानो इतनी देर से रुकी सांस छोड़ी. . . □

● अक्षर प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इक्कीसवीं सदी में

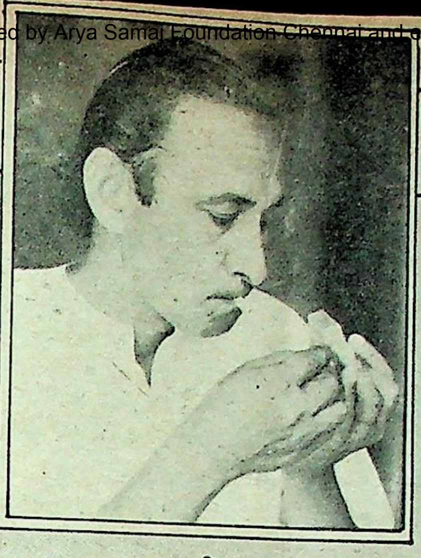

हरिशंकर परसाई

सन् 1999 में प्रधानमंत्री ने ऐलान किया—बीसवीं सदी का यह आखिरी साल है. हमें आगे इक्कीसवीं सदी में जाना है. राष्ट्रीय कार्यक्रम के अनुसार दिसंबर के आखिरी सप्ताह में हम सब इक्कीसवीं सदी में पहुंच जायें. मैं जनता से अपील करता हूं कि वह 25 दिसंबर से 31 दिसंबर तक इक्कीसवीं सदी में पहुंच जाये.

दिसंबर के आखिरी सप्ताह में एक पत्रकार विभिन्न लोगों से मिला. वह लोगों की बदलती हुई मानसिकता को समझना चाहता था. पत्रकार की रिपोर्ट के अंश—

एक

पत्रकार कंप्यूटर इंजीनियर के पास गया. वे कंप्यूटर लेकर इक्कीसवीं सदी में जाने को तैयार बैठे थे. पत्रकार ने पूछा, "इक्कीसवीं सदी में क्या ले जा रहे हैं?"

इंजीनियर: "बस, कंप्यूटर और 'हनुमान चालीसा.'"

पत्रकार : "हनुमान चालीसा क्यों?"

इंजीनियर : "अरे भाई, कंप्यूटर हनुमानजी की कृपा से ही चलता है. उसमें खराबी आ जाती है तो मैं हनुमान चालीसा का पाठ करके उसे ठीक कर लेता हूं."

पत्रकार : "पर विज्ञान. . .तकनीक?"

इंजीनियर : "वे भी हनुमानजी की कृपा पर निर्भर हैं. मशीन में खराबी आने का मतलब है कि उस पर प्रेत चढ़े हैं. प्रेत हनुमान से डरते हैं. उनका नाम सुनते ही भाग जाते हैं. . .

भूत पिशाच निकट नहिं आवैं,
महावीर जब नाम सुनावैं.
अब जाऊं इक्कीसवीं सदी में."

दो

पत्रकार रेलवे के एक बड़े इंजीनियर के पास गया. बोला, "आपने रेल यातायात बहुत नियमित और सुरक्षित कर दिया है. अपनी नयी-नयी तकनीकों से कब जा रहे हैं, इक्कीसवीं सदी में?"

इंजीनियर : "जा तो सुबह ही रहा था, मगर बिल्ली रास्ता काट गयी. अब कल जाऊंगा."

तीन

पत्रकार विश्वविद्यालय के विज्ञान विभाग के मशहूर प्रोफेसर के घर गया. उनसे पूछा, "कब जा रहे हैं इक्कीसवीं सदी में?"

प्रोफेसर ने कहा, "बस, जा ही रहे हैं."

पत्रकार : "क्या ले जायेंगे इस सदी से?"

प्रोफेसर : "मैं तो सत्यसाईं बाबा का यह चित्र ले जाऊंगा, जो दीवार पर टंगा है. इन्हीं की कृपा से मुझे लंदन से डाक्टर ऑफ साइंस की उपाधि मिली और मैं प्रोफेसर हुआ."

पत्रकार : "क्या सत्य साईंबाबा ने आपसे कहा था—मैं तुम्हें ये उपलब्धियां कराऊंगा. ज्ञान, विज्ञान, शोध सब मेरे अधीन हैं."

प्रोफेसर : "नहीं जी, मैं तो उनसे कभी मिला नहीं. बस भक्ति है."

पत्रकार : "अगर मैं आपके इस कुत्ते की भक्ति करूं तो क्या अपने अखबार का प्रधान संपादक हो जाऊंगा?"

प्रोफेसर : "आपकी बात भद्दी तो है ही, अवैज्ञानिक भी है."

पत्रकार : "और आपकी बात क्या वैज्ञानिक है?"

चार

पत्रकार अपने कवि मित्र के घर पहुंचा. दिन काफी चढ़ आया था, मगर कवि रजाई ओढ़े सो रहा था.

पत्रकार : "अरे कवि, उठो क्या जाओगे नहीं?"

कवि : "कहां जाना है?"

पत्रकार : "इक्कीसवी सदी में."

कवि : "अरे यार, मैं क्या पीछे जाऊंगा. मैं तो कई सालों से पच्चीसवीं सदी में हूं और सो रहा हूं. तुमने नींद खराब कर दी."

कवि फिर मुंह ढांप कर सो गया.

पांच

मशहूर न्यायाधीश मिर्जा साहब से पत्रकार मिला. मिर्जा साहब ने स्त्रियों के अधिकारों के बारे में जो फैसले दिये थे, उनसे उन्हें बहुत यश मिला था. स्त्रियां उन्हें अपना मुक्तिदाता मानती थीं.

पत्रकार ने कहा, "मिर्जा साहब, अब आपके सपने का जमाना आया. कब जा रहे हैं, इक्कीसवीं सदी में?"

मिर्जा : "बस निकल ही रहा हूं."

पत्रकार ने पूछा, "आपके पीछे बुरके में कौन खातून हैं?"

मिर्जा : "मेरी बीबी है."

पत्रकार : "अरे सलमा आपा. ये तो पर्दा नहीं करती थीं. कई बार मेरी उनसे मुलाकात हुई. वे तो खुलकर समाज-सुधार के काम करती रही हैं. सलमा आपा आपने यह क्या किया?"

बुर्के ने कहा, "हम पराये मर्दों से बात नहीं करते."

मिर्जा साहब ने समझाया, "देखो भई, नये दौर में जा रहे हैं तो एहतियातन पर्दा कर ही लेना चाहिए."

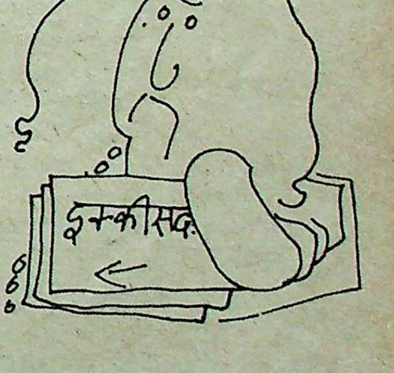

छह

पत्रकार पहुंचा सिंचाई विभाग के निदेशक के पास. वे तैयार बैठे थे.

पत्रकार : "जा रहे हैं इक्कीसवीं सदी में?"

निदेशक : "जी हां, स्वामीजी को भी ले जा रहा हूं. ये स्वामी सदानंद हैं."

पत्रकार : "ये आपका क्या काम करेंगे?"

निदेशक : "यही तो सिंचाई करायेंगे. ये 'पर्जन्य यज्ञ' करते हैं, तो पानी बरसता है."

1527 नेपियर टाउन, जबलपुर, (म. प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

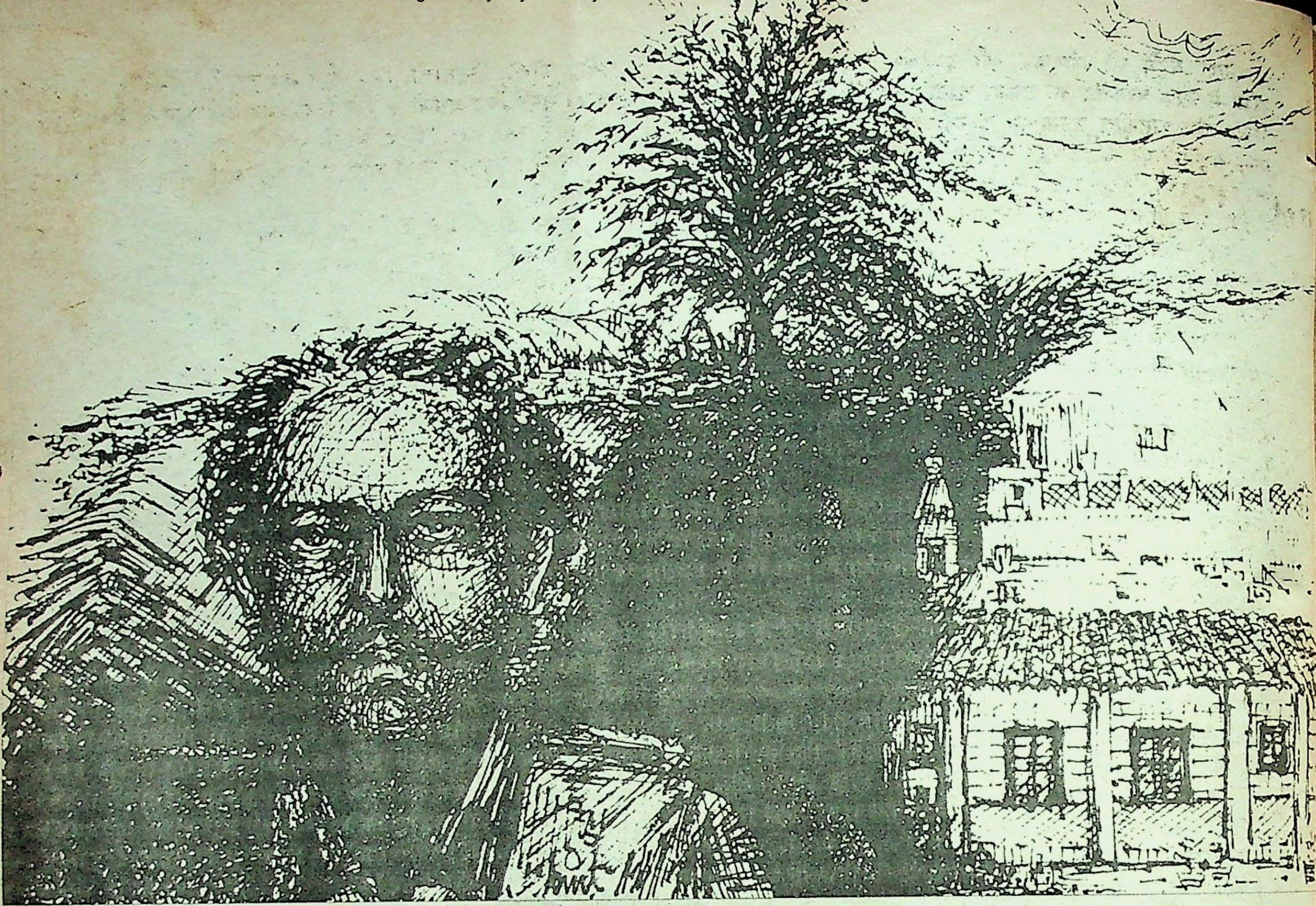

दंगा

श्रीलाल शुक्ल

दंगे के पीछे का सच आखिर क्या होता है? क्या दंगा सिर्फ मजहब या जातियों के बीच से निकल कर आता है या इसके पीछे कुछ और ताकतें भी काम करती हैं? दंगे होते हैं या करवाये जाते हैं? दंगई दरअसल आस्तिक होते हैं या धर्मांध अथवा नास्तिक? ... कई सवालों का जवाब देती एक कहानी—

कई दिन की कड़ाकेदार सर्दी और बारिश के बाद धूप खिलकर निकली थी और हवा में अचानक वसंत का सलोनापन आ गया था. इतवार न होता, तब भी दिन कुछ ऐसा था जिसमें कुछ काम नहीं हो सकता था. उन्होंने पत्नी से कहा कि कुछ पीने की और कुछ खाने की चीजें जल्दी से बांध ली जायें और इतवार को बरबाद करने वाले लोग आना शुरू करें, इसके पहले ही हम लोग कहीं पिकनिक पर निकल चलें. तभी खबर मिली कि पड़ोस के जिले के एक गांव में दंगा हो गया है और दो आदमी मारे गये हैं.

खबर वायरलेस से आयी थी. दंगा सांप्रदायिक था. पर जिले के पुलिस कप्तान ने भारतीय प्रेस की नकल करते हुए सिर्फ 'दो संप्रदायों की झड़प' की बात कही थी; उनके नाम नहीं खोले थे. उस इलाके के पुलिस महानिरीक्षक, यानी डी.आई.जी. की हैसियत से उन्होंने इस पुलिस कप्तान को हमेशा 'कामचलाऊ' और 'खराब' की विभाजन रेखा पर लड़खड़ाता पाया था. अब उन्होंने पक्के तौर से उसे खराब के खाने में डाल दिया; पत्नी से कहा, "लगता है पूरी खबर जानने के लिए अब मुझे भी बी.बी.सी. सुनना पड़ेगा."

पिकनिक की बात वहीं रह गयी. बोले, "पिस्सूराम का भी मेसेज आ रहा होगा. शायद मुझे भी मौके पर जाना पड़े."

ऐसा ही हुआ. उनका नाम लेते ही एक सिपाही ने, जो घर का बावर्ची भी था, अंदर आकर उनके सामने एक वायरलेस का संदेश पेश कर दिया.

यह उन पिस्सूराम की तरफ से था जिनका सरकारी नाम पुनीतराम चौधरी था और जो राज्य के पुलिस महानिदेशक थे. उन्होंने उम्मीद की थी कि यह मेसेज शायद वहां पर उनकी गैरमौजूदगी में पहुंचेगा, कि वे तब तक शायद मौके पर पहुंच चुके होंगे. अनुरोध किया गया था कि वहां से लौटते ही वे पूरे हालात की रिपोर्ट दें. दंगे पर काबू पाने और तुरंत शांति-व्यवस्था कायम करने के बारे में कोई हिदायत न थी. इतने ऊंचे ओहदेदार के लिए इसकी जरूरत नहीं समझी गयी थी.

दो आदमियों के मर जाने और कइयों के घायल होने की खबर के साथ ही पुलिस कप्तान के संदेश में था कि हालात पूरी तरह से काबू में हैं. उन्होंने पत्नी से कहा, "जल्दी से नाश्ता लगवा दो."

थोड़ी ही देर में नाश्ते की मेज पर वे, उनकी पत्नी और दोनों बच्चे बैठ गये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बच्चे को छोड़कर, जो दूरदर्शन के किसी विज्ञापन की लपेट में सिर्फ चाकलेट का टुकड़ा चाटता रहा, सबने कायदे से नाश्ता किया और बातचीत लड़के को चाकलेट की जगह नियमित नाश्ते के लाभ समझाने पर केंद्रित रही. बाद में पत्नी ने कोई मूली-सी बात याद करते हुए कहा, "बहुत जल्दी न हो तो पंद्रह मिनट रुक जाइए. सोचती हूं, हम लोग भी पापा के यहां चले चलें. रास्ते में हमें उतार दीजिएगा."

उन्हें जल्दी थी, पर वे इंतजार करने को राजी हो गये. लगभग ढाई घंटे बाद पूरा परिवार मोटर पर लद-फंदकर दंगाग्रस्त गांव की दिशा में बढ़ा.

जिस जिले में दंगा हुआ था उसमें पत्नी की खास दिलचस्पी थी. इसलिए नहीं कि वहां की इमरतियां मशहूर थीं—वे तो थीं ही—बल्कि इसलिए कि उस जिले में उनके पिता का एक फार्म था. बीवी के न रहने और शादीशुदा लड़के लड़कियों के अलग-अलग हो जाने पर वे फार्म पर 'जेंटिलमैन फार्मर' की हैसियत से अकेले रहते थे. वे ऊंचे सरकारी अफसर रह चुके थे और यहां गांव में खेतिहरों के बीच रहते हुए उनकी आत्मा को, जो इतनी लंबी सरकारी नौकरी के बावजूद यथावत् सुरक्षित थी, शांति मिलती थी. फार्म बड़ी सड़क से, जिससे उन्हें दंगाग्रस्त गांव तक पहुंचना था, चार किलोमीटर अंदर पड़ता था. पत्नी को वहां छोड़ने के बाद उन्हें लौटकर फिर सड़क तक आना था और आगे पैंसठ किलोमीटर जाना था.

"तुम्हें मैंने दिक्कत में डाल दिया. पर, क्या कहूं, पापा बड़ा अकेलापन महसूस करते हैं. आज नहीं तो दो-चार दिन बाद हमें आना ही पड़ता."

उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया; फिर कुछ देर सोचकर कार की खिड़की से बोले, "पापा को वह लेफ्टिनेंट गवर्नरी ले लेनी चाहिए थी."

"तुम नहीं समझ पाओगे; मां के न रहने से..."

"मैं समझता हूं." उन्होंने बीच ही में कहा और पत्नी ने उन्हें तीखेपन से देखा. उसे भरोसा नहीं था कि पति के ये शब्द पापा के गौरव के साथ पूरा-पूरा इंसाफ करते हैं. पर वह उनका चेहरा नहीं देख पायी, वे कार की खिड़की से बाहर की ओर देख रहे थे.

रास्ते में एक थाना पड़ता था. उन्होंने कहा, "मैं तब तक यहीं रुककर काम करूंगा." ड्राइवर से बोले, "मेम साहब को फार्म पर छोड़कर बीस मिनट में आ जाओ."

पत्नी को आश्वासन देने के लिए उन्होंने उसकी बांह पर हाथ रखा, कहा, "वहां सब ठीक रहा तो शाम का खाना पापा के साथ खायेंगे और आज ही रात वापस लौट चलेंगे."

उसके बाद अंग्रेजी स्कूल के बच्चों में प्रचलित विदा-समारोह के 'टा-टा' आदि के साथ सारे रस्मी शब्द-दृश्यों को समेटे हुए मोटर फार्म की ओर जाने वाले रास्ते पर तेजी से चल दी और वे दारोगाओं और सिपाहियों के बीच हत्या, डकैती, दंगा-फसाद की अपनी खास दुनिया में अकेले रह गये.

पत्नी के लिए फार्म पर बिताये गये दिन का वह टुकड़ा उसके अतीत और वर्तमान की सारी रूमानियत के रेशमी-ताने से तैयार हुआ था. अपने पापा के साथ वह अपने अतीत के स्वप्नों और वर्तमान के उससे भी ज्यादा लुभावने दिवा-स्वप्नों में खायी रही. यह दूसरी ही दुनिया थी.

पेड़-पौधों और दूसरी वनस्पतियों की झिलमिलाती हरियाली के बीच बनी छोटी-सी कॉटेज के बरामदे में पैर रखते ही उसे खुशी हुई थी पापा पहले से दो-चार साल कम ही दिख रहे थे; गालों पर पहले से ज्यादा दमक थी. वे जब बच्चों को प्यार से अपनी ओर खींचने में लगे थे तभी उनमें से एक ने काफी टेबुल पर रक्खी एक किताब की ओर इशारा करके कहा, "वह क्या है?"

"तुम्हारे कामिक्स!"

पर किताब के पन्ने पलटते ही बच्चे के चेहरे पर परेशानी झलकने लगी; बोला, "नानाजी, आप चीट कर रहे हैं." किताब का शीर्षक उसकी सुपरिचित अंग्रेजी में होने के बावजूद उसे पढ़ने में दिक्कत हुई; धीरे-धीरे उसने पढ़ा, "यो गा वा स़ी ष्ठा!" पूछा, "यह क्या है?"

उन्होंने किताब उसके हाथ से ले ली, कहा, "यह हम बुड्ढों की कामिक्स है."

उधर उनकी बेटी ने निष्ठापूर्वक कहा, "पापा, आपको बुड्ढा कौन कहता है?" इधर उन्होंने बच्चों को दोनों हाथ से कमरे के अंदर ठेला. बोले, "अंदर जाकर मेज पर देख लो. तुम्हारे नये कामिक्स का पैकेट एक कोने में रक्खा है... और, हां, आलमारी में भी देखना."

आलमारी में चाकलेट थे.

"आज का इतवार तो, पापा, रवी के लिए बरबाद हो गया. सवेरे आठ बजे ही दंगे की खबर आ गयी. दो लोग मारे गये हैं. पता नहीं, हिंदू हैं या मुसलमान!"

उन्होंने घड़ी की तरफ देखा; अचानक उनमें पुराना कर्तव्य-बोध जागा. बोले, "अब तक रवी क्या करता रहा? उसे वहां बहुत पहले पहुंच जाना चाहिए था."

"मेरी वजह से ही..."

"नहीं, नहीं, तुमसे क्या मतलब? शायद आजकल का तरीका ही यही है." फिर, "तुम्हारी साइनोसाइटिस अब कैसी है?"

धीरे-धीरे दिन बीता, सूरज डूबा. इन दिनों गोधूलि के क्षण ज्यादा लंबे होने लगे थे. आसमान साफ था पर क्षितिज में गोलाकार हल्की लाली थी और उसके निचले हिस्से में कालिख का एक वृत्त फैलकर गहराता जा रहा था. पछुवा हवा में ठंडक थी पर अभी उसमें पैनापन नहीं आया था. दूर-दूर तक लहलहाती हुई फसल को देखती हुई वह अपने पापा से बात करती रही.

बचपन के दिनों में पापा के साथ तंबुओं, डाकबंगलों और सर्किट हाउसों में बिताये गये दिन, शिकार, रईसों और अफसरों के जमघट, पार्टियां और दावतें, फिर दिल्ली का प्रवास, फिर वहीं का निवास—जहां पूरा परिवार छोटे शहरों की जिंदगी से पलटकर अंतर्राष्ट्रीय महामहिमों की सलीकेदार भीड़ में सहजता से सरककर घुल गया. मां की लंदन में मौत, मातमपुर्सी का माहौल, खुद प्रधानमंत्री का निजी शोक-संदेश.

पापा से बिछोह, पुलिस अफसर की मेमसाहब का रुतबा, पापा का रिटायरमेंट, उनका चमकदमक से संन्यास, यह फार्म, यह फसल, यह हवा, यह सुनमान, यहां कॉटेज, यह हरियाली...

"पापा, उस पिस्सूराम को सच्चे, ईमानदार, मेहनती अफसर अच्छे नहीं लगते!..."

"पापा, इस बार आपकी कॉटेज बहुत प्यारी लग रही है, ये फूल किसने सजाये हैं अंदर के कमरों में? किचेन में भी..."

"एक आदिवासी लड़की मिल गयी है. ईसाई है... जेन, आज मैंने उसे छुट्टी दे रक्खी है... बहुत अच्छी लड़की है, दुखी है, उसका मर्द जंगल विभाग में चौकीदार था. एक दुर्घटना में दो साल हुए...!"

"खाना भी बना लेती है?"

"सीख रही है. सूप बहुत अच्छा तैयार करती है."

पापा के ह्विस्की-सोडा का वक्त हो रहा था.

"पापा, आप कुछ दिन हम लोगों के साथ क्यों नहीं रहते?"

"तुम खुद कुछ दिन के लिए मेरे साथ आकर क्यों नहीं रहतीं?"

वे नाटकीय ढंग से चुप हो गये. एक चुस्की लेकर फिर नाटकीय ढंग से ही बोले, "फिक्र न करो बेटा, मैं बहुत खुश हूं."

"कुछ दिन के लिए अनिल के पास अमेरिका क्यों नहीं चले जाते?"

"तुम्हीं क्यों नहीं घूम आतीं? मैं किराये में मदद कर सकता हूं."

कोई खंभे के पास खड़ा था. "क्या हुआ मैनेजर साहब?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैनेजर साहब पतलून और पुलोवर में कसा हुआ चुस्त आदमी निकला. सामने आकर बोला, "वही बीजवाला मसला था."

"उसकी बात इस वक्त करोगे?"

"कुंवरजी आयेंगे न अभी? आप ठीक समझें तो उनसे बात कर लें."

वे कुछ सोचकर बोले, "कर लूंगा."

उसके जाने के बाद बेटी ने उनकी ओर सवालिया निगाह उठायी. कुंवरजी, यानी उसके अपने रवी, जनाब डी.आई.जी. साहब! उनके लिए कोई नया झंझट होगा, यानी खुद उसके लिए कोई नया तोहफा... रंगीन टी.वी.? या शायद हीरे के टाप्स?

"पांच एकड़ में—ऐग्रिकल्चर डिपार्टमेंट से तय करके—गेहूं का एक नया बीज बढ़ा रहा हूं. अब, इस जिले का कृषि-अधिकारी उसे बीज की हैसियत से सनद देने को तैयार नहीं है. हमारी पद्धति में उसे कुछ कमियां नजर आ रही हैं. किसी मिनिस्टर का भांजा है वह, सोचता है कुछ भी कर सकता है. अब दो ही रास्ते हैं. या तो फसल कटने पर इस गेहूं को मामूली गेहूं की तरह बेच दिया जाये, या महकमे से झगड़ा किया जाये. इतना तय है कि मैं उन लोगों को घूस नहीं खाने दूंगा और खुद उनसे बात भी नहीं करूंगा."

"रवी-रवी से बात कर लीजिए."

"वही तो हमारे मैनेजर साहब कहने आये थे."

अब चांद निकल आया था. बिजली की रोशनी की परिधि के बाहर ठंडी चांदनी में पेड़ों की अंधेरी शाखें हवा में हिल रही थीं. बेटी ने कहा, "रवी अपने यहां के डिप्टी डाइरेक्टर, ऐग्रिकल्चर से बात कर लेंगे. एक दीक्षित साहब हैं. हमारे यहां आया करते हैं. पंडित टाइप के आदमी हैं. प्याज तक नहीं खाते."

"और घूस?"

"शायद वह भी नहीं खाते."

शाखाओं में हवा का बहाव कुछ जोर पकड़ रहा था. वह उनका छाया-नृत्य एकटक देखती रही. कमरे की ओर मुंह करके उसने पुकारा, बच्चो, टी.वी. से कब तक चिपके रहोगे? क्या एक मिनट के लिए भी बरामदे में नहीं निकलोगे?"

दंगे की याद, जो किसी प्रागैतिहासिक चट्टान के नीचे दबी पड़ी थी, उन्हें तब आयी जब दूर से आती मोटरों की रोशनी सामने पेड़ों पर पड़ी.

दो मोटरों में आगे उन्हीं की कार थी, पीछे एक जीप में सशस्त्र पुलिस थी. उन्हें कॉटेज के सामने उतारकर गाड़ियां कुछ दूरी पर पेड़ों के पीछे जाकर खड़ी हो गयीं.

"कैसा रहा?" का उन्होंने तुरंत कोई जवाब नहीं दिया. एक ग्लास में बहुत थोड़ी-सी ह्विस्की डालकर, उसमें ऊपर तक सोडा भरकर वे एक आरामकुर्सी पर बैठ गये, फिर जोर की सांस खींचकर कहने लगे, "हालत तो खराब हैं पर शुक्र है खुदा का कि यह हिंदू-मुस्लिम दंगा नहीं है."

तब तक पापा ने बावर्ची को बुला लिया था, कहा, "उन लोगों को चाय पहुंचा दो, कुछ बिस्कुट वगैरह भी!"

बच्चे भी बरामदे में आ गये थे. वे बोले, "पांच मकान जले हैं. उनमें चार मुसलमानों के हैं और इत्तिफाक है कि उनके बीच पांचवां एक हिंदू का है. दरअसल, वहां के ठाकुरों की इन लोगो से काफी अर्से से मुकदमेबाजी चली आ रही थी. जमीन का झगड़ा था. गनीमत है कि पुलिस ने दोनों तरफ से एक सौ सात की कार्रवाई भी कर रक्खी थी पर कल शाम मामला अचानक बिगड़ गया. ठाकुरों के एक गोल ने दूसरे फरीक पर हमला बोल दिया. एक आदमी गोली लगने से मर गया. तीन को मामूली चोटें आयी हैं. एक आदमी आग में जलकर मर गया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुल मिलाकर हत्या और राहजनी का मामला है. कानूनन दंगा भी, पर सांप्रदायिक दंगा तो हरगिज नहीं."

"पी.ए.सी. लगा दी होगी?"

"कम से कम इस मामले में हमारे पुलिस कप्तान साहब मुस्तैद निकले. वे और डी.एम. कल रात ही वहां पहुंच गये थे. आज सवेरे नौ बजे तक हत्यारों में से बहुतों को पकड़ भी लिया गया है. उधर के भी दो-तीन लोगों को हिरासत में लिया गया है."

पत्नी बेचैनी से कुर्सी पर हिली.

"गांव? वह तो उजाड़ हो रहा होगा! जले हुए मकान, जली हुई लाश, गोलियों से मरे और घायल लोग . . . पता नहीं तुम लोग यह सब कैसे देख पाते हो!"

"डैडी, अभी टी.वी. पर वह फिल्म आयी थी न . . . दामुल? उसमें भी ऐसा ही था न? खूब गोलियां चली थीं, झोंपड़ियां जल रही थीं . . . !"

"बेटे, तुम लोग अंदर जाकर खाना शुरू करो. हमें घंटे भर ही में वापस लौटना है."

". . . दामुल में जो विलेन है न डैडी . . ."

पापा दोनों नातियों को पकड़कर अंदर ले गये. जब वे बाहर आये तो अपने दामाद को कहते सुना, "एक बड़ी ट्रैजिक बात लगी. जो आदमी उन झोंपड़ियों में जलकर मरा था, वह अपनी अकेली लड़की के साथ रहता था. बेचारी सत्रह-अठारह साल की मासूम लड़की है. वह रो तक नहीं पा रही थी. वह मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी. और बस खड़ी रही. अजीब हालत थी. बैठिए न पापा. पीछे कुछ दूरी पर कई औरतें रो रही थीं. पर वह मेरे आगे खामोश खड़ी थी और मुझे सिर्फ देख रही थी. मुझे भी नहीं, सिर्फ मेरे कंधे पर लगे बिल्ले को . . ."

पापा ने भौंहें सिकोड़ीं, पता नहीं हमदर्दी से या एक पुलिस अफसर की अनर्गल भावुकता के प्रति अवज्ञा से . . .

". . . फिर जब वह बोली तो बोलती ही रही, पर सिर्फ एक बात— कि मैं अब कहां जाऊं, बोलो, मैं अब कहां जाऊं!"

"तुमने क्या किया?"

"उसे कुछ दिनों के लिए शहर में औरतों के प्रोटेक्टिव होम में भेजने को कह दिया है. कल सवेरे उसकी बिरादरी का एक आदमी पुलिस के साथ उसे वहां ले जायेगा."

"कुछ और नहीं हो सकता था?"

"हमारे स्टाफ में एक सब-इंस्पेक्टर है, उसी तबके का है. वह उसे अपने घर में रखने को तैयार था. उसकी बीमार मां के लिए कोई चाहिए. पर उससे पुलिस की नीयत पर शुबहा किया जा सकता था."

"तुम जानते हो रवी, वे प्रोटेक्टिव होम्स, बस, यूं ही हैं. इनका भरोसा नहीं किया जा सकता."

"मैं जानता हूं पापा; फिर भी ये सरकारी संस्थाएं हैं. कोई दूसरा इंतजाम करना हम लोगों के लिए शायद और भी जोखिम की बात होती. हम लोग तो ग्लास हाउस में बैठे हैं. कोई भी पत्थर फेंक सकता है."

पापा तीसरा ग्लास भरने लगे. अनमनेपन से बोले, "कैसा वक्त आ गया है! इतनी बड़ी हुकूमत एक यतीम लड़की को कायदे की छत तक नहीं दे सकती!" वे अपने दामाद से बोले, "ऐसा ही था तो मैं ही यहां फार्म पर कुछ दिनों के लिए उसकी सरपरस्ती ले सकता था."

दामाद ने पैनी निगाह से ससुर को देखा, कहा, "वह तो बिल्कुल ही गलत होता पापा—आप खुद जानते हैं. आपसे मेरा इतना सीधा रिश्ता है . . ."

"फिर पापा," उनकी बेटी ने कहा, "एक नौकरानी आपको घर के लिए मिल भी गयी है."

वे कुछ नहीं बोले. बेटी ने उठकर कहा, "मैं खाने का देख लूं."

उसके जाने के बाद वे दामाद के पास खिसक आये और बोले, "तुम जा रहे हो रवी, पर यहां फार्म की एक समस्या है. तुम्हारे भी

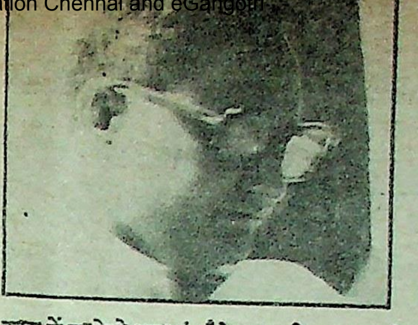

■ श्रीलाल शुक्ल

कान में डाले दे रहा हूं. मैनेजर पूरी बात तुमसे वहीं आकर बतायेगा . . ."

असली दंगा, जिसे सभी ने बिना लागलपेट के दंगा माना, तीन दिन बाद हुआ. यह दंगा शहर में, हूबहू पापा की आशंकाओं के अनुरूप, उस घटना के बाद हुआ जब वहां के प्रोटेक्टिव होम में दो दिन पहले भर्ती हुई एक लड़की, बकौल अखबारों के, रहस्यमय परिस्थितियों में गायब कर दी गयी.

वे अपनी रेंज के मुख्यालय से तुरंत इस शहर में आये और पूरी मुस्तैदी से दंगे को दबाने में लग गये. जब तक पी.ए.सी., बी.एस.एफ., फौज आदि की मदद से दंगे पर काबू पाया गया; पूरी घटना अखिल भारतीय समाचारों में शामिल हो गयी थी और प्रदेश के मुख्यमंत्री के आने के पहले ही केंद्रीय गृहमंत्री के आने का कार्यक्रम वहां पहुंच चुका था.

एक काबिल और चुस्त पुलिस अफसर की हैसियत से उन्हें कोई उलझन नहीं थी. वास्तव में उनके सहयोगियों में केंद्रीय गृहमंत्री की आमद को लेकर जितनी परेशानी थी, उनके मन में उसके लिए शायद उतनी ही उत्सुकता थी. अपनी साफ-सुथरी अंग्रेजी में ऊंचे स्तर की बैठकों में पूरे तथ्यों की तफसील देने, उनका विश्लेषण करके निर्णयों के सभी विकल्प प्रस्तुत करने और उनमें सबसे ज्यादा उपयुक्त विकल्प को स्वीकार कराने के लिए वे पूरी पुलिस फोर्स में विख्यात थे. जली हुई झोंपड़ियों के दूरवर्ती दृश्य का मुआयना करने के मुकाबले यह सारा काम ज्यादा दूरंदेशी और दक्षता की मांग करता था जिसकी वे अपने में कमी नहीं महसूस कर रहे थे. एक यतीम लड़की को असुरक्षित छोड़ देने के आरोप का वे पुलिस की तरफ से प्रेस को जो मुंहतोड़ जवाब दे चुके थे उसकी प्रेस तक में तारीफ हो रही थी.

एक हौसलेमंद और अनुभवी विमानचालक को कल अपनी मनपसंद मशीन पर चढ़कर खुले आकाश में विचरण करने का मौका मिलने वाला था. □

● बी-2251, इंदिरानगर, लखनऊ-226016

चलते-चलते

एक औरत थी. उसके दो जेठ और तीन देवर थे. गांव में परिवार-नियोजन का कैंप लगा. बहुत आदमियों और औरतों के आपरेशन किये गये.

उस औरत का पति बहुत भोला-भाला था. उनके पास पांच लड़कियां और दो लड़के थे. पति ने सुना तो झट से कैंप में पहुंच गया. आपरेशन के लिए अपना नाम लिखवा दिया. उसकी औरत भी उसके पीछे-पीछे दौड़ी आयी. पति कहे "मैं आपरेशन करवाऊंगा" . . .पत्नी कहे 'मैं करवाऊंगी'. . .डाक्टर हैरान थे कि इतनी जल्दी में दोनों ही क्यों ? केस तो ढूंढ़ने पर नहीं मिलते और ये दोनों ही तैयार हैं.

आखिर उस औरत ने एक लेडी-डाक्टर को दूर ले जाकर समझाया, "बहनजी, मेरी ही जूड़ी काट दो. मैं किस-किस का 'परेसन' कराती फिरूंगी? मेरे तो दो जेठ हैं और तीन देवर. विवाहित तो यह अकेला ही है, कंजर." □

—रामसरूप अणखी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवेन

भीष्म साहनी

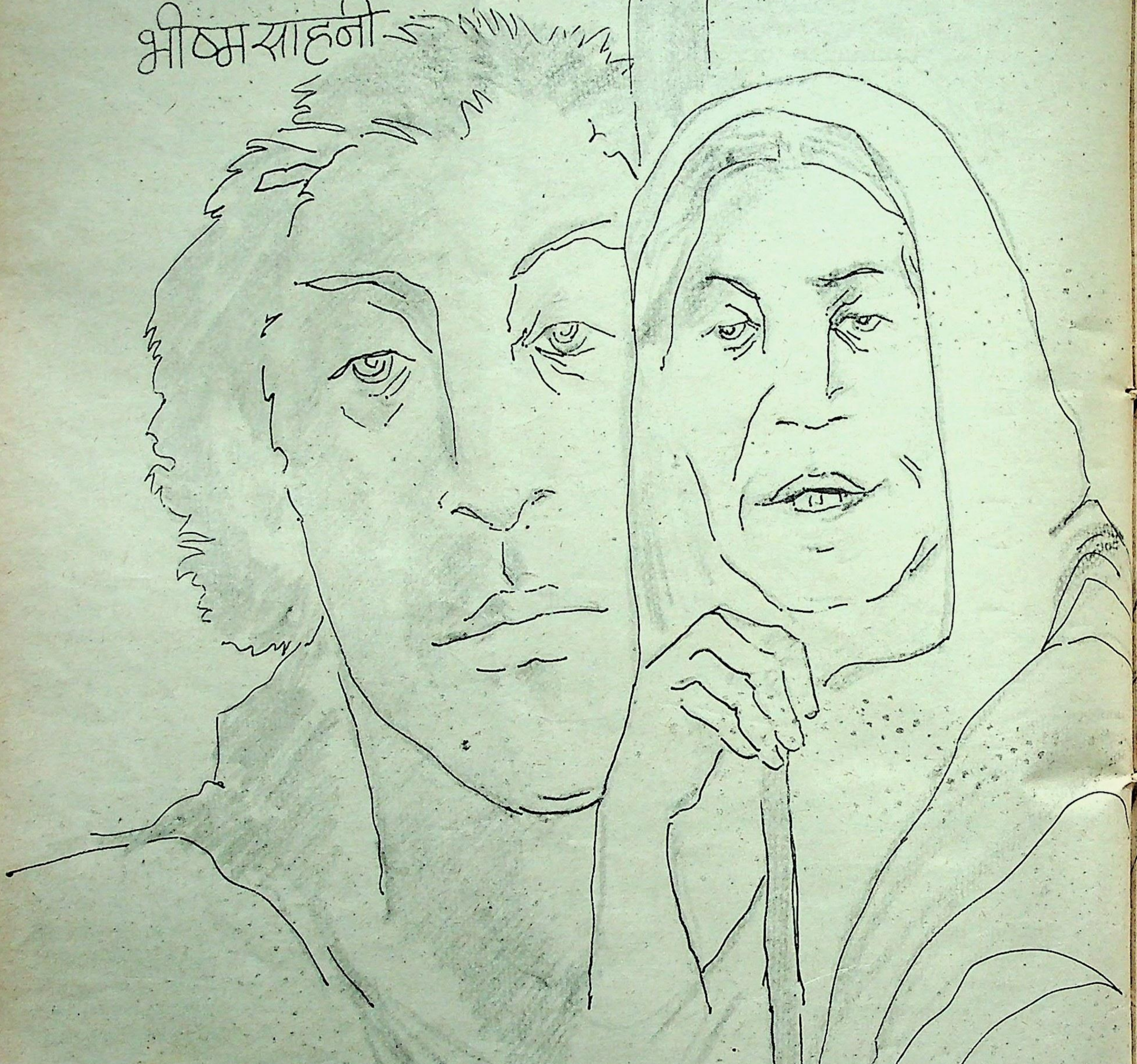

"मैं जानता हूं तुम क्या कहोगे. यही ना कि मां तभी भली लगती है जब हम उसे खो बैठते हैं! . . . पर ये सब कहने की बातें हैं मां को मेरी जरूरत नहीं मां ठीक-ठाक है. मुहल्ले में दसियों लोगों के साथ उनका उठना-बैठना है. . . हर रोज बिल्ली की तरह दस घरों का चक्कर काट आती है. नहीं जानता तो मैं किसी को नहीं जानता!"—प्रगतिशील दौर के महत्त्वपूर्ण कथाकार की कहानी कि हम अपने रिश्तों और माहौल के प्रति उदासीन होकर भी फिर-फिर वहीं उन्हीं के पास कैसे लौट आते हैं. . . क्यों लौट आते हैं!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दस और ग्यारह बजे का वक्त रहा होगा. जब मुझे फाटक के पास देवेन का डोलता साया नजर आया. मैंने खिड़की में से ध्यान से देखा. देवेन ही था. फाटक के पास अनिश्चय की सी स्थिति में खड़ा था, मानो असमंजस में हो कि अंदर आये या नहीं आये.

देवेन को देखते ही, सबसे पहले दिल में कुछ अकुलाहट-सी महसूस होती है. न जाने आज कौन-सी परेशानी उसे खींच लायी है. सड़क पर उसे चलते हुए देखो तो उसकी चाल-ढाल से लापरवाही झलकती है, लगता है जैसे टहलने निकला है. कुछ उसके लिबास से भी बेगानापन-सा झलकता है. रूखे उड़ते बाल, मैले-से कुर्ते के बटन खुले हुए, कभी दाढ़ी बनायी हुई, कभी नहीं. एकाकीपन में आदमी का जैसा हुलिया बन जाता है, वैसा ही हुलिया उसका बन चुका था. कुछ इसलिए भी मन को धक्का-सा लगता कि देवेन कभी भी मन-बहलावे के लिए गप्प-शप करने के लिए नहीं जाता था. वह बैठकबाज नहीं था, बल्कि बैठकों से दूर रहता था, ज्यादा वक्त वह अपने में ही सिमटा रहता था. इसलिए जब भी घर में आता तो यही विचार सबसे पहले मन में उठता, किसी मजबूरी में यहां आया होगा, कि कोई परेशानी उसे खींच लायी होगी. यह भी मुमकिन था कि यों ही चला आया हो, बिना किसी विशेष प्रयोजन के, यह सोचकर कि अंदर की कोई गांठ घर के बाहर निकलने पर, शायद अपने-आप ही खुल जाये. कभी-कभी ऐसा भी होता था कि वह देर तक बैठा रहता, बातें भी करता, पर दिल की बात दिल में ही लेकर लौट जाता.

फाटक लांघकर वह आंगन में आ गया था, पर वहां भी खड़ा डोल रहा था, जिससे मुझे लगा कि वह जरूर किसी गहरी उधेड़बुन में है.

"आओ यार, बाहर खड़े क्या कर रहे हो?" मैंने दरवाजा खोलते हुए कहा.

"काम कर रहे हो?" उसने मेरे मेज पर नजर डालते हुए अनमने ढंग से कहा, मानो उसकी नजर में मेरे काम की या किसी भी काम की कोई विशेष सार्थकता न हो, उसने मात्र रस्मी तौर पर ऐसा कह दिया हो. उसका ध्यान सचमुच किसी दूसरी ओर था.

कमरे में आकर भी वह मेरे मेज के सामने ठिठका खड़ा रहा. उसकी नजर मेज पर थी पर वह जैसे कुछ भी देख नहीं रहा था.

"मैं बाहर जा रहा हूं." उसने खड़े-खड़े ही कहा, "कहीं निकल जाना चाहता हूं! कम से कम कुछ देर के लिए मेरे लिए यह बड़ा जरूरी हो गया है."

"कहां जाओगे?"

मेरे सवाल पर उसने पहली बार मेरी ओर देखा, मानो अभी तक वह अपने-आपसे बात करता रहा हो.

"कहीं भी निकल जाऊंगा. . .शायद किसी पहाड़ पर."

"मुझे क्यों नहीं बताते. मैं तुम्हारा पीछा करने तो नहीं आऊंगा."

उसकी आंखों में हल्का-सा कंपन हुआ, जैसे मेरे वाक्य से उसे अप्रत्याशित-सा झटका लगा हो. जैसे किसी की आहट पाकर आंखें सतर्क-सी हो जायें. वह क्षण भर मेरी ओर देखता रहा, फिर कुर्सी पर बैठते हुए बोला, "नहीं, अभी फैसला नहीं किया है."

पिछली बार भी, लगभग दो वर्ष पहले वह पहाड़ों में निकल गया था, और जब लौटा था तो मेरे लिए काठ का एक खिलौना लेता आया था. वहां वह किसी निर्जन स्थान में पड़ा रहा था, जहां कोई पहाड़ी नाला था और कोई धुएं भरा ढाबा था जिसमें वह भोजन किया करता था. कुछेक और छोटी-मोटी घटनाएं उसके साथ घटी थीं, जिन्हें मैं भूल चुका हूं. पर साथ में वह एक उपन्यास भी लिखकर लाया था, जिसकी छपने पर खासी चर्चा हुई थी.

"क्या अबकी बार फिर छाती का बोझ हल्का करने जा रहे हो? दिमाग में कुछ फिर से घुमड़ने लगा है?"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया. केवल मेरी ओर देखता रहा, और उसकी आंखों में दूरी आ गयी, मानो कहना चाहता हो कि काश ऐसा हुआ होता.

फिर वह कुर्सी पर तनिक ढीला होकर बैठ गया.

"मैं अपने-आपसे भागकर जा रहा हूं." उसने कहा और अपनी पुरानी आदत के मुताबिक अपना दायां हाथ उठाकर हौले-हौले अपना सिर खुजलाने लगा.

"जिंदगी की पेचीदगियों पर पीठ मोड़ लेना ही सही तरीका है वरना वे आदमी का गला घोंट देंगी. मुझसे तो कोई मामला संभाले नहीं संभलता."

मेरा अनुमान ठीक निकला. वह किसी परेशानी में आया था, जैसे किसी गहरे गुंझल में फंसा हो.

"पर मुझे डर भी लगता है. मेरी मां को पीछे कोई मार ही नहीं डाले. आजकल ऐसी घटनाएं अक्सर घटती रहती हैं."

उसने मां का जिक्र किया तो उसकी मां का चेहरा और उसकी दुबली-सी काया मेरी आंखों के सामने आ गयी. उसकी मां से मैं कई बार मिल चुका था. पहली बार जब मैंने उसे देखा तो वह लकड़ी की एक सीढ़ी पर धीरे-धीरे चढ़ रही थी. हर बार देवेन के कमरे तक पहुंचने के लिए उसे यह सीढ़ी चढ़ना पड़ती थी. उस पुरानी सीढ़ी पर डंडहरे नहीं थे, और बुढ़िया के घुटनों में गठिया का दर्द बैठा हुआ था. उसके बाद जब भी देवेन अपनी मां का जिक्र करता तो मेरी आंखों के सामने वही चित्र उभर आता था.

देवेन और उसकी मां में एक गुण समान रूप से पाया जाता है. अंदर से भले ही कितने परेशान क्यों न हों, उनकी आवाज में उत्तेजना का कहीं लेशमात्र नहीं होता. उसकी मां को अंदर से भले ही रुलाई आ रही हो, पर वह बड़ी समतल, संतुलित और सुलझी हुई भाषा में ठहर-ठहरकर बात करती थी, और जब बात करती तो उसकी बात बड़ी विवेकपूर्ण और तर्कसंगत लगती थी. यह गुण देवेन में भी था. और शायद मां की इसी समतल, तर्कसंगत आवाज से देवेन ऊब उठता था.

"इसे कुछ समझाओ", वह मुझसे कहा करती, "मेरी खातिर कुछ न करे, पर अपनी जिंदगी को तो संभाले. यह तो उलटा अपनी जिंदगी को बरबाद करने पर तुला है."

और जब मैं कहता कि नहीं, देवेन तो बड़ा समझदार है, तो वह मेरी बात काटकर कहती, "दिमाग तो इसके बाप का भी बहुत अच्छा था. पर 'न किसी कोर न मसले'. . यह खुद भी खाक छान रहा है और मुझे भी इस उमर में तड़पा रहा है."

ऐसे समय में बुढ़िया का चेहरा तमतमा रहा होता. यह रक्त चाप के कारण रहा हो या आंतरिक क्षोभ के कारण, पर उसकी आवाज बराबर समतल बनी रहती.

यह पुराना किस्सा था. मां वर्षों से चाहती थी कि देवेन अपना घर बसाये. 'खुद भी चैन से रहे और मुझे भी दो दिन चैन के नसीब हों,' पर उसका यह आग्रह भी धीरे-धीरे शिथिल पड़ता जा रहा था क्योंकि देवेन अब घर बसाने की उम्र पार कर चला था और मां भी जान गयी थी कि जो अभी तक नहीं हुआ, वह अब क्या होगा.

वैसी समतल, तर्कसंगत आवाज में देवेन भी अपनी मां की चर्चा करते हुए कहता, "अगर वह मेरी शादी की बात करती है तो वह मेरे खुद का नहीं सोचती, वह चाहती है कि मैं बहू को घर में ले आऊं ताकि यह मुझे काबू में रख सके, ताकि वह बहू पर भी हुकूमत कर सके."

एक अन्य प्रसंग में भी देवेन ने अपनी मां के बारे में ऐसा ही कुछ कहा था. . .

"वह पैसे को दांतों से पकड़ती है. वह समझती है मैं घर-बार बेच-बाचकर कहीं भाग जाऊंगा. उसे सारा वक्त इसी बात की चिंता लगी रहती है."

मुझे खटका हुआ, इस बात का नहीं कि मां-बेटे के बीच तनाव बढ़ने लगा है, इस बात का कि देवेन की आंतरिक यातना बढ़ने लगी है. वह समझता था कि मां के बारे में इस तरह से बात करते हुए वह कटुता से बात नहीं कर रहा है, वह केवल मां के चरित्र का विश्लेषण कर रहा है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

यह भी इस बात का संकेत था कि देवेन का मानसिक तनाव बढ़ रहा है. ऐसी स्थिति में मैं उसे पहले भी देख चुका था, जितना तटस्थ उसका विश्लेषण होता उतना ही अधिक अंदर से उसकी लाचारगी बढ़ रही होती और स्थिति उसके काबू से बाहर होती जान पड़ती.

परेशानियां उसकी जिंदगी में तरह-तरह की थीं और बहुत थीं. इस पर उसकी कल्पना अपनी समस्याओं को लेकर उन पर अपना ही ताना-बाना बुनती रहती थी, यहां तक कि कभी-कभी उसे स्वयं पता नहीं चल पाता था कि वास्तव में क्या घटा था और क्या नहीं घटा था. उसकी कल्पना वास्तविक स्थिति में अपने ही रंग भरती रहती थी. जिससे उसकी यातना और भी बढ़ जाती थी. वह अपने भाई को मन ही मन तरह-तरह की स्थितियों में देखा करता और हर बार उसकी बेचैनी बढ़ जाती. वह सोचता कि उसके भाई को कहीं बंद कर रखा है, कि बंद दरवाजों के पीछे उसका भाई हताश और बेसुध, अभी भी इस इंतजार में बैठा है कि किसी दिन उसका भाई आकर उसे बचा लेगा. या वह मन ही मन देखता कि दो बड़ी-बड़ी मूंछोंवाले आदमी, बाजार के बीचोंबीच उसके भाई को हांके लिये जा रहे हैं, उसके भाई के हाथ पीठ पीछे बंधे हैं, और आंखें दायें-बायें, रह-रहकर अपने भाई को ढूंढ रही हैं.

उसके पुश्तैनी मकान का भी झगड़ा चल रहा था. उसके बारे में भी सोचकर उसके हाथ-पांव फूल जाते थे. वह महीनों तक उससे आंखें चुराये रहता, फिर सहसा उत्तेजित-सा होकर उससे जूझने की कोशिश करता, कुछ दिन के लिए बड़ी दौड़-धूप करता, इससे मिल, उससे मिल, पर शीघ्र ही थककर हार जाता, और फिर महीनों तक कुंभकरण की नींद सो जाता था. एक बार तो एक वकील तक के पास जा पहुंचा था. दो दिन तक बराबर उसके पास जाता रहा था, पर फिर उस मामले को ऐसा भूला कि पूरे छह महीने तक वकील को अपना मुंह नहीं दिखाया. यहां तक कि अपनी फाइल भी वकील के दफ्तर में ही छोड़ आया था.

कोई दूसरा आदमी होता तो बड़े इतमीनान से अपनी बहुत-सी समस्याओं को दृढ़ता से सुलझा लेता. पर देवेन तो उस मिट्टी का बना नहीं था. उसे तो कोई सरकारी चिट्ठी आ जाती तो वह विचलित हो उठता था. हां, तर्क-वितर्क में, विश्लेषण करने में, निष्कर्ष निकालने में वह बड़े संतुलित, विवेकशील, बड़े निश्चेष्ट ढंग से बात करता था. पर जब उस पर यथार्थ जीवन की परेशानियां हावी हो जातीं तो वह अपना संतुलन खो बैठता. जिस तरह वह फाटक पर मंडराता रहा था, और दायें-बायें देखता रहा था, उससे लगता था जैसे वह गलियों में से भागता हुआ मेरे घर तक पहुंचा है, जैसे पीछे से उस पर पत्थर पड़ रहे हैं. अंदर आ जाने पर भी वह देर तक मेरी ओर फटी-फटी आंखों से देखता रहा था.

"मैं पागल हो जाऊंगा, अगर मैं कुछ देर के लिए बाहर नहीं चला गया." उसने फिर से कहा.

"कहां जाने की सोच रहे हो?"

"कहीं भी निकल जाऊंगा." उसने कहा, फिर बुदबुदाता हुआ-सा बोला, "अपने-आपसे कुछ देर के लिए पिंड छुड़ाना जरूरी हो गया है."

"और मां? क्या उन्हें भी साथ ले जाओगे?"

"मैं उससे भी भागकर जाना चाहता हूं." उसने कहा फिर अपनी तर्कसंगत, समतल आवाज में बोला, "बुढ़िया मुझे पकड़े रहना चाहती है. बूढ़े लोग चिपट जाना चाहते हैं. वह एक ही राग सारा वक्त आलापती रहती है. मैं तंग आ गया हूं. रोज सीढ़ियां चढ़कर मेरे कमरे में पहुंच जाती है. पहले, घंटों एक ही बात की रट लगाये रहती थीं, शादी करो, अपना घर बसाओ. अब सारा वक्त अपने बुढ़ापे का रोना रोती रहती है. देखो, मुझे गठिया का रोग है, मेरे लिए सीढ़िया तक चढ़ना मुश्किल है. मैं किसी दिन चक्कर खाकर गिर पड़ूंगी. तुम मुझे बुढ़ापे में खुद तो क्या दोगे, उलटा मुझे नोच-नोचकर खा रहे हो."

हमारी आंखे मिलीं. हम क्षणभर के लिए एक-दूसरे की ओर देखते रहे. फिर देवेन बोला, "मैं जानता हूं, तुम क्या कहोगे. यही ना कि मां तभी भली लगती है जब हम उसे खो बैठते हैं! . . . पर ये सब कहने की

योगनिद्रा

अभी. . . आप बेफिकर होकर चैन की नींद सो सकते हैं. . . बिना नींद की गोलियों के!

•बहोत ही असरदायक आयुर्वेदिक इलाज •नींद न आती हो •बाल झड़ते हों आंखों, हथेली, पैर की जलन •मानसिक तनाव •सिरदर्द में बहोत ही फायदेमंद है.

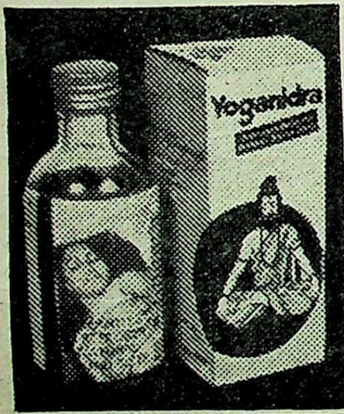

नई! आयुर्वेदिक खोज!

विक्रण व्यवस्था:
यू. अेफ नेटवर्क असोसियेटस

३७, जेल रोड (दक्षिण) डोंगरी, बम्बई-४०000८
फोन : ८७२१०२८

रात को सोते समय केवल चन्द कतरे सर पे लगाने से ये अपनी कमाल दिखाता है.

योगनिद्रा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

▣ भीष्म साहनी

बातें हैं." फिर वह मुझे समझाते हुए बोला, "मां को मेरी जरूरत नहीं है. मां ठीक-ठाक है, चिंता की कोई बात नहीं है. मुहल्ले में दसियों लोगों के साथ उसका उठना-बैठना है. वह हर रोज बिल्ली की तरह दस घरों का चक्कर काट आती है. नहीं जानता तो मैं किसी को नहीं जानता." फिर शायद मेरे चेहरे पर संशय का भाव देखकर बोला, "बड़ी पुख्ता औरत है. तुम क्या जानो, बाप तो हमारा जवानी में मर गया था. इसने हम बहन-भाइयों को इस तरह हिफाजत से रखा है जैसे चील अपने घोंसले पर बैठकर अपने बच्चों की हिफाजत करती है. हमारी तरफ कोई आंख उठाकर देख तो जाये. मां अंतड़ियां भी निकाल ले."

"तब तो वह जवान थी ना, पर अब बात दूसरी है."

"अब भी वही बात है, जहनियत उसकी अभी भी वही है. वह चाहती है, मैं घर पर बैठूं ताकि वह मेरे सिरहाने चील की तरह आकर बैठ जाया करें. आकर घंटों व्याख्यान दे सके."

"हर व्यक्ति और किसी पर रहम करे या नहीं करे, अपने पर रहम जरूर करता है."

"मैं कुछ और देर यहां बना रहा तो जरूर पागल हो जाऊंगा. मुझे लगता है जैसे जिंदगी मुझे अपने दांतों में पकड़कर झिंझोड़ रही है या तो मुझे मार डालेगी, या लहूलुहान करके छोड़ेगी." उसकी कल्पना फिर से अपनी स्थिति में तरह-तरह के रंग भरने लगी थी.

फिर मुझे आश्वासन देते हुए बोला, "चिंता नहीं करो, दो-एक महीने की ही तो बात है."

"मैं तुम्हारे पीछे उनकी खबर लेता रहूंगा," मैंने कहा, "तुम यदा-कदा उन्हें खत लिखते रहना."

"यह मुझसे न होगा." उसने छूटते ही कहा.

"क्यों? क्या इतना भी नहीं कर सकते?"

"मैं कुछ देर के लिए सब कुछ भूले रहना चाहता हूं. बुढ़िया की काठी मजबूत है. . .अभी बहुत दिन तक जियेगी."

देवेन मेरे मुंह से मेरा मत सुनने नहीं आया था. वह तो जैसे केवल सूचना देने आया था. थोड़ी देर तक मेरे सामने बैठे रहने के बाद, वह उठा, और बिना दुआ-सलाम की औपचारिकता निभाये कमरे से बाहर निकल गया.

दूसरे दिन प्रभातवेला में देवेन अपने कमरे में से निकला और सीढ़ियां उतरकर नीचे आया. बगल में ही मां का कमरा था. मां फर्श पर चटाई बिछाये, उस पर पड़ी थी. गठिया के दर्द के कारण उसने अपने दुपट्टे से अपना दायां घुटना बांध रखा था. उसका शरीर तपने लगा था. बुखार और दर्द में हौले-हौले कराहते जाओ तो ध्यान दूसरी ओर बंट जाता है और उससे थोड़ी राहत मिलती है.

उसे बेटे के कदमों की आहट मिली तो वह चुप हो गयी. यह जो सीढ़ियां उतरकर आया है तो लगता है इसका मन बहल गया है, इसे मेरी चिंता हुई है. है तो बड़ी अकड़वाला, सदा मनमानी करनेवाला, पर अब जो हौले-हौले चला आ रहा है तो लगता है इसे पछतावा हुआ है, मेरी सुध लेने आ गया है.

देवेन की काया कमरे के खुले दरवाजे में प्रगट हुई. मां ज्यों की त्यों दम साधे लेटी रही. देवेन क्षण भर के लिए कमरे की दहलीज पर खड़ा रहा, फिर उसकी गहरी खरज अवाज सुनायी दी; "मां, मैं जा रहा हूं. दो महीने बाद लौटूंगा. अपना खयाल रखना."

और उन्हीं कदमों दरवाजे में से हट गया. मां ने सिर उठाकर देखा, बेटे के कंधों पर से दो झोले लटक रहे थे, सिर पर टोपी भी पहने हुए था.

उसके दिल में हूक-सी उठी. इस कसाई को मुझ पर तनिक भी दया नहीं आयी. बुचका उठाकर चल दिया है.

"तेरे बहाने तो समझ. . .तेरी मां मर गयी."

मां ने बिफरकर कहा और फिर से कराहने, हाय-हाय करने लगी.

पर देवेन रुका नहीं. दरवाजे की चौखट में से उसकी काया हट गयी थी और अब वह छोटा-सा बरामदा पार कर दूसरी सीढ़ियों की ओर जा रहा था जो नीचे आंगन में उतरती थीं.

कराहती मां के कान बेटे के कदमों की ओर लगे थे. सीढ़ियां उतरने की धीमी-धीमी आहट आ रही थी. सहसा वह व्याकुल हो उठी. उसके मन में फिर उथल-पुथल मचने लगी. सीढ़ियों पर से उतरता देवेन उसे बेहद अकेला लगा. निपट अकेला, न जाने कहां भटकता फिरेगा. मुझे सुख नहीं देता तो आप कौन-सा सुखी है. हर राह जाता उसे परेशान करता है. दर-दर की ठोकरें खाता फिरता है.

वह उठ बैठी और दोनों घुटने पकड़े धीरे-धीरे चलती हुई बरामदे में आ गयी, "अब जा रहा है तो अच्छा काम करके लौटना. मेरी परवाह नहीं करना. अपने खाने-पीने का इंतजाम कर लेना. मुझे बोलता तो मैं साथ ले जाने के लिए घी का डिब्बा ले आती. पर तेरे लिए मैं जैसे हुई न हुई."

देवेन ने मुड़कर नहीं देखा. ठिठका भी नहीं. दो थैलों को उठाये, एक में केवल कागज थे—कोरे कागज, सस्ते, जो स्कूली बच्चों को कम दाम पर जुटाये जाते हैं, और दूसरे थैले में एक गर्म जाकेट, दो-तीन कपड़े, साबुन, तौलिया. . .

बुढ़िया लौट आयी और फिर से कराहती हुई चटाई पर पड़ रही.

अड्डे पर से बस के छूटने की देर थी कि देवेन के तन-बदन में स्फूर्ति की लहर दौड़ गयी. खट-से जैसे उसका नाता अपने संदर्भ से कट गया. ऐसा देवेन के साथ हमेशा होता था, सहसा वह स्वच्छंद-सा महसूस करने लगा. सभी बंधन कट गये, बेड़ियां कट गयीं, सचमुच हवा में हिलोर-सी आ गयी, एक नयी ताजगी.

उसने झांक कर बाहर देखा. दिन धीरे-धीरे खुल रहा था, पीली पुताईवाले घरों की लंबी पांत थी, जिसे देखकर उसे स्निग्धता का भास हुआ. (बंद दरवाजों के पीछे जिंदगी धड़क रही है). बच्चे स्कूलों को जाने लगे थे, ताजादम, खिले, हंसते चेहरे. देवेन को लगा जैसे वह पहली बार यह निखरा-निखरा दृश्य देख रहा है. पतंग जब कटकर आसमान में तैरती फिरती होगी तो उसे अपार सुख का अनुभव होता होगा. न कोई निश्चित दिशा, न कोई उसे नीचे खींचनेवाला. बस हवा की लहरों पर तैरती हुई. सड़क पर उतरेगी तो उसके पीछे भागते लड़के ही उसे नोंच डालेंगे, पर यह थोड़ी देर के लिए हवा की लहरों पर इठलाना, असीम सुख के गिने-चुने क्षण, देवेन को लगा जैसे वह भी कटी पतंग की तरह ही तिरता चला जा रहा है.

बस शहर में से निकलकर लंबी सड़क पर आ गयी. दृश्य और भी अधिक सुहावना हो चला था, इसमें नये-नये रंग भर गये थे.

दूर-दूर तक फैले-खेतों में सरसों लहलहा रही थी. बहती हवा के कारण खेतों में लहरिये उठ रहे थे. खेत का खेत झुक-झुक जाता, फिर समूचे खेत में सिरहन-सी उठती. सारी प्रकृति किसी हिलोर में मतवाली हो रही थी. तभी जगह-जगह खड़े पेड़ उसे नर्तकों जैसे लगे, प्रत्येक पेड़ अपनी विशिष्ट मुद्रा में किसी लय पर सभी नाचते हुए. उसे लगा जैसे सृष्टि का अपार सौंदर्य उसे गहरे आलिंगन में बांध रहा है. उसे अपना रहा है, अपने में समो रहा है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंत्रमुग्ध-सा वह बाहर का दृश्य देखे जा रहा था. हर पल प्रकृति अपने किसी नये रूप पर से घूंघट उठा रही थी.

बस अब किसी गांव के निकट पहुंच रही थी. एक ऊंचे चबूतरेवाले कुएं पर स्त्रियों का झुरमुट उसे नजर आया. रंग-रंगीले घाघरे पहने कुछ स्त्रियां, छलछलाते घड़े उठाये, कुएं के चबूतरे पर से उतर रही थी, स्त्रियों की एक और पांत, खेत लांघती हुई कुएं की ओर बढ़ रही थी. चबूतरे पर खड़ी स्त्रियां हंस-बतिया रही थीं, कोई पानी खींच रही थी, कोई सिर पर घड़ा रख रही थी. उसे लगा जैसे उनकी एक-एक भंगिमा भी उसी लय पर चल रही है, जिस पर खेतों में लहरिये उठ रहे हैं, जिस पर पेड़ नर्तकों की भांति नाच रहे हैं. सृष्टि का समूचा सौंदर्य उनमें सिमट आया है. देवेन को लगा पुरुष के जीवन में स्त्री, प्रकृति का सारा रूप-लावण्य लेकर आती है, पुरुष उसकी ओर इसीलिए आकृष्ट होता है क्योंकि उसमें उसे प्रकृति की छवि नजर आती है. पुरुष के लिए स्त्री, प्रकृति का ही प्रतिरूप है. . . मंत्रमुग्ध-सा वह एक के बाद एक दृश्य निहारता चला जा रहा था.

जिस दिन देवेन अपना बुचका उठाकर निकल गया था, उसके दो-तीन दिन के बाद ही उसकी मां मुझे मार्कीट के पास मिली थी. सुबह के लगभग ग्यारह बजे होंगे. उसके हाथ में बड़ा-सा डिब्बा था, उसकी धुंधली आंखें रास्ते को शायद ठीक तरह से देख नहीं पा रही थीं. डिब्बे को छाती से सटाये, धीरे-धीरे रास्ता टटोलती हुई वह आगे बढ़ती जा रही थी.

ऐन जब मैं उसके पास से गुजर रहा था तो उसकी धुंधली आंखें मेरी ओर मुड़ीं और मेरे चेहरे पर ठिठक गयीं और वह मुस्कराकर खड़ी हो गयी.

"देवेन तो चला गया है, तीन दिन हुए गया है," फिर हल्की-सी शिकायत के से लहजे में बोली, "मुझे तो कुछ बताकर नहीं गया कि कहां गया है. मुझे तो वह बेवकूफ समझता है." फिर हाथ में उठाये डिब्बे की ओर आंखें फेरकर बोली, "मिट्टी का तेल लेने जा रही हूं. दो जून रोटी तो पेट में डालना है ना."

फिर मेरी ओर देखकर मुस्करायी, "तुम्हें चिट्ठी लिखता है ? मुझे तो वह चिट्ठी भी नहीं लिखता. पिछली बार जब गया था तो ढेरों रुपये खर्च कर आया था. मैं इधर पैसा-पैसा जोड़ती रहती हूं, और वह उजाड़ने पर लगा हुआ है. . . वह अपना घर बसाता, मुझे भी दो दिन चैन के नसीब होते. . . तुम्हीं उसे कुछ समझाओ, तुम्हारी बहुत मानता है, मेरा न करे, अपना तो कुछ खयाल करे."

वह एक बार फिर धीरे-से मुस्करायी और अपना रास्ता टटोलती हुई मार्कीट की ओर बढ़ गयी.

नयी जगह पर पहुंचकर दो-एक दिन तो देवेन कहीं रह पाने के लिए जगह की तलाश में भटकता रहा. आखिर एक जगह उसे मिल गयी, छोटी-सी कोठरी थी, पर साफ-सुथरी और सड़क से हटकर भी, ऊपर की मंजिल पर थी, नीचे दो छोटी-छोटी दुकानें थीं. कोठरी में पिछली खिड़की खेत पर खुलती थी, जिसके पार, पहाड़ी के दामन में एक नाला बहता था. बड़ी मुनासिब जगह थी. एक छोटा-सा मेज भी उसे मिल गया था. मेज न भी मिलता तो वह फर्श पर पालथी मारकर काम कर सकता था.

दूसरे दिन वह लिखने बैठा. उस समय सुबह की उजली-उजली धूप पेड़ की टहनियों में से छन-छनकर उसके कमरे में पड़ रही थी. देवेन का मन संयत था, वह बहुत कुछ संतुष्ट भी था, पर अजीब बात है, उसकी कलम नहीं चली. कलम उठायी ही थी कि जैसे मन खाली हो गया. जिस नावल का पूरा का पूरा मसौदा उसके दिमाग में था, वह सारा का सारा जैसे रफूचक्कर हो गया. उसके छिटपुट अंश उसे याद आते, पर जब उन्हें कलमबंद करने लगता तो वे इतने बेमानी, इतने तुच्छ और निरर्थक लगते कि उन्हें कलम पर लाना ही उसे यातना-सी लगने लगी. दसियों कागज काले किये और फाड़ डाले. मन को एकाग्र करने की कोशिश की तो वह कहीं पर टिक ही नहीं पा रहा था. देवेन का कहना है कि वह उठ खड़ा हुआ और बाहर घूमने निकल गया. पहले दिन तो वह दिन भर घूमता रहा. कभी खेत की मेढ़, पर कभी पेड़ों के झुरमुट में, बहुत-सी देर वह नाले के किनारे बैठा रहा.

वह दिन तो कोरे कागज की तरह खाली निकल गया. दूसरा दिन भी वैसे ही बीता, तीसरा दिन भी, यहां तक कि उसे कोफ्त होने लगी और वह बेचैन हो उठा. फिर देवेन का कहना है कि वह चौथे या पांचवें दिन, निष्प्रयोजन ही खिड़की के सामने खड़ा था और निश्चय नहीं कर पा रहा था कि मेज पर बैठने की चेष्टा भी करे या नहीं करे कि उसकी आंखों के सामने एक बुढ़िया, लाठी हाथ में लिये, घास-पात के गट्ठर को पीठ पर लादे, धीरे-धीरे खेत की मेढ़ पर चलती हुई आयी. वह कुछ बुदबुदा रही थी, रह-रहकर रुकती, दम लेने के लिए दोनों हाथ लाठी पर रखे, थोड़ी देर तक झुकी खड़ी रहती, फिर धीरे-धीरे पग-पग आगे बढ़ने लगती. उसके होंठ बराबर फरफरा रहे थे. उसे देखकर एक अजीब-सी टीस देवेन के मन में उठी. फिर उसे याद नहीं, वह कब मेज पर बैठा, कब उसने कलम उठायी, और कब उसके मन में ज्वार-सा उठने लगा, एक लहर पर दूसरी लहर, एक से दूसरी अधिक प्रबल और वेगवती. दिल का दर्द बढ़ता जाता, मन में उद्वेग और अशांति और दर्द, कोई अंत ही नहीं था. बुढ़िया कब खेत पार कर गयी, कब उसकी छवि उसकी आंखों के सामने से ओझल हो गयी, उसे कुछ मालूम न था. बस, एक कसक थी और कागज पर दौड़ती उसकी कलम, एक के बाद एक दरवाजे खुलने लगे, दिल था कि खाली होने में नहीं आ रहा था, भरता ही जाता था, भरता ही जाता था ! मन, सिर उठाने को करता ही नहीं था. लगता था कि सिर उठाया तो हाथ में से कुछ फिसल जायेगा, उसे कुछ मालूम नहीं था कि वह क्या लिखे जा रहा था, केवल एक ही बात का भास था कि जो कुछ कलम पर उतर रहा है उसे उतरना ही है, उसे रोकना बहुत बड़ा अपराध होगा.

पंद्रह दिन में दिल का घटक खाली हुआ और वह उसी दिन बुचका उठाकर घर लौट आया.

जब लौटकर घर पहुंचा तो मां सचमुच सीढ़ी पर से गिरकर दायीं जांघ की हड्डी तोड़ चुकी थी.

जब अपने वचनानुसार, मैं मां की सुध लेने उनके घर गया तो बुढ़िया की जांघ पलस्तर में थी, उसका हाथ देवेन के हाथ में था और देवेन उसे हंसाने की कोशिश कर रहा था.

"अच्छा, अब बहुत बोल नहीं, तू बोलती बहुत है."

"अब भी नहीं बोलूं ? इतने दिन तक तो दीवारों को ताकती रही हूं." फिर हंसकर बोली, "अच्छा हुआ जो जांघ की हड्डी टूट गयी. अब कुछ दिन तू घर पर तो रहेगा." पर कहते-कहते उसकी आंखें भर आयीं, "तुम्हें ज्यादा दिन तक नहीं रोकूंगी, बच्चा ! तू जल्दी ही आजाद हो जायेगा. फिर जहां मन आये जाते रहना. पहाड़ों की सैरें करना." ☐

● 8/30, ईस्ट पटेल नगर, नयी दिल्ली–110008

क्या है समाजवाद?

▣ नीत्शे

समाजवाद का अर्थ है, प्रगति की मृत्यु. समाजवाद के नारे लगाने वाले केवल आलस्य फैलाते हैं. ये लोग इस मूल तत्व को नहीं समझते कि सब आदमी बराबर नहीं हो सकते. ऐसा होने पर बिचौलियों की बहुतायत हो जायेगी और भेड़ों का ढेर. कोई गडरिया नहीं होगा, सब भेड़ें रह जायेंगी. ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांध

कुंवर नारायण

अपनी जमीन से जुड़ने की बात यों ही नहीं कही जाती, उसके कुछ गहरे मानी हैं, जिन्हें मैकाले की शिक्षा पद्धति में ढले हम नये लोग प्रायः समझ ही नहीं पाते! आखिर क्यों हम अपने परिवेश को विदेशी प्रभाव से मुक्त नहीं करते! आयातित समझ से जुड़े ऐसे सवालों का सूक्ष्म विश्लेषण प्रख्यात कवि-कथाकार और विचारक कुंवर नारायण की नजर से...

अबकी गांव गया तो पक्का इरादा करके गया था कि कुछ भी हो जाये, बाबा से किसी भी बहस में नहीं पड़ूंगा. अस्सी बरस के बाबा पुराने जमाने के ही आदमी नहीं थे, ठेठ गांव के भी आदमी थे. ठेठ गांव का आदमी होना गलत नहीं, मगर वो अपने को आधुनिक और उन्नतिशील विचारों का आदमी भी मानते थे. वैज्ञानिक चिंतन पर खासा जोर देते थे. उनकी दृढ़ मान्यता थी कि विज्ञान की जड़ें भी भारतवर्ष में ही थीं, जहां से विदेशी उसे लूट ले गये. उनकी तर्क क्षमता की पूरे गांव में धाक थी. पंचायत कोई भी फैसला देने से पहले बाबा का मुंह देखती थी.

मुझको बाबा सिर्फ इसलिए एक चुनौती मानते थे, क्योंकि मैं बचपन से शहर में रहा था, वहीं पढ़ा-लिखा था और उनके विचार से मेरे तथा उनके बीच शहर बनाम गांव वाली असहज स्थिति बनती थी. वैसे तो बाबा मिडिल पास ही थे, मगर घर पर संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी और थोड़ी बहुत फारसी भी पढ़े थे. बृज-भाषा काव्य के रसिक थे, पर मानते अपने को उसका मर्मज्ञ थे. बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर का 'गंगावतरण' उन्हीं से सुन चुके थे. उर्दू का सबसे बड़ा कवि नजीर अकबराबादी और फिर अनीस को मानते थे. मैंने एक बार मीर, गालिब और इकबाल का नाम लिया तो मुझ पर टूट पड़े, "तुम न हिंदी समझो, न उर्दू; और अंग्रेजी, जिस पर इतना नाज है, उसका एक भी वाक्य सही लिख नहीं सकते. तुम लोग साहित्य की बारीकियां क्या समझोगे!" 'तुम' की बजाय 'तुम लोग' महत्त्वपूर्ण बहुवचन था, बाबा के लिए मैं केवल एकवचन 'मैं' नहीं था, उस पूरे वर्ग का प्रतिनिधि था, जिसकी शिक्षा-दीक्षा को मैकाले ने चौपट कर दिया था. बाबा का कहना था कि सैकड़ों अंग्रेज शासक हिंदुस्तान को उतना नुकसान नहीं पहुंचा पाये थे, जितना अकेले मैकाले पहुंचा गया.

बहरहाल, गांव पहुंचकर तीन दिन तक जिस सावधानी से मैं बाबा के प्रिय आध्यात्मिक विषयों से कतराता रहा, वे दमआलू के रूप में भी प्रकट हो सकते हैं, इसकी मैंने कभी कल्पना न की थी.

मैंने देखा कि मेरी बहस की सब से बड़ी कमजोरी यह होती थी कि वह लामहाला बहुआयामी हो जाती थी, जबकि बाबा अपनी बहस को एक-आयामी रखने के मामले में एक आर्यसमाजी की तरह कट्टर थे. यही उनकी तथा उनके बहस की वह ताकत थी, जिसके सामने मैं हमेशा किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर रह जाता.

उस दिन बात 'दमालू' से शुरू हुई. बाबा ने छूटते ही मुझे सही किया, "दम-आलू." साधारण उच्चारण भेद से ही कैसे आलू और दम का लोप तथा 'दमा' और 'लू' का प्रकोप संभव है, इस पर बाबा ने एक छोटा-सा लेक्चर दे डाला. मेरे मनोबल को जबरदस्त धक्का लगा, पर सम्हलते हुए मैंने अपनी आदत के मुताबिक बहस को दूसरे आयामों की ओर ले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

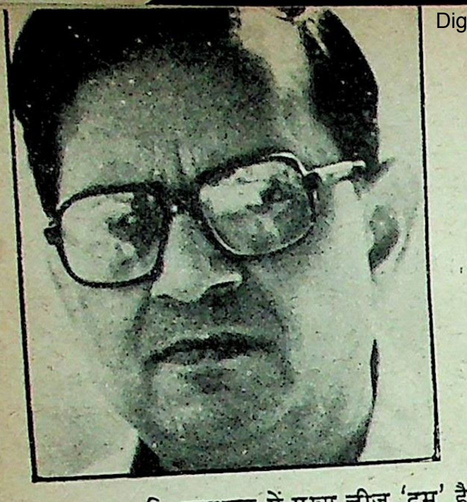

▣ कुंवर नारायण

जाना चाहा कि दमआलू में मुख्य चीज 'दम' है कि 'आलू'.

'आलू' कहने में बाबा को एक सेकेंड भी नहीं लगा होगा. उन्होंने दम-आलू के ठोस आधार को चुन लिया था. दर्जनों मसालों वाला 'दम' मेरे जिम्मे रहा. मैं समझ गया, एक बार फिर एकआयामी आलू बाबा की तरफ और बहुआयामी मसाले मेरी तरफ थे. द्वंद्व शुरू हुआ. बाबा बोले, "आलू के बिना दमआलू कहां से आयेगा?"

मैंने कहा, "दम आलू को दम आलू तो तभी कहा जायेगा, जब उसमें मसाला का दम हो, वरना तो वह ठेठ आलू."

"तो जाइए आप बिना आलू के अपने मसाले भून लाइए, मैं बिना मसालों के अपने आलू भूने लाता हूं. देखें, दोनों में कौन चीज खाने लायक ठहरती है." 'कैसी-रही बेटा' वाले विनोदी भाव से बाबा मुस्कराये जा रहे थे.

"आप तो एकदम दमआलू खाने पर पहुंच गये. यह तो बहस करना नहीं, बहस को खा जाना हुआ. बहस तो यह है कि दरअसल दम-आलू कहेंगे किसे?"

"गलत! बहस यह है कि दम और आलू में खास चीज कौन-सी है—आलू या दम! मैं समझता हूं, मसालों के बिना भी आलू में खासा दम है—मसाले इसी दम को और ज्यादा दमदार बनाते हैं. आलू में यह कुदरती दम न होती तो मसाले किसी भी सब्जी का दमआलू बना देते."

"मगर मसाले किसी भी सब्जी के दम को और ज्यादा दमदार बनाने की कुव्वत तो रखते ही हैं. यह कुव्वत आलू में कहां?"

"है क्यों नहीं, किसी भी सब्जी में आलू डाल दीजिए और फर्क देखिए. . ."

बाबा की बहस में दम था. फिर भी, बहस के एक और आयाम को खोलते हुए मैंने कहा, "आलू भून-भूनकर खाने से दमआलू पकाने तक आदमी ने जो लंबी सभ्यता-यात्रा की है, क्या वह महत्त्वहीन है?"

"हरगिज नहीं, मगर इस यात्रा में तवज्जोह अगर आलू से हटकर मसालों पर टिक जाये—यानी असल से हटकर उसकी बनावट-सजावट में उलझती चली जाये तो यह जरूर एक खतरनाक बात होगी."

"और अगर आलू पर ही टिकी रह जाये तो?"

"दमआलू नहीं मिलेगा, मगर ऐसा नहीं होगा कि आलू की जगह सिर्फ मसाले हाथ लगें."

"यह तो आप बड़ी जबरदस्ती की बात कर रहे हैं बाबा. आखिर जब आदमी दमआलू की दिशा में आगे बढ़ेगा तो आलू के बिना कैसे आगे बढ़ेगा. वह तो रहेगा ही."

"रहेगा, पर यह तो हो ही सकता है कि मसालों की लज्जत से आदमी इतना चौंधिया जाये कि आलू से ज्यादा मसाले पैदा करने लगे, यहां तक कि आलू जैसी असल चीज कम पड़ जाये और मसालों जैसी सजावटी चीजें जरूरत से ज्यादा पैदा की जाने लगें. इसीलिए मैं आलू जैसी मुख्य चीज का पक्ष ले रहा हूं.

"और मसालों की खिलाफत." मैंने बहस को थोड़ी और गहराई में ले जाने की कोशिश की, "आप दमआलू में दम और आलू की स्थितियों को परस्पर सहयोगी न मानकर परस्पर विरोधी क्यों मानते हैं. यह क्यों मानते हैं कि दोनों में से एक न एक दूसरे को खा ही जायेगा? आदमी दमआलू खायेगा, यह मानकर चलिए तो आदमी के पास सिर्फ आलू या सिर्फ दम नहीं, दोनों चीजें रह सकती हैं. यह भी मुमकिन है कि जो आदमी मसालों की दिशा में इतनी दूर तक पहुंचा है, ज्यादा आलू पैदा करने की दिशा में और भी दूर तक पहुंचे."

बाबा इस तर्क के खतरनाक पहलू को भांप रहे थे, जो उन्हें सिर्फ मसालों की ओर से ही नहीं, अब आलुओं की तरफ से भी घेर रही थी—जरा चूके कि दोनों हाथ से गये. यह बहुआयामी बहस का चक्रव्यूह बन रहा था, जिसे एकतरफा दबाव से ही बेधा जा सकता था.

"मैं हवा में बहस नहीं करता. आदमी क्या करेगा, क्या नहीं, इसे खुद नहीं जानता, शायद भगवान भी नहीं जानता. मैं तो भइया, प्रत्यक्षवादी हूं. गांव का आदमी, धरती से जुड़ा हुआ आदमी, मिट्टी की गंध से जुड़ा हुआ आदमी. . ." मैंने देखा, बाबा एकदम भावुक हो गये थे—उनकी आंखें छलछला आयी थीं. आलू को लेकर नहीं, मिट्टी की गंध की कल्पना को लेकर. कल्पना इसलिए क्योंकि बरसों से बाबा की सूंघने की ताकत बुढ़ापे के कारण जाती रही थी. उन्हें खुशबू और बदबू में फर्क नहीं पता चलता था. मुझे यह भी पता था कि बाबा को भुने आलू और उबले सिंघाड़े बेहद पसंद थे, लहसुन-प्याज से परहेज था. मसालेदार सब्जियां हजम नहीं कर पाते थे तो वैसे भी दमआलू का पक्ष लेना उनके लिए नामुमकिन था. मगर बहस को उनके चरित्र या बुढ़ापे से जोड़ना बेईमानी होगी, क्योंकि तब उतनी ही बेईमानी से सारी बहस को मेरे चरित्र, मेरी पृष्ठभूमि, मेरी शिक्षादीक्षा, रहन-सहन वगैरह से जोड़कर अंततः दमआलू जैसी चीज को शहराती वर्ग में रखकर लताड़ा जा सकता था. . . और तब सारी बहस मुख्य विषय व्यंजन से हटकर हमारे चरित्रों पर उतर आती और कोई भी बहस जब चरित्रों पर उतर आती है तो उसमें केवल चरित्रों का हनन होता, विषय पर मनन नहीं.

बाबा जब स्वस्थ हुए, उस समय तक वह सारी मिट्टी उनके आंसुओं से भीग चुकी थी, जिसे हम अपने देश की, बल्कि अपने प्रदेश की, बल्कि अपने घर की, बल्कि अपने पांवों तले की मिट्टी कहते हैं.

"आलू इसी मिट्टी की उपज है. आलू में इस मिट्टी की सहज सीधी गंध है."

"मसाले भी तो इसी मिट्टी से. . ." मैंने बहुत संभलकर कहा.

"मसालों में इस मिट्टी की सीधी गंध नहीं, जरा टेढ़ी गंध है. . ."

"एक बात कहूं बाबा, आलू भी इस देश की चीज नहीं. सैकड़ों साल पहले कहीं बाहर से लाकर इस देश की मिट्टी में बैठाये गये थे, तब से यहीं के होकर रह गये."

बाबा मुझे अविश्वास से देख रहे थे, "बिल्कुल गलत, सरासर झूठ. मैं जानता हूं, अब तुम यही कहोगे कि आलू अमरीका से यहां लाये गये थे."

"और अमरीका वे योरोप से गये थे. . ."

बहस का इस तरह इतिहास में चले जाना बाबा के लिए असह्य था. बमककर बोले, "किस स्साले ने यह सब झूठ लिखा है."

"मगर बाबा, यह तो ऐतिहासिक सत्य है. . ."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Coll

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"चुप रहो, बड़े कहीं के ऐतिहासिक सत्य के नाती बने हो. यह सब अंग्रेजों का फरेब है. यहां राज किया तो किया, साले हमारे इतिहास को भी भ्रष्ट कर गये. सब अंट-शंट लिख मारा. खुद तो हमारे वेद-पुराण उठा ले गये. उन्हें पढ़-पढ़कर हवाई जहाज बना डाला—और अब हमीं उनके आलू चुराने गये. . . खूब! टिकिया चोर साले! इतिहास बहुत बड़ा है, सिर्फ उतना ही नहीं है, जितना अंग्रेज लिख गये. सच पूछो तो उन्हें आलू भी कहीं हमारे वेद-पुराणों में ही मिला होगा. और अब तो बेईमान हवाई जहाज की तरह आलू को भी अपनी चीज बताते हैं."

"तो फिर दम और आलू भी कहीं न कहीं जरूर हमारे वेद-पुराणों में रहा होगा, जैसे हवाई और जहाज. फिर इन्हें आप अलग-अलग और एक दूसरे का विरोधी क्यों मानते हैं बाबा? हवा पुरानी चीज और जहाज नयी चीज मिलकर अगर एक बहुत नयी चीज बन सकते हैं तो इससे तो यही सिद्ध होता है कि हवाई जहाज में हवा और जहाज की स्थितियां परस्पर विरोधी नहीं, सहयोगी हैं."

"अगर तुम बहस को दमआलू से हवाई-जहाज पर ले जाना चाहते हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं, पर इतना याद रखो कि अगर दम और आलू के बीच संतुलन बिगड़ा तो दमआलू खाने लायक नहीं बचेगा, मगर हवा और जहाज के बीच संतुलन बिगड़ा तो समझ लो सीधे 'क्रैश,' जान पर बन आयेगी. तुम्हारी यह सभ्यता-यात्रा सीधे रसातल पहुंचेगी. मैं तो फिर भी अपने आलुओं पर जिंदा रह लूंगा, पर तुम न हवा के रहोगे, न जमीन के."

"अगर संतुलन बिगड़ा! अगर संतुलन बिगड़े तो बहुत-सी चीजें कहीं की न रहेंगी. यह शरीर, यह जिंदगी भी जो एक बहुत नाजुक तनाव में कायम हैं, नहीं रहेंगे. पदार्थ का एक अणु, सोचिए बाबा, कितने नाजुक तनाव पर टिका, ऊर्जा से झनझनाता रहता है. एलेक्ट्रान, प्रोटान, न्यूट्रान लगातार गतिशील—एक पटरी से कूदकर दूसरी पर दौड़ते रहते हैं, ठीक उसी तरह, जैसे इतने बड़े ब्रह्मांड में पृथ्वी, सूर्य, चंद्र, ग्रहों, नक्षत्रों का यह विराट मेला! एक अदृश्य लय, एक नाजुक संतुलन. कभी-कभी ये टकरा जाते हैं तो अनेक सृष्टियां नष्ट हो जाती हैं—भयानक! पर ये सब अगर रुक जायें बाबा, तब? न चलें, न टकरायें, तब? आप उसे सावधानी कहेंगे शायद, पर मैं उसे मृत्यु कहूंगा. जीवन है तो तनाव भी होगा, गति भी होगी, संघर्ष और अंतर्विरोध भी होगा, तभी शक्ति और ऊर्जा होगी. तनाव और अंतर्विरोध केवल नष्ट करते होते तो मनुष्य-जाति अब तक नष्ट हो गयी होती, लेकिन हम अभी हैं और आगे भी रहेंगे—आलू भी उगायेंगे और मसाले भी, क्योंकि अभी हमें बेहतर दमआलू बनाना है—बेहतर हवाई जहाज बनाना है, जिसकी उड़ानें सिर्फ अंतर्राष्ट्रीय नहीं, अंतरसौरमंडलीय हों. मेरे लिए सिर्फ आलू काफी नहीं, क्योंकि मैं जानता हूं, हमारे पास आलू है, क्योंकि कभी हमने महसूस किया था कि हमारे लिए सिर्फ अपने आप उगने वाले कंद-मूल फल काफी नहीं."

"आधी छोड़ पूरी पे धावै, आधी रहै न पूरी पावै. बहस के लिए बहस एक बात है, पर तुम्हारी बहस व्यावहारिक नहीं, निरी सैद्धांतिक है. दिमागी है, हृदय की बात नहीं. सीधा रास्ता छोड़कर भटकने-भटकानेवाला रास्ता है."

फिर वही बेहूदा तरीका बहस का—मैं सोच रहा था—दो प्रस्तावों को आमने-सामने रखकर लड़ा दो. व्यावहारिक बनाम सैद्धांतिक, दिमागी बनाम दिली, जमीनी बनाम आकाशीय, अजीब मुश्किल है. सीधा रास्ता! जिंदगी का सबसे सीधा रास्ता है मृत्यु—फिर इतना चक्कर क्यों, जब अंत में मरना ही है? मैंने कहा, "पेड़ की जड़ें जमीन में होती हैं, मगर पेड़ जमीन की ओर नहीं, आसमान की ओर बढ़ता है तो इसका यह मतलब नहीं कि पत्ते, फूल, फल जड़ों की खिलाफत कर रहे हैं. वे सब पेड़ हैं और पेड़ का पेड़ होना उन सबका उसी तरह स्थित

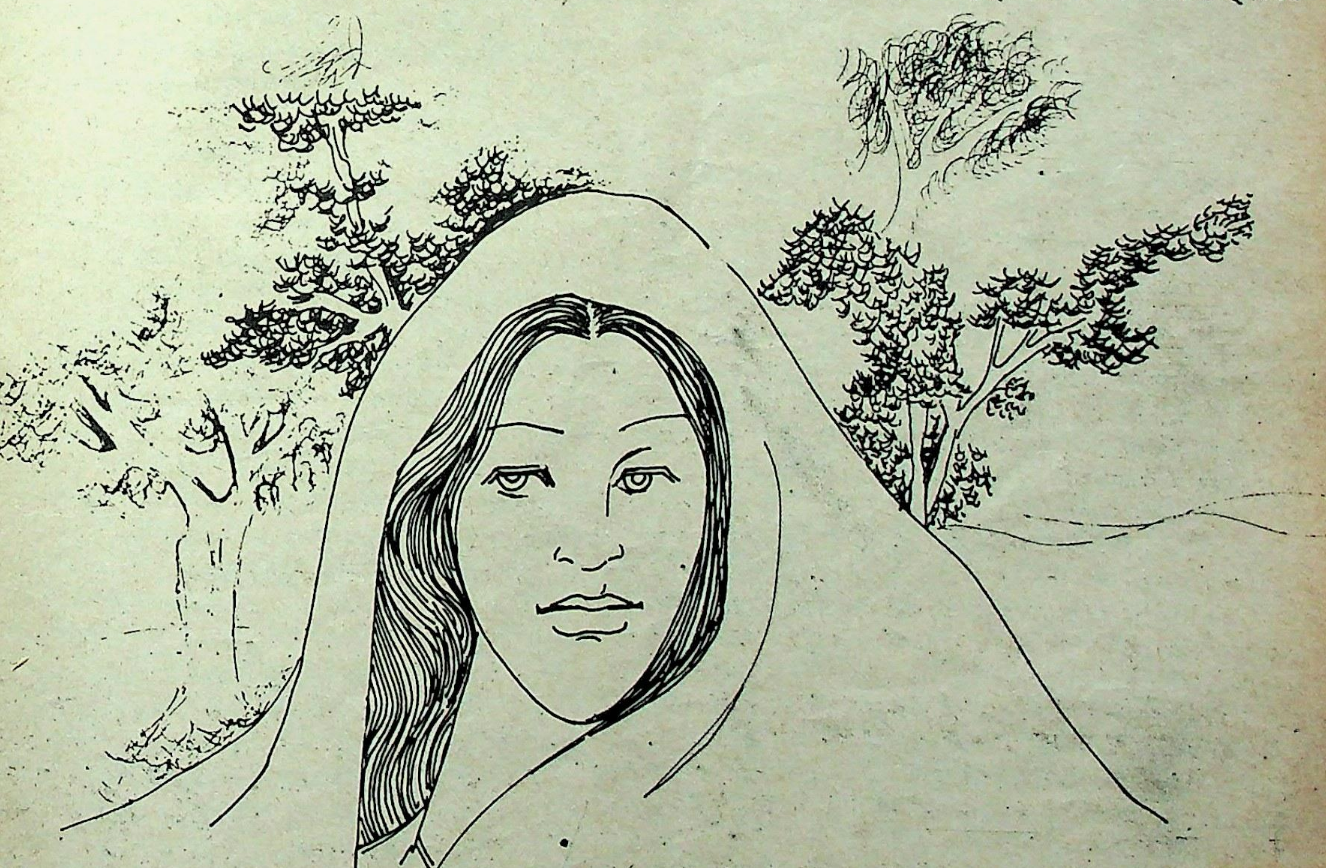

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना है अन्यथा पेड़ का अस्तित्व नहीं रहेगा."

"तुम्हारी बहस अपनी जगह सही हो सकती है, मगर जड़ भी अपनी जगह सही है."

"मैं कब कहता हूं कि वह सही नहीं है. मैं तो सिर्फ कह रहा हूं कि पेड़ का मतलब सिर्फ जड़ नहीं, और बहुत कुछ भी है."

"लेकिन जड़ सूख रही हो तो कुछ भी नहीं है. मुझे लगता है—कि कभी-कभी हमारा ध्यान पेड़ की फुनगियों पर तो है, जो सामने दिखाई देती हैं, पर उन जड़ों पर नहीं, जो छिपी हैं." मैं समझ गया—'छिपी' बात करके बाबा ने अपनी बहस को अचानक एकदम कमजोर कर लिया था!

"बाबा, पहले यह बताइए कि आप प्रत्यक्ष पर बहस कर रहे हैं या परोक्ष पर?"

"दोनों पर."

"तो इसका मतलब आप दोनों में विरोध नहीं मानते? आप दोनों तरफ हैं?"

बाबा चुप रहे. फिर थोड़ी देर बाद जरा कष्ट में बोले, "जब यह बहस शुरू हुई, तभी मुझे लगा था कि मामला सिर्फ दमआलू तक नहीं रुकेगा—वह तो सिर्फ सुई की नोंक बराबर जमीन है. इसीलिए जब तुमने ब्रह्मांड और अणु का विराट रूप दिखाया तो मैं समझ गया, यह तो पूरा महाभारत है, जिसके अंदर हमारे तर्कों का व्यूह एक लघु प्रसंग है. तमाम युद्ध, महायुद्ध, तर्क, वितर्क, कुतर्क, विचार, दर्शन अपनी जगह पर, असली जड़ वही सुई की नोंक बराबर जमीन . . . बहस करो तो भी, न करो तो भी, वह कुरुक्षेत्र बनेगी."

बाबा महाभारत में चले गये थे. अपनी जमीन पर डटे हुए थे. बहुत गलत भी नहीं थे. जमीन और मिट्टी के गलत होने का सवाल भी कहां उठता है. सबकी जड़ें वहीं हैं और एक न एक दिन सबको वहीं लौटना है . . . बाबा का स्वाभाविक झुकाव मिट्टी की ओर था. बाबा की उम्र पर यही स्वाभाविक भी था.

"सस्यमिव मार्त्यः पच्यते सस्यमिव ऽ जायते पुनः"

एक अंकुर की तरह मनुष्य जन्मता है तो सारे आकाश में छा जाना चाहता है. फिर बूढ़ा होता, धरती की ओर झुकता, उसके गर्भ में पुनः समा जाना चाहता है.

मैं बाबा के झुर्रियों भरे चेहरे को देख रहा था, जैसे वह उनका चेहरा नहीं, बुढ़ापे का सनातन चेहरा हो, कटी हुई फसल के बाद एक खेत की तरह धूप में सूखता हुआ.

उनसे विदा लेते समय आंखें अचानक भर आयीं. गांव के खंडहर जैसे घर में बाबा बिल्कुल अकेले रह रहे थे. उन्हें न जाने कौन-सा मोह उस खाली घर से बांधे हुए था. कई बार कोशिश की हमारे साथ चलकर शहर में रहें. हर बार टाल जाते, "यहां रहा हूं, यहीं मरूंगा. मेरी देखभाल के लिए पूरा गांव तो है." (जिसका मतलब था, पूरा गांव उनकी देखभाल में था!) अब की फिर दबाव डाला कि बाबा मेरे साथ चलें तो बिल्कुल उदास हो गये. चुपचाप मेरी बात सुनते रहे, फिर न जाने क्या सोचकर चलने को तैयार हो गये. अन्यमनस्क-से सामान बांधते रहे. खूंटी पर टंगा कुरता उठाया तो लगा मानो खूंटी अकेली हो गयी. सहसा उनके हाथ रुक गये, जैसे किसी ने हाथ पकड़ लिया हो. आकर पास बैठ गये. फिर कुछ सोचते हुए बोले, "यहां, घर में मैं राजा हूं, वहां तुम्हारी प्रजा . . ."

"कैसी बातें कर रहे हैं बाबा? वहां भी आप ही . . ." पर बीच में ही मेरी बात काटते हुए वो बोले, "नहीं, तुम्हें पराया नहीं मानता, लेकिन एक अशक्त और बूढ़ा आदमी धीरे-धीरे खुद के लिए भी पराया होता जाता है."

"आप घर के पितामह . . ."

"तो पितामह की ही तरह मुझे बिल्कुल अकेले अपनी इसी शैया पर मरने दो. अंतिम समय ईश्वर से मैं भी अब वही मांगता हूं, जो भीष्म ने कृष्ण से मांगा था, 'अनायास मरणं, विना दैन्येन जीवनं, देहांते तव सान्निध्यं देहि मे परमेश्वर."

मैंने बाबा के पांव छुए, मानो धरती के पांव छुए. शहर लौट आया.

सुबह से बादल घिरे हुए थे. हल्की बूंदाबांदी से सड़क गीली हो गयी थी. जाड़ों की हवा में बारिश की ठिठुरन थी. शायद फिर एक झोंक वर्षा होनेवाली थी. अपने घर के ऊपर वाले कमरे से खिड़की के बाहर देख रहा था. सहसा आंखों पर विश्वास नहीं हुआ—घर के सामने बाबा रिक्शे से उतर रहे थे. जब तक मैं उन तक पहुंचता, वे ड्राइंगरूम में आ गये थे. दरवाजे के अंदर जूते उतारे, छाता दरवाजे से टिकाकर खड़ा कर दिया, टोपी और कंबल सोफे पर डालते हुए बैठ गये. बस, इतना ही सामान था उनके साथ, पर लगा जैसे मेरा ड्राइंगरूम उसे सह नहीं पा रहा था. मुझे याद आया, गांव में बाबा का छोटा-सा घर—कितने तरह के सामान थे मेरे साथ, जो उस घर की खुरदुरी सादगी का बाल भी बांका नहीं कर सके थे.

बाबा अब आ गये हैं तो मेरे ही साथ रहेंगे. उनके रहने का मुनासिब इंतजाम . . . शायद मेरे मन की बात के उत्तर में ही वे बोले, "ज्यादा दिन नहीं रहूंगा." वे मेरे या किसी के भी घर में रहने की बात नहीं कह रहे थे, "सोचा, चलकर एक बार तुम सब को देख आऊं." मैंने शर्मिंदगी-सी महसूस की. दूसरे दिन वे चले गये. उन्होंने ठीक ही कहा था, वे ज्यादा दिन नहीं रहे.

गांव गया तो देर तक डबडबाई आंखों से देखता रहा उनके उस घर को, जिसे वे खाली कर गये थे. बाबा की बहुत थोड़ी-सी चीजें मानो अब भी एक बहस थीं मेरी बहुत-सी चीजों के खिलाफ. बाहर निकला तो देखा, गांव के सारे लोग इकट्ठा थे, जिनके सुख-दुख के बीच बाबा पूरी तरह डूबकर जिये थे. □

● विष्णु कुटी, सी-4 सेक्टर बी, महानगर, लखनऊ-226006 (उ.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीढ़ियां : आमने-सामने

जहां तक जिंदगानी है, कहानी ही कहानी है . . .

प्रस्तुति : दानिश

बच्चनसिंह : दशक की भाषा में कहें तो छठवां, सातवां और आठवां इन तीन दशकों में कहानी में क्या हुआ, क्या नहीं हुआ, यह आप लोगों से ज्यादा कोई दूसरा नहीं जानता. आप लोग कहानियां लिखते रहे हैं, आंदोलनों से जूझते रहे हैं. आज जब हम कहानी पर बातचीत कर रहे हैं तो इसमें जो कहानीकार हैं आज की संपूर्ण कहानी को लेकर बात करें.

काशीनाथ सिंह : अच्छा, तो एक चीज इन सारी बातों पर विचार करने से पहले मैं डा. साहब (शि.प्र.सिंह.) से ही यह बात शुरू करता हूं कि आज कहानीकार भी बहुत ज्यादा हैं, कहानियां भी कम नहीं लिखी जा रही हैं, पत्र पत्रिकाएं भी बहुत ज्यादा हैं, लेकिन क्या वजह है कि 'नयी कहानी' का आंदोलन जिस सजधज के साथ शुरू हुआ, साठ के बाद की कहानी ने उसे जिस तरह आगे बढ़ाया, उस तरह का माहौल अब नहीं बना पा रहा है?

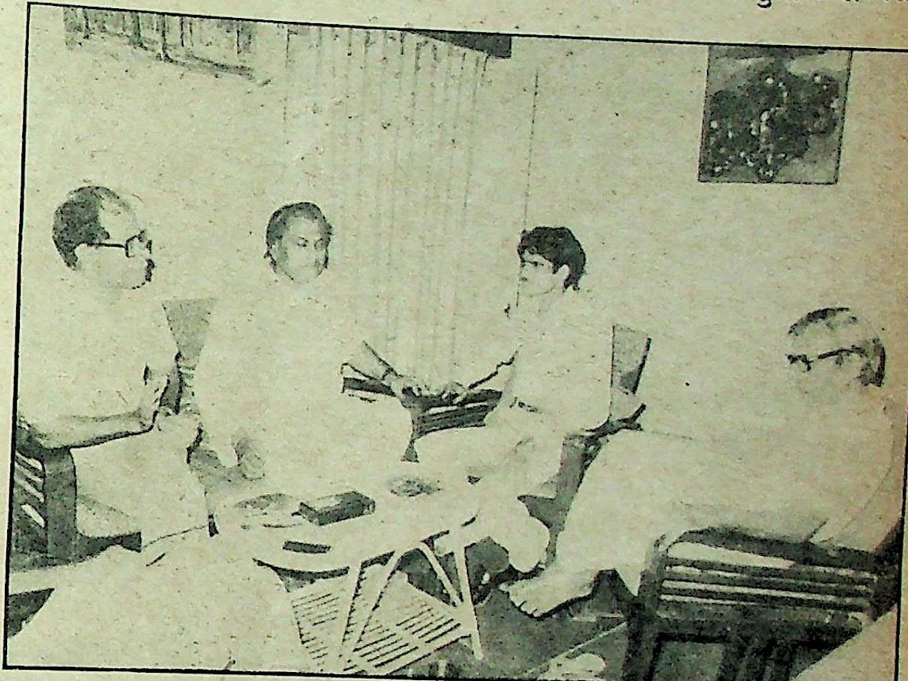

शिवप्रसाद सिंह : जहां तक माहौल का सवाल है, मैं समझता हूं कि कुछ ऐसा सामाजिक परिवर्तन हो रहा है. सन् पचास के बाद एक खास तरह का दौर आया, उसमें इतना बिखराव और विघटन नहीं था. एक निश्चित उद्देश्य था, जिसको लेकर कहानीकार लिख रहे थे. उस दौर में एक बार मैंने कहा था कि आत्मान्वेषण की प्रवृत्ति थी. स्वतंत्र होने के बाद हम यह देख रहे थे कि कौन-सा पात्र कौन-सी चीज कौन-सी जमीन हमारे लिए उपयोगी हो सकती है. तमाम लोग अपने संस्मरणों में गांवों से ऐसे पात्रों को लेकर आ रहे थे जो कि जीवंत होकर हमारे सामने चरित्रों की तरह उभर रहे थे. मैं समझता हूं कि साठ के बाद जो चुनाव हुआ, उससे जो आशा कहानीकारों को थी कि स्वतंत्र होने के बाद भारत में कुछ नया होगा वह टूट गयी. उससे जो बिखराव, जो विघटन और मोहभंग हुआ वह इतना केंद्रित हो गया कि जो कहानियां लिखी गयीं वो प्रायः नारेबाजी हो गयीं या उनमें वो चीज नहीं रह गयी. आंदोलन की प्रवृत्ति नहीं रह गयी जो कहानीकारों में सन् पचास के आसपास दिखायी देती थी.

अब्दुल बिस्मिल्लाह : डा. साहब (डा. शि.प्र.सिह) मेरी एक जिज्ञासा है 'नयी कहानी' आंदोलन बाद में चलकर दो स्पष्ट धाराओं में विभाजित हो गया, जिसमें एक ओर तो निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव और मोहन राकेश आदि कहानीकार आते हैं. . . दूसरी धारा जो प्रगतिशील धारा है, उसमें अमरकांत, भीष्म साहनी आदि आते हैं. मेरा खयाल है कि प्रगतिशील धारा तो आगे चलकर विकसित हुई लेकिन निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव और मोहन राकेश आदि की धारा क्या कारण है कि अपने ही दायरे में समाप्त हो गयी? आप इन दोनों धाराओं के बीच कहां तक सामंजस्य स्थापित कर सके और स्वयं को किस ओर जोड़ते हैं?

बच्चन सिंह : एक मिनट अब्दुलजी, आपने काशीनाथ सिंह के सवाल को साइडट्रेक कर दिया. मैं शिवप्रसादजी के कथन से सहमत नहीं हो सकता कि सढ़सठ के बाद कहानियों का माहौल कुछ ऐसा हो गया कि उसमें कोई जीवंत चीज या कोई ऐसी चीज उभरकर सामने नहीं आयी जिसमें किसी प्रकार का आत्मान्वेषण नहीं, बल्कि परान्वेषण आया. शिवप्रसादजी और बाद के कहानीकारों के जमाने में कुछ बुनियादी अंतर था. यह कि उस समय देश में सद्य स्वतंत्रता का ऐसा उल्लास था और कोशिश थी जीने, काम करने और कुछ नया खोजने की. लेकिन बाद में माहौल बदला, लोगों को लगा कि समाज में बुनियादी परिवर्तन होना चाहिए. यह समाज ऐसे चलेगा नहीं. लोगों में इस प्रकार की प्रवृत्ति आयी कि हम समाज में बुनियादी परिवर्तन के लिए क्या करें, जिसका प्रयास हम कर रहे हैं. यह बुनियादी परिवर्तन का माहौल पहले नहीं था.

काशीनाथ सिंह : मैं एक दूसरी बात कहना चाहता था. 'नयी कहानी' ने जिन चीजों को

शिवप्रसाद सिंह, बच्चन सिंह, काशीनाथ सिंह, अब्दुल बिस्मिल्लाह और दानिश की विचार-विमर्शपूर्ण बातचीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक्सप्लोर किया, वे चीजें कहीं न कहीं मूल्यों से जूझ रही थीं. साठ के बाद की कहानी ने भी अपने को मूल्यों की ओर उन्मुख किया. यानी वे टूट रहे हैं, बदल रहे हैं, नया मूल्य नहीं बन रहा है. एक तड़प, एक बेचैनी या ऐसा ही कुछ था. सन सत्तर के बाद जो कहानी आयी वह मूल्यों को छोड़कर समस्याओं को जो सामाजिक हैं, राजनैतिक हैं, एक उथल-पुथल के बीच घटनेवाली घटनाएं हैं, उन्हें लेकर लिखी गयी हैं. चाहिए यह कि पाठक या जनता जिसके लिए हम कहानी लिख रहे हैं, उससे साझेदारी हो, वह उसे उत्साह से पढ़े, उसकी समस्याओं का हिस्सा बने. लेकिन माहौल बन क्यों नहीं पा रहा है?

शिवप्रसाद सिंह : जहां तक उस माहौल का प्रश्न है, मैं सहमत हूं काशीनाथ सिंह से. अब्दुलजी ने यह सवाल किया कि क्या कारण है कि दो धाराएं हो गयीं. दो धाराएं स्पष्ट रूप से थीं. वो पहले भी थीं यानी प्रेमचंद की धारा और एक धारा अज्ञेय, जैनेंद्र आदि की. एक धारा का विकास तो हुआ पर जो एक नया परिवर्तन हुआ कि पचास के बाद एकाएक कविता या कहानी के क्षेत्र में ग्रामीण थीम का बोलबाला हो गया. केदारनाथ सिंह, धर्मवीर भारती, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि की कविताओं में भी ग्रामीण वस्तु और ग्रामीण थीम की तलाश और प्रयोग मिलते हैं. गांवों की ओर जाने का एक जबरदस्त माहौल शुरू हुआ. 'प्रतीक' के एक ही अंक में 'खेल-खिलौने' और 'दादी मां' दोनों कहानियां प्रकाशित हुईं, लेकिन 'खेल-खिलौने' को वह दाद नहीं मिली जो 'दादी मां' कहानी को मिली यह बात कुछ उस माहौल को साफ कर सकती है. मैंने 'दादी मां' कहानी लिखी तो मेरे मन में ऐसी कोई बात नहीं थी कि यह कोई नयी शुरूआत मानी जायेगी. लेकिन मेरे मन में यह जरूर था कि कहानी में मेरी सच्ची और जानी हुई अनुभूति आये और वह अनुभूति कोई जरूरी नहीं कि सबकी साझेदारी की हो. कमलेश्वर, राजेंद्र यादव और निर्मल वर्मा शुरू से ही रूपवादी लेखक रहे और इनके भीतर शहरी जीवन का रूप जो उस जमाने में पाश्चात्य कहानियों के माध्यम से हमारे देश में आ रहा था, उस तरह का माहौल चल रहा था. तो इन लोगों की कहानियों में जहां 'लक्ष्मी कैद है' जैसे संग्रह हैं, उसमें यह दिखायी पड़ता है कि जो ताजगी ग्रामीण कहानियों में है, शहरी कथा में नहीं दिखायी पड़ती. सोचना यह है कि क्यों शहरी और ग्रामीण कथा में अंतर आया.

अब्दुल बिस्मिल्लाह : लेकिन डा. साहब आप लोग जो ग्रामीण कथा लिख रहे थे या आपके बाद साठोत्तरी पीढ़ी में जिन लोगों ने ग्रामीण संदर्भों की कहानियां लिखीं, क्या कारण है कि उनमें वो जीवंतता और

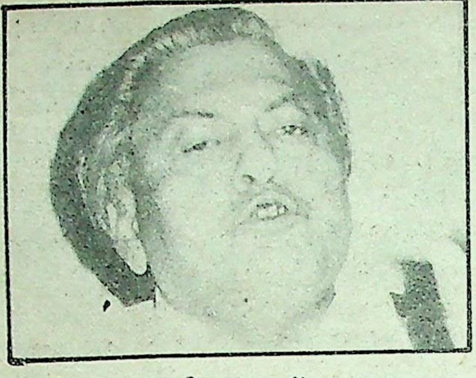

● शिवप्रसाद सिंह

ताजगी नहीं आ सकी.

काशीनाथ सिंह : इसके बारे में मैं दो-एक बातें कहना चाहूंगा कि साठ के बाद के लोगों की पीढ़ी ने मेरी समझ से एक खास काम किया. 'नयी कहानी' के दो स्पष्ट रूप दिखायी पड़ते हैं. अगर उसका कंट्रीब्यूशन कुछ हो सकता है तो मेरी समझ के अंतर्गत एक तरफ जहां 'नयी कहानी' ने बाजूबंद, लहठी, चूड़ी, करधनी, पायल इस तरह का पहन रखा था और दूसरी तरफ शहर के कथाकार थे जहां 'नयी कहानी' आधुनिका के रूप में आ रही थी. इस साज-संवार से कहानी को साठ के बाद के कहानीकारों ने अलग किया. एक तरह से उससे कहानी को 'नंगा' किया. लेकिन उसकी सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि जिस मध्यम वर्ग को उसने चुना उसके प्रति उसे क्रिटिकल होना चाहिए था. लोग लिख भी रहे थे, आत्मालोचना का रुख भी था मध्य वर्ग के प्रति. गांव छूटा तो शहर का मध्य वर्ग आया. उनकी कहानियों में वह चाहे रवींद्र कालिया की कहानी हो, दूधनाथ की हो लेकिन वह मध्य वर्ग जिसके प्रति उसको क्रिटिकल होना चाहिए था मध्य वर्ग की गुण-गाथा या आख्यान जैसा दिखायी देता है उनके यहां. रहा मैं? मेरा खयाल है, शहर को तो मैंने लिया नहीं लेकिन वह गांव भी नहीं था. सड़क के लोग थे या यूं कहना चाहिए कि वे शहर की ओर निकले हुए लोग थे जो शहर तक नहीं पहुंचे थे.

बच्चन सिंह : साठ के बाद की कहानियों के बारे में एक महत्वपूर्ण बिंदु छूट गया. इन कहानियों में दो प्रकार की प्रवृत्ति दिखायी देती है. एक तो वह जिसे हम अस्तित्ववादी प्रवृत्ति कह सकते हैं और दूसरी रूपवादी जिसका उल्लेख शिवप्रसादजी ने किया, जिसमें निर्मल वर्मा या राजेंद्र यादव या राकेश हैं. इन लोगों में रूप के प्रति एक विशेष प्रकार का मोह था और दूधनाथ सिंह आदि मूल्यों का स्वयं हनन कर रहे थे, क्योंकि मूल्य चेतना वहां पर थी ही नहीं. ऐसा मालूम पड़ता था कि सारे के सारे मूल्य समाप्त हो गये हैं. और जो अवमूल्यन है वही मूल्य बन गया है. कुछ दिनों तक तो इस तरह की कहानियां काफी दिलचस्पी के साथ पढ़ी गयीं. दूधनाथ सिंह की कहानियों की प्रशंसा मैं स्वयं करता रहा हूं. लेकिन अब एक बिंदु पर आकर लगता है कि सारी कहानियां दिशाहीनता की ओर चली जा रही हैं. उनके पास न तो कोई नजरिया है और न ही कोई विश्व दृष्टि. साठ के बाद की एक और भी प्रवृत्ति थी जिसमें इन मूल्यों को हटाकर नये मूल्यों को खोजने की तलाश थी. जिनमें काशीनाथ सिंह और ज्ञानरंजन की कहानियां थीं. मूल्यों की तलाश में ये लोग सामने आये तो वे लोग अपने-आप कट गये. शिवप्रसाद सिंह की पीढ़ी के साथ जो मूल्य था वह मूल्य साठ के बाद की पीढ़ी से कुछ अलग था. बाद की पीढ़ी मूल्यान्वेषण की पीढ़ी थी.'. . और इनके (शि.प्र. सिंह) के समय में जो मूल्य था वह हर्षोल्लास का देशी मूल्य था. . .स्वराज का मूल्य था.

अब्दुल बिस्मिल्लाह : डा. साहब, आपने भी कहानियां लिखीं. एक संग्रह भी प्रकाशित हुआ था. आपकी कहानियां किन जीवन मूल्यों से जुड़ी हुई थीं?

बच्चन सिंह : मेरी कहानियां नितांत वैयक्तिक थीं. लेकिन इन कहानियों में कुछ मूल्य तो मिलेगा ही. भोगा हुआ यथार्थ है उनमें. मुझे याद है, एक बार मैं बीमार था. शिवप्रसादजी मुझे देखने आये. इन्होंने मुझसे कहा—'अस्तित्ववाद छोड़ दीजिए, मार्क्सवाद पढ़िए आप अच्छे हो जायेंगे.'

अब्दुल बिस्मिल्लाह : उसके बाद आपने कहानियां क्यों नहीं लिखीं?

बच्चन सिंह : जब मुझे लगा, मैं कहानी नहीं लिख सकता तो कहानी लिखना छोड़ दिया.

शिवप्रसाद सिंह : काशीनाथ सिंह ने अभी जो प्रश्न उठाया था, साठ के बाद की कहानी का जो आधुनिक स्वरूप था, साज-सज्जा थी, उसको छोड़कर कहानी को उससे 'नंगा' किया तो हमें यह भी देखना है कि ज्ञानरंजन या दूधनाथ सिंह की जो 'पिता' संबंधी कहानियां हैं ये कहानियां क्या ओडीपस काम्प्लेक्स की कहानियां नहीं हैं. प्राचीन समीक्षा का शब्द उधार लें तो 'थीम' वही है. कहानियों में यही दिखायी देता है. यहीं उषा प्रियंवदा की कहानियों में भी दिखायी देता है. इसमें 'वापसी' कहानी को आप छोड़ सकते हैं. तो पुरानी पीढ़ी जो नयी पीढ़ी के लिए मार स्वरूप हो गयी है, अपने सिद्धांतों और दयानतदारी के कारण तो उसे उतार फेंकने की लालसा उस दौर में आयी. लेकिन ऐसी कोई मार्बलस कहानी या उसकी कोई शुरुआत या आंदोलन जैसा चला हो जो किसी मूल्य की तलाश की भूमिका, जैसा आपने कहा था, नहीं बनी. आप इसे छटपटाहट कह सकते हैं लेकिन इस तलाश में कुछ मिला नहीं. कहानियां मूल्य विमूढ़ता की ओर ही बढ़ती चली गयीं. इस कारण पाठकों की साझेदारी खत्म होती गयी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चन सिंह : एक खास समय तक आप जिसे मूल्य विमूढ़ता की कहानी कह रहे हैं उसने या अस्तित्ववाद या प्रयोगवादी कहानी ने अजीब ढंग से चमत्कृत किया. इसका प्रभाव कुछ दिनों तक बना रहा. . .लेकिन इसका प्रभाव क्यों दूर हुआ?

शिवप्रसाद सिंह : निर्मल वर्मा की कहानियों को ले लीजिए. 'परिंदे' कहानी या चेकोस्लोवाकिया की कहानियों का एक खास विदेशी रब्त रहा. अस्तित्ववाद जिसे आप कह लें उन्हीं के काल के लेखकों ने इस सीमा को पहचान लिया था. इस सीमा को तोड़ने की कोशिश वो लोग कर रहे थे. जैसा काशीनाथ सिंह आदि की कहानियों में दिखायी पड़ता है. राजनीतिक चेतना का कोई खास प्रभाव इस पूरी जेनरेशन पर आप बांटकर देखें तो सभी लोगों के भीतर रूपवाद या इस तरह का असर था और कोई स्पष्ट राजनीतिक चेतना प्रकट रूप से न तो दूधनाथ सिंह में थी न ज्ञानरंजन में.

बच्चन सिंह : रूपवाद शब्द का प्रयोग अभी आपने भी किया. लेकिन आपने और काशीनाथ सिंह ने भी रूपवाद का प्रयोग किया. और कोई भी कहानीकार जो किसी रचना में रूपान्वेषण करता है वह रूपवादी नहीं होता जैसे आप की कहानी 'बरगद का पेड़' है. उसी प्रकार काशीनाथ सिंह की कहानी में रूपान्वेषण शुरू से था वह 'चाय घर में मृत्यु' हो या 'सुधीर घोषाल'.

काशीनाथ सिंह : डा. साहब (डा. शि.प्र. सिंह) मैं दूसरी तरफ देखने की कोशिश करना चाहता हूं. नयी कहानी के बाद माहौल लगातार बिगड़ता गया. पाठकों की दिलचस्पी लगातार कम होती गयी.

बच्चन सिंह : माहौल की बात जो कहते हो, अब तो जो लोग माहौल क्रिएट करने की कोशिश करते हैं उसके पीछे भी एक साजिश मालूम पड़ती है.

काशीनाथ सिंह : लेकिन मैं चीजों को दूसरे 'पर्सपेक्टिव' में देखना चाहता हूं. अगर राजनीतिक दृष्टि के अभाव के कारण साठ के बाद के पाठकों में कमी आयी तो सत्तर के बाद पाठकों को विस्तार होना चाहिए. लेखक प्रायः राजनीतिक दृष्टि से संपन्न हैं. लेखन कहीं न कहीं टेंडेंशस है. फिर भी उस हद तक जहां तक मैं समझता हूं लेखकों की ही दिलचस्पी एक-दूसरे को पढ़ने में नहीं है. सोचने की बात है कि जैसे-जैसे पूंजीवाद का विकास होता गया है वैसे-वैसे वह मनुष्य की कोमल भावनाओं पर आक्रमण करता चला गया है.

शिवप्रसाद सिंह : मैंने भी यही कहा था कि समाज में जो परिवर्तन हो रहे हैं चाहे वे वैयक्तिक स्तर पर हों या राजनीतिक स्तर पर उन चीजों से कथाकार अपने को अलग-थलग पाता है. वह महसूस करने लगा कि हमारा जो

● बच्चन सिंह

लिखना-पढ़ना है वह पाठकों की साझेदारी के अभाव के कारण निरर्थक बोझ-सा होता जा रहा है. ऐसा हो रहा है कि कहानी में पाठकों की दिलचस्पी कम हो रही है. पाठकों में राजनैतिक संचेतना बढ़ी है. उसके बावजूद पाठकों का एक ऐसा समूह नहीं पैदा हो रहा है जो कहानी को वह दाद दे जो पचास के आस-पास की कहानी को मिली.

अब्दुल बिस्मिल्लाह : इसका एक कारण और समझ में आता है कि सत्तर के बाद परिस्थितियां बदली हैं. एक तो पहले कहानी का अपना एक मंच था. 'कहानी' जैसी पत्रिका थी. 'नयी कहानी' जैसी पत्रिकाएं थीं. . . .और अच्छी कहानियां लिखी जा रही थीं. आज कहानी का छपना बहुत आसान हो गया है. इसलिए लेखकों की एक भीड़ तैयार हो गयी है. उस जमाने में ऐसा नहीं था. कहनियां बहुत मेहनत से लिखी जाती थीं तब कहीं जाकर किसी कहानीकार की कहानी किसी अच्छी पत्रिका में छपती थी. लोग उन्हें पढ़ते थे, उनका एक पाठक वर्ग था लेकिन धीरे-धीरे सत्तर के बाद आप देखते हैं कि व्यावसायिक पत्रिकाओं का चरित्र बदलता है. पहले व्यावसायिक पत्रिकाओं में भी जो श्रेष्ठतम कहानियां होती थीं उनमें वैचारिक प्रतिबद्धता भी होती थी, उनमें ऐसी कहानियां भी छपा करती थीं. यह चरित्र थोड़ा बदलता है और सत्तर के बाद लघु पत्रिकाओं की बाढ़ आ जाती है और लेखकों के भीतर यह धारणा बन जाती है कि व्यावसायिक पत्रिकाओं में छपनेवाला साहित्य स्तरहीन है और लघु पत्रिकाओं में छपनेवाला साहित्य ही स्तरीय है.

शिवप्रसाद सिंह : यह गलत है.

अब्दुल बिस्मिल्लाह : इसका कुपरिणाम यह होता है कि जो जेनुइन रचनाकार हैं वह अपनी रचनाएं लघुपत्रिकाओं में प्रकाशित कराना तो पसंद करते हैं लेकिन बड़ी पत्रिकाओं का विरोध शुरू हो जाता है. इस तरह धीरे-धीरे हमने अपने-आपको पाठकों से काटा. दूसरी ओर हमारे समानांतर ऐसा साहित्य भी बाजार में है जिसके असंख्य पाठक हैं और हमने अभी तक कोई ऐसी तरीका नहीं निकाला कि हम उसके छद्म को तोड़ें और पाठक हमारी ओर आये. . .जबकि प्रेमचंद के जमाने में यह परिस्थितियां भी थीं. जासूसी, अय्यारी और तिलस्मी उपन्यास लिखे जा रहे थे. लेकिन प्रेमचंद ने जब लिखना शुरू किया तो लोग उधर से भाग आये. प्रेमचंद को बहुत ज्यादा पाठक मिले मगर आज ऐसा नहीं हो पा रहा है.

बच्चन सिंह : आपका कहना थोड़ा निराशावादी मालूम पड़ रहा है. कुछ नास्टेलिजक हैं. बहुत सारे लोग छपने लगे हैं. वैज्ञानिक दृष्टि से सोचें कि आज की कहानियां लोग उतने ही चाव से पढ़ें जितनी प्रेमचंद के जमाने में तो यह कैसे संभव है. आज टी.वी. है, रेडियो और सिनेमा मनोरंजन के तौर पर भी इतने साधन हैं. दूसरी ओर इतने ढेर सारे लेखक हैं. आप उनसे क्यों घबराते हैं. प्रेमचंद के जमाने में कम रहे हों या किसी जमाने में कितने ही लेखक थे उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में आप देखें तो पता चले लेकिन बचते कितने हैं.

अब्दुल बिस्मिल्लाह : जी नहीं, मैं यह कहना चाहता था कि वे कौन-सी समस्याएं हैं जो हमें बहुत बड़े पाठक वर्ग से काट रही हैं.

काशीनाथ सिंह : मैं एक दूसरी बात कहना चाहता था. एक तो यह पत्रिकाओं का ज्यादा निकलना तो अच्छी बात है. अधिक से अधिक लोगों का लेखक होना भी अच्छी बात है. राजनीतिक संचेतना का विकास भी एक अच्छी और महत्त्वपूर्ण बात है. . .और निश्चित रूप से इसके पीछे साहित्य की ही भूमिका रही है. यह सब ठीक है. हमें लगता है कि आज अच्छे से अच्छा लिखा जाये तो भी उसको पढ़नेवाले शायद नहीं मिलेंगे या कम मिलेंगे. और इसका कारण यह दिखायी पड़ता है कि जिस तरह विकसित देशों में साहित्य जो किसी जमाने में बहुत फैला रहा होगा धीरे-धीरे सिमटता चला जा रहा है. लेखक-पत्रकार और उनका दायरा अक्सर सीमित होता जा रहा है. और डा. साहब, फिर भी मैं यह नहीं मानता कि जो लिखा जा रहा है अच्छा नहीं लिखा जा रहा या जो लोग लिख रहे हैं वो अच्छा नहीं लिख रहे हैं लेकिन वह उत्साह या माहौल नहीं बन पा रहा है. इसके पीछे पूंजीवादी विकास की भूमिका है—पूंजीवादी समाज की पृष्ठभूमि. जहां-जहां पूंजीवाद ने विकास किया, साहित्य लगभग हाशिये पर खिसकता चला गया. छोटी-बड़ी पत्रिकाओं का झगड़ा बहुत पहले खत्म हो चुका है, इसलिए उसे महत्त्व देना बेमानी है.

बच्चन सिंह : मैं वाक्य दुरुस्त करना चाहूंगा कि जो लिखा जा रहा है वह अच्छा लिखा जा रहा है. . .

काशीनाथ सिंह: कम अच्छा लिखा जा रहा है.

अब्दुल बिस्मिल्लाह: लेकिन यह भी देखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाये जैसा कि अभी काशी भाई ने कहा कि यदि बहुत अच्छा भी लिखा जाये तो भी उसके पाठक नहीं मिलेंगे. यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है.

बच्चन सिंह : मैं इसे क्लोजर करूंगा कि जार्ज स्टीनर ने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है—'लैंगवेज एंड सायलेंस.' लैंगवेज की जगह अब सायलेंस लिखा जा रहा है इसलिए इस प्रकार की चीजें हैं. हम लोग सायलेंस की ओर बढ़ रहे हैं. हम लोगों को लिखना चाहिए.

अब्दुल बिस्मिल्लाह : काशी भाई, पाठक नहीं पढ़ रहा लेकिन क्या कारण है कि लेखक भी नहीं पढ़ रहा है. . . और जो आलोचक वर्ग है वह भी नहीं. पिछले दस वर्षों में जितनी कहानियां हिंदी में लिखी गयीं, जितने लेखक आये उनमें से दो-चार लेखकों के अलावा कहानीकारों के बारे में आलोचकों को पता नहीं है. पाठक कटते हैं तो इसके पीछे पूंजीवाद का विकास है, लेकिन लेखक कटे हैं, आलोचक कटे हैं. . .इसका क्या कारण है?

काशीनाथ सिंह : इस सिलसिले में शायद मैंने गलत कहा. ऐसा नहीं कि पाठक कटे हैं या लेखक कटे हैं. पाठकों की तादाद बढ़ी है. निश्चित रूप से ऐसे आलोचक हो सकते हैं जिन्होंने न पढ़ा हो लेकिन पढ़ते भी हैं लोग. सोचना यह है कि पढ़ने के बाद वे रिस्पांस क्यों नहीं दे रहे हैं? कहीं ऐसा तो नहीं कि साहित्य से जिस प्रकार की आत्मीयता या लगाव यानी मैं कहानी की बात कर रहा हूं, नाटक या उपन्यास या कोई भी रचनात्मक साहित्य जिसके प्रति वे आत्मीयता या लगाव महसूस करते थे, कम हो रहा है. सोचना यह है कि ऐसा तो नहीं कि हमारा लिखना इस बात को मिस कर रहा है, इसलिए लोग पढ़ने के बाद भी रिएक्ट नहीं कर रहे हैं.

अब्दुल बिस्मिल्लाह : लेकिन इस दशक में जो कहानियां लिखी जा रही हैं उनमें हम देखते हैं कि पिछले दशक की अपेक्षा या पैंसठ और सत्तर या पचहत्तर के बाद जो कहानियां और कहानीकार आये हैं उनकी कहानी ने वो आत्मीयता पैदा की है जिसकी जरूरत है.

काशीनाथ सिंह : हां, इस तरह के तमाम लेखक आये हैं और लेखकों ने आत्मीयता पैदा की हैं और मैं समझता हूं कि पाठक उनकी ओर आकर्षित भी हुआ है. यह सारी चीजें धीरे-धीरे बदल रही हैं, लेकिन कुल मिलाकर स्थिति इतनी संतोषजनक नहीं बन पा रही जितनी कि होनी चाहिए.

बच्चन सिंह : अब्दुलजी, आपने अच्छा सवाल उठाया. जहां तक पाठकों का सवाल है पाठक आपसे ज्यादा पढ़ते हैं. ज्यादा जागरूक हैं. वे मुझसे बात करते हैं कि कहानी में यह, यह हुआ. पत्र-पत्रिकाएं ले आते हैं. उनसे बातचीत होती है. रही आलोचकों की बात, कहानीकार उनसे क्या चाहते हैं कि वे कहा-

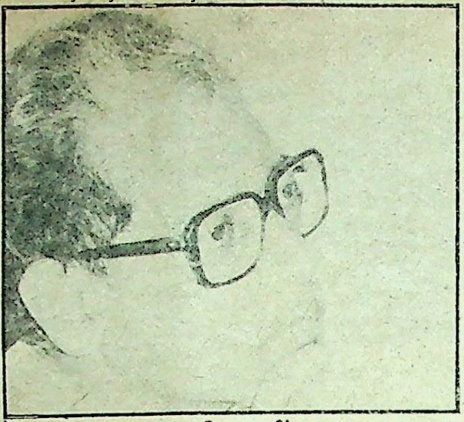

● काशीनाथ सिंह

नियां ही पढ़ें. कहानियां पढ़ी गयी हैं लेकिन उनको कविताएं पढ़नी हैं, उपन्यास पढ़ने हैं, सिद्धांत की किताबें पढ़नी हैं, पुराना काव्य पढ़ना है. वे सारा समय कहानी को कैसे दे सकते हैं?

शिवप्रसाद सिंह : एक मिनट, यहां बात उलटी है. ऐसा नहीं. आपने ठीक कहा कि पाठक कहानी पढ़ते हैं. सवाल यह है कि क्या बिस्मिल्लाहवाली पीढ़ी के लिए आलोचक तलाशे जायेंगे? पीढ़ियां अपना आलोचक लेकर आती हैं.

बच्चन सिंह : शिवप्रसादजी, एक बात यह भी कि कहानीकारों को आलोचकों की इतनी चिंता क्यों है. यह सेल्फ प्रोजेक्शन की चिंता नहीं है तो क्या है. वैसे सारी परंपरा देखें. ऐसा विकट प्रश्न दिखायी देता है कि इसमें एक भी स्टैंडिंग कहानीकार नहीं दिखायी दे रहा है.

काशीनाथ सिंह : मैं डा. साहब के प्रश्न के संदर्भ में एक बात कहना चाहता हूं. किसी भी लेखक संघ में न पड़ने के बावजूद शिवप्रसादजी प्रगतिशील हैं और इसका ठीक-ठीक मूल्यांकन नहीं हो सका है. लेकिन लोगों का रुझान इस तरफ बढ़ रहा है कि जो लोग उस जमीन पर काम कर रहे हैं ऐसे लोग अपने साथ हों. लेकिन यह हमीं पर नहीं उन पर भी निर्भर करता है.

बच्चन सिंह : शिवप्रसादजी के बारे में दिक्कत यह थी कि ये एक लोहियावादी पार्टी के साथ थे. जो व्यक्ति लोहियावादी होने के बाद जो प्रगतिशील होता है, वह और भी प्रगतिशील होता है.

काशीनाथ सिंह : प्रगतिशील कथाकार हों या जनवादी कथाकार हों, क्या लेखन के स्तर पर हम अपने को अलग पाते हैं.

बच्चन सिंह : यह सवाल ही बेकार है कि कोई लेखक जो मार्क्सवाद को समझ चुका है वह प्रगतिशील विचारधारा से अलग होकर लिखेगा. लू शुन, ब्रेख्त, पाब्लो नेरूदा इन लोगों ने भी जहां जरूरत पड़ी विचारधारा को आरोपित करने से बचकर लिखा. कोई बड़ा लेखक विचारधारा का आरोपण नहीं करता.

काशीनाथ सिंह : डा. साहब (शि.प्र.सिंह) अब एक बात बताइए कि महिला कथा लेखिकाएं आपके दौर में भी थीं. रुकिए, देखिए, मुंह मत बनाइए. मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा आदि. लेकिन आज महिला कथा-लेखन की बात लेखकों की ओर से भी उठ रही है और आलोचकों की ओर से भी. और कुछ इस तरह से जैसे पिछड़ी जातियों के लोग आरक्षण का सवाल उठाते हैं. यह ऐसा लगता है जैसे बसों में विधायकों की सीट होती है लेकिन उस पर दूसरे लोग बैठते हैं, विधायक नहीं बैठते. तो आज मृदुला गर्ग हैं, मृणाल पांडे हैं, चित्रा मुद्गल हैं, लेकिन कहीं न कहीं से ऐसे आवाज उठायी जा रही है जैसे उनके साथ बड़ी ज्यादती की जा रही हो या उपेक्षा की जा रही हो.

शिवप्रसाद सिंह : नहीं, उनके भीतर महिला होने के नाते कोई रियायत की जाये ऐसी कोई बात नहीं थी. या उनके साथ कोई अलग दृष्टिकोण अपनाया जाये कि जैसे कि शेड्यूल्ड कास्ट की हैं और आरक्षण दिया जाये. (शिवप्रसादजी कुछ इस अंदाज में कहते हैं कि कमरा ठहाकों से भर जाता है.) मुझे लगता है कि यह एक प्रकार की साजिश है. प्रचार का एक बहुत गलत रास्ता है. इसको उछालने की कोशिश की जा रही है महिलाओं के नाम पर.

काशीनाथ सिंह : नहीं वे अच्छा लिख रही हैं और उसके आधार पर यह उनकी मांग है या. . .

बच्चन सिंह : मैं यह जानना चाहता हूं किसने मांगा है इसे? यह तो देखने की बात है कि वे क्या लिख रही हैं. पुरुष क्या लिख रहे हैं इसमें भेद क्यों?

शिवप्रसाद सिंह : एक कारण हो जाता है. कृष्णा सोबती जब 'यारों का यार' लिखती हैं या मृदुला गर्ग जब 'चित्तकोबरा' लिखती हैं तो इसमें एक स्पष्ट अतिशयता दीखती है, एक लादी गयी बात साफ नजर आती है कि आरोपण किया गया है. इसको अच्छाई के नाम पर उछाला जा रहा है. यह संपादकों की नासमझी है. महिलाएं ऐसी मांग नहीं कर रही हैं.

बच्चन सिंह : अब चूंकि यहां बनारस के ही साहित्यकार हैं. बनारस के साहित्य में कुछ खास बातें होती हैं. मैं बनारस के कहानीकारों को लेकर कुछ बातें कहना चाहता हूं. बनारस का कथाकार जब कहानी लिखता है तो उसकी कहानी में बनारसीपन क्या है, इसे पहले शिवप्रसादजी बतायें.

शिवप्रसाद सिंह : मैंने बनारस पर कोई कहानी नहीं लिखी. मैंने जब कहानी लिखी तो गांवों को लेकर लिखी. उनमें फक्कड़पन और मस्तीवाला बनारसीपन दिख सकता है. लेकिन मैंने जो उपन्यास लिखा 'गली आगे मुड़ती है' उसमें बनारसीपन भरा हुआ है. इसमें आधुनिकता के वे नाज-नखरे आदि नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आये हैं. जो चीजें चल रही हैं, यहां आदमी को इत्मीनान से सोचने की मोहलत मिल जाती है. पचास से पचपन के दौर तक जो कहानियां लिखीं उनमें बनारसीपन की गंध है.

बच्चन सिंह : आपने बनारस को लेकर भी तो कहानी लिखी हैं.

शिवप्रसाद सिंह : हां 'चेन' कहानी में रिक्शे-वाला जो विजया नगर पैलेस के मोड़ से घूमकर आता है उसकी चेन उतर जाती है और वह खुद चेन बन जाता है.

बच्चन सिंह : हां ठीक बात है. 'चेन' कहानी में बनारसी मस्ती मुझे मिलती है. अच्छा तो मेरी नजर में काशीनाथ सिंह की कहानी में बनारसी फक्कड़पन बहुत है.

काशीनाथ सिंह : इस संबंध में मेरा ऐसा विश्वास है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार का पश्चिमी इलाका लोक-कथाओं के मामले में बहुत ही संपन्न है. जहां तक कहानी के फार्म का सवाल है मैंने उससे बहुत कुछ सीखा और लिया भी है. दूसरी बात यह कि अगर अपने दौर के लोगों में मैं कुछ अलग रहा हूं तो जैसा कि मेरा खयाल है कि रेणु और मार्कंडेय की कहानियों के समानांतर रखकर भी देखा जाये तो साफ मालूम पड़ेगा. लेकिन मैं अगर कुछ अलग रहा हूं तो बहुत कुछ बनारसीपन के कारण ऐसा हो सकता है.

बच्चन सिंह : अब मैं भाषा के बारे में बात-चीत करना चाहूंगा तो पुनः बनारसीपन की बात आयेगी. तो जहां तक भाषा का सवाल है, चाहे शिवप्रसाद जी इंकार करते हों दोनों ही आदमियों पर बनारसीपन का प्रभाव है.

शिवप्रसाद सिंह : नहीं, जिस प्रकार काशी नाथ सिंह ने पूर्वांचल की बात कही, मैं उसे स्वीकार करता हूं. पूरे बनारस जनपद को अगर लें तो.

काशीनाथ सिंह : महानगरों में जिस तरह आदमी का आदमी से लगाव टूटा हुआ है, बनारस में ऐसा नहीं है. यह लगाव बनारस में लिखनेवाले हर कथाकार में मिलेगा.

बच्चन सिंह : एक चीज, क्या कहानी पर कविता की भाषा का प्रभाव है आपके साथ. मैं काशीनाथ सिंह से भी यह सवाल करूंगा.

शिवप्रसाद सिंह : कुछ कहानियों में जैसे 'आरपार की माला' इस तरह उस संग्रह की कहानियों पर इस तरह का प्रभाव रहा. और यह प्रभाव एक सम्मेलन जैसा कहा जा सकता है. लेकिन वह धीरे-धीरे खत्म हो गया और भाषा अपना खांटी कलेवर बनाती गयी.

बच्चन सिंह : काशीनाथ सिंह को तो कविताओं से कोई लगाव रहा नहीं. इनकी भाषा में ठेठ बनारसीपन मुझे ज्यादा लगता है और शायद लोगों द्वारा इनको पसंद किये जाने का मूल कारण इनकी भाषा ही है.

शिवप्रसाद सिंह : काशी की भाषा जब मैं

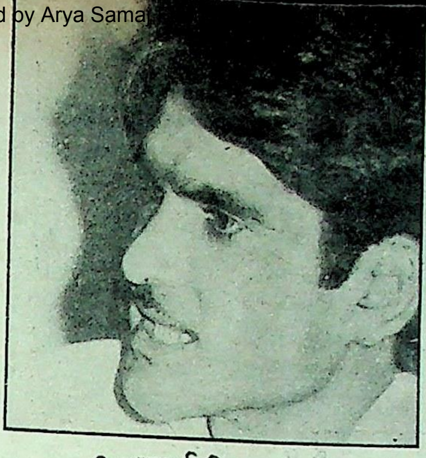

● अब्दुल बिस्मिल्लाह

पढ़ता हूं तो मेरे सामने जो शक्ल आती है वो है खैनी ठोंकता हुआ किसान (समवेत हंसी...)

बच्चन सिंह : अब मैं यह जानना चाहता हूं कि इस भाषा को तुमने कहां से सीखा? गांव से ही लेकर आये हो या और कहीं से अर्जित किया है, यानी बनारस से ही?

काशीनाथ सिंह : आपका सवाल सुनकर तो मुझे पंतजी याद आ रहे हैं—कहां कहां है बालविहंगिनी, पाया तूने यह गान... (हंसी)?

अब्दुल बिस्मिल्लाह : डा. साहब, 'नयी कहानी' के दौर में एक पूरा वर्ग था जो शिल्प पर बहुत जोर देता था. भाषा की कताई जैसे निर्मल वर्मा आदि तराश पर बहुत जोर देते थे.

काशीनाथ सिंह : और बुनाई भी.

अब्दुल बिस्मिल्लाह : हां बुनाई भी. लेकिन बाद में वो चीजें धीरे-धीरे खत्म होती हैं और फिर भाषा सहजता की ओर आती हैं. जैसे आप लोगों की कहानियां...

बच्चन सिंह : अनगढ़ भाषा...

अब्दुल बिस्मिल्लाह : अनगढ़ भाषा की आज जो कहानियां लिखी जा रही हैं, मैं अपने दौर की बात कर रहा हूं, इनके शिल्प और भाषा के संबंध में क्या अंतर लगता है आपको?

बच्चन सिंह : हमने तो पूरा पढ़ा नहीं लेकिन साठ के बाद की कहानी से अलग अस्तित्व नजर नहीं आता. भाषा के स्तर पर आप लोगों की कहानियों में पैंसठ की कहानियों जैसी भाषा है, उसका पैनापन है, अलंकृत है...

काशीनाथ सिंह : देखो मैंने बिस्मिल्लाह, असगर वजाहत, रमेश उपाध्याय और स्वयं

● दानिश

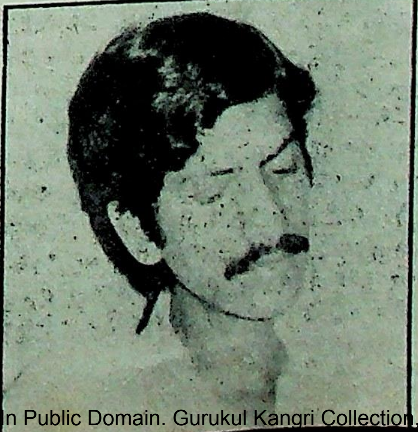

प्रकाश की कहानियां पढ़ी हैं. अभी पिछले दिनों मिथिलेश्वर की कहानी भी. जो पहली बात मेरे दिमाग में आयी वह यह कि भाषा में एक खास तरह की स्मार्टनेस या फिकरेबाजी है जो कि कहानी के लिए बिलकुल ठीक नहीं है. कहानी डिटेल्स की मांग करती है. साठ के बाद के कहानीकारों में ज्यादातर की अलग से पहचान नहीं बन सकी है. उसका एक कारण उनकी भाषा भी था. बड़ी डेड किस्म की मुर्दा-सी जिसमें कोई जान नहीं ऐसी भाषा लिखी जाती है आज.

बच्चन सिंह : इधर बहुत-सा नया शिल्प सामने आया है. जैसे मैं उस कहानी का जिक्र करूंगा जिसका जिक्र कई लोगों ने किया. दानिश ने भी किया. 'टेपचू' उदय प्रकाश की कहानी है. इस कहानी में नया फार्म है लेकिन अंत में चलकर यह स्टोरी आफ आइडिया हो जाती है. यह फार्म का अन्वेषण हो या रूप का यह ठीक नहीं.

अब्दुल बिस्मिल्लाह : हर युग में दो तरह के लेखक होते हैं. एक पूरा वर्ग ऐसे कहानीकारों का होता है जो लोगों को चमत्कृत करने के लिए या अतिरिक्त ढंग से अपने का लाइम-लाइट में लाने के लिए ऐसी भाषा का इस्तेमाल करता है, जो कहानी की भाषा तो कभी हो ही नहीं सकती, लेकिन इसके समानांतर एक ऐसा लेखक वर्ग भी है जो सीधे जनता से भाषा उठाकर कहानी लिखता है और मैं समझता हूं कि वही कहानी स्थायी महत्त्व की होती है.

बच्चन सिंह : एक चीज यह कि आप लोगों ने कविता से क्या भाषा ग्रहण नहीं की?

अब्दुल बिस्मिल्लाह : कविता से कहानी की भाषा ग्रहण की गयी है या नहीं, यह मैं नहीं जानता... लेकिन कहानी से कविता की भाषा ली गयी है, यह मैं जरूर कहूंगा.

दानिश : विनोद कुमार शुक्ल का एक उपन्यास आया है 'नौकर की कमीज' जिसकी भाषा पूरी की पूरी काव्यात्मक है. मेरे विचार से कहानी और कविता के बीच भाषा के लेन-देन का संबंध बनता रहा है.

अब्दुल बिस्मिल्लाह: डा. साहब (शि.प्र. सिंह) नयी पीढ़ी और आपकी पीढ़ी के बीच इतना गैप क्यों रहा?

शिवप्रसाद सिंह : (थोड़ा नाटकीय ढंग से) यहां... तो नहीं है, जहां है वहां है...

काशीनाथ सिंह : डा. साहब (बच्चन सिंह) आप बराबर कहते हैं कि कहानी की संभावनाएं समाप्त हो रही हैं. आपका ध्यान कहीं कविता की वापसी की ओर तो नहीं जाता. दूसरी बात हम सोचते हैं कि जब तक जिंदगी है कहानी के खत्म होने का सवाल ही नहीं उठता; क्योंकि बुनियादी तौर पर आदमी कहानी ही है. □

● छायांकन : रविशेखर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजपूत और राजपूत

ठाकुर प्रसाद सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजादी के पहिले के वर्षों में सोचने-समझने का तरीका कुछ और ही था. मैं कोशिश भी करूं तो अपनी बात पूरी तरह आपको समझा नहीं पाऊंगा. उदाहरण के लिए उस समय यदि किसी मध्यवित्त राजपूत परिवार में थोड़ा पैसा आ जाये और उसी के साथ एक लड़की भी तो वह परिवार राजघरानों, तालुकेदारों या बाबुओं के दरवाजे-दरवाजे घूमना शुरू कर देता था. उन खानदानों के लड़के बदमिजाज हों या बिगड़ी आदतों के, इसकी परवाह कम ही की जाती थी. स्वयं मेरे ही खानदान की कई लड़कियां ऐसे बाबुओं के घरों में गयी थीं. मैं छोटा था तो उनकी सुख-दुख की कहानियां रोज ही सुना करता था पर मेरी आंखों के सामने कोई लड़की ब्याही नहीं गयी, इसलिए मैं कोई बात पूरे विश्वास से कह नहीं पाऊंगा.

दूसरी बड़ी लड़ाई छिड़ने के समय हमारे घर की हैसियत कुल मिलाकर एक खाते-पीते साधारण परिवार की रह गयी थी. घर में चारों ओर पुराने सामानों का अंबार लगा हुआ था. नयी कोई चीज कहीं भी नहीं दीखती थी. कुल मिलाकर पुरानी कहानियों का माहौल और बीते दिनों की जुगाली करती बुढ़िया दादियां, परदादियां. मैं उन्हीं की बाहों में लगभग कैद-सा वह सब सुनता देखता रहता.

घर में तब हलचल मचती जब पुराने रिश्तेदारों में से कोई एक अपने लाव-लश्कर समेत आ धमकता. घर के पुराने नौकर-चाकर जो हमारे सुख के दिनों की निशानी थे और ठिकानों पर जा बैठे थे. पर पुरानी बातों का खयाल करके वे बुलाने पर आ जाते थे. ऐसे लोगों की मदद से पुराने सपने जोड़ने की कोशिश की जाती थी. पर दूसरी बात है कि ऐसी हर कोशिश परिवार की बची-खुची हैसियत का एक हिस्सा हर बार उससे ले लेती थी. कभी पुराने बर्तन बिक जाते तो कभी एकाध टुकड़े खेत या दो-चार फलदार दरख्त.

मेरे पिता का देहांत हुआ तो मैं कुल आठ महीने का था. होश संभालने पर मैंने देखा कि घर में सबसे अधिक मिहनत मेरी मां करती है पर सबसे कमजोर हैसियत उसी की है. रिश्तेदार जब भी घर आते मैं उनके सामने नमूने की तरह पेश किया जाता फिर मेरे तथा मेरे पिता के संबंध में कहानियां सुनायी जातीं. सुनने वालों की आंखें भर आतीं तो मैं उनके सामने से हटा दिया जाता. जैसे ही थन में दूध उतर जाने के बाद गायों के सामने से उनके बछड़े हटा लिये जाया करते हैं.

मुझे अपनी भूमिका बराबर निभानी पड़ती थी. फिर भी दरबार हाजिरी के पहले मैं मां के पास बैठकर देर तक झगड़ता-रोता था. मां यह सब पसंद नहीं करती थी, पर वह भी लाचार थी. आखिर उसे उसी घर में रहना था.

उस बार लेजुरी गांव के बाबू राजनारायण सिंह आये हुए थे. वे बीमार थे इसलिए उनको काफी दिन मेरे शहर में रुकना था. तय था कि उनकी खातिर में मेरे परिवार की बची-खुची जमीन का एक अच्छा टुकड़ा बिक जाता और वह बिक भी गया. पुराने नौकरों में से कई रहे नहीं; कई दूर चले गये इसलिए रईस रिश्तेदारों की खातिर में घर के लोग ही दिखायी पड़ने लगे थे. मेरा स्कूल जाना भी लगभग रुक गया था; मेरे साथ घर के और लोग तो लगे थे ही.

बाबू राजनारायण सिंह की निगाह मेरे ऊपर बराबर लगी हुई थी. वे जब भी पुकारते, मुझे ही पुकारते. शाम को जब उनकी बैठक में लोग इकट्ठा होते तो वे अक्सर मेरे दिवंगत पिता की याद करके उदास हो जाते. मेरी ओर देखते तो उनकी आंखें नम हो जातीं. मैं अपनी उम्र के हिसाब से कुछ ज्यादा लंबा हो गया था तथा प्रातःकाल थोड़ी बहुत कसरत भी किया करता था. वे मुझे मुग्ध दृष्टि से देखते तो मैं भी रोमांचित हो जाता था.

मेरी मां भी यह सब लक्ष्य कर रही थी. और खुश थी कि उसके अभागे लड़के पर कोई कृपालु तो है! मैं भी बाबू साहब की सेवा में जी जान से लुटा हुआ था. हाई स्कूल की परीक्षा मैंने उसी माहौल में दी और फुरसत पाते ही उनकी सेवा में जुट गया. मेरे साथी मेरे इस समर्पण पर हंसते थे. पर मैं था कि पागलों की तरह लगा हुआ था. कुछ तो इसलिए कि कभी किसी वृद्ध की छाया मेरे ऊपर नहीं रही और कुछ इसलिए कि बाबू साहब चाहेंगे तो मेरा भविष्य बन जायेगा, मैं लगा रहा.

जमींदारी पर लौटते समय बाबू राजनारायण सिंह ने मुझे गोद में खींच लिया और मेरे चाचा से कहा कि वे मुझे उन्हें सौंप दें. वे मुझे पढ़ायेंगे-लिखायेंगे और अच्छी जगह लगा देंगे. उनकी आवाज बुलंद थी पर वे उस समय इतनी जोर से बोल रहे थे कि उनकी बात घर के भीतर दरवाजे से सटकर खड़ी मेरी मां भी सुन ले.

इनकार करने का कोई सवाल ही नहीं था. मां भीतर-भीतर घबरायी हुई थी पर गर्मी की छुट्टी में मैं लेजुरी में रहूं इस प्रस्ताव पर वे सहमत हो गयीं. मैंने खद्दर का कुर्ता और पाजामा झोले में रखा और एक नयी जिंदगी में छलांग लगा दी.

बाबू साहब की जमींदारी के वैभव के क्या कहने? रोज घुड़सवारी और बंदूक लेकर शिकार खेलने की सख्त कवायद मुझे परीक्षा तो करनी थी पर उस जिंदगी के रोमांच में मुझे मजा भी आने लगा था. जहां जाता, लोग सहमकर खड़े हो जाते. शहर में यह सब कहां? धीरे-धीरे मेरे भीतर कुचला हुआ सामान सिर उठाने लगा. मैं कभी कभी मजूरों को डांटने भी लगा. ऐसा लगता था कि लोग मुझसे सावधान रहने लगे हैं. इससे मेरे अहं को तुष्टि मिलती. मेरे खाना खाते समय बाबू साहब स्वयं खड़े रहते. दूध इतना कम क्यों है, वे हर बार कहते. सब्जियां कितनी तरह की हैं; वे पहले ही पूछते और हर दिन अखाड़े पर जाने की ताईद करते. उनके चलते पूरा घर मेरे इर्द-गिर्द चक्कर लगाता दिखायी पड़ता.

बाबू साहब के इकलौते लड़के से मेरी बुआ की शादी हुई थी. वे मेरी मां की सहेली थीं, इस नाते मुझ पर उनका अनुराग विशेष था. पर न जाने क्यों मुझे देखकर उदास हो जाती थीं. वैसे भी वे घर में डरी सहमी-सी रहती थीं और सास के न रहते हुए भी ऐसा नहीं लगता था कि वे उस घर की मालकिन हैं. घर में निचले तबके की चुलबुली औरतों की भरमार थी और वे रोज सजधजकर सुबह से देर रात तक वहां मालिकों के आस-पास घूमती रहती थीं. उन्हीं में एक लड़की ने मेरी ओर ध्यान देना शुरू कर दिया. खाना खिलाते समय तो वह मेरे सिर पर चढ़ी ही रहती थी. वैसे भी वह मुझे तंग करने का कोई मौका छोड़ती नहीं थी.

एक दिन नदी के कछार से शिकार खेलकर लौटते समय पलाश के जंगल में वह मुझे मिल गयी. उसने मुझे आम के पेड़ तक छोड़ने का आग्रह किया जो मैंने स्वीकार कर लिया. मुझे बाद में पता लगा कि वह काफी पहले से मेरी राह देख रही थी. आम के गझिन पेड़ के नीचे उसने मुझे बाहों में बांध लिया और देखते-देखते उसकी सांसें गरम हो गयीं. मैं इतना लड़का भी नहीं था, पर इस तरह की जिंदगी मेरे लिए एकदम नयी थी. मैं पसीने-पसीने हो गया. किसी तरह शर्मिंदा होकर वहां से छूट तो निकला, पर यह नहीं कह सकता कि उस दिवाभिसारिका ने मुझे छुआ नहीं. उस दिन के बाद वह मेरे काफी निकट आ गयी और हम एकांत के साथी बन गये. इस स्वीकृति में मेरा शरीर उतना शामिल नहीं था. जितना अकेला और संगविहीन मेरा मन.

मैं उस जीवन में रमता जा रहा था. मेरे भीतर सपने के रेशे उगने लगे थे. मैं सोचने लगा था कि मुझे इस स्थिति में रहना है. इसके अनुरूप ढलना है इसीलिए मैं अपने भीतर बंद दरवाजे एक-एक करके खोलता जा रहा था. अच्छा खाने-पीने से शरीर भरने लगा था और मैं उत्साह के झूले पर झूलता सा जंगलों-कछारों में दौड़ता रहता था.

बाबुओं के कई घर उस गांव में थे. वे घरवाले कहे जाते थे. उन्हीं के आसपास छोटे घर वाले राजपूत परिवार भी, वे जिनके सदस्य बाबुओं के यहां दरबारदारी करते या दस और काम. उनकी स्त्रियां बाबुओं के यहां दिन-रात खटती रहतीं फिर भी डांट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक्यूप्रेशर सैण्डल

उनके लिये जिन्हें स्वास्थ्य समस्याओं से दूर जाना हो

Regd. Design No. 155538

दिन में दो बार सिर्फ ८ मिनट का समय लेता है

क्या आपको पता है कि मुख्य इन्द्रियों पर नियंत्रण रखनेवाली ३८ शिरें आपके पावों तले हैं जिसके दबाव से रक्तचाप, पाचनशक्ति एवं साधारण स्वास्थ्य नियंत्रित है।

एक्यूप्रेशर सेण्डलस्—३००० वर्ष पुरानी थेरेपी पर आधारित है—वस्तुत प्राणीशास्त्र से प्राप्त तथ्य है।

स्वस्थता का आसान तरीका — कितनी सुविधा!

इनको पहनकर सिर्फ ८ मिनिट के लिये रोज़ सुबह एवं शाम को भोजन से पहले की सैर। अगर सैर आपकी स्वास्थ्यप्रेरक दिनचर्या है तो एक्यूप्रेशर सेण्डलस् पहने—एक पंथ दो काज-बिना किसी अनिष्ट प्रभाव के दवाई का काम करती है। क्यों विश्वास नहीं आता?

दुनियाभर में लोकप्रिय

एक्यूप्रेशर सेण्डलस् — आरामदायक, किफ़ायती विश्वस्त।

आश्चर्य कम और सच ज्यादा है कि अब तो अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, इंग्लैण्ड, युरोप, स्केण्डीनेवियन देश एवं अब भारत भी इसकी चपेट में है।

एक जोड़ा आज ही खरीदें

यदि आप अपने स्वास्थय के प्रति सज़ग हैं, तो अपने निकट के स्थानिय विक्रेता से एक जोड़ा खरीदिये। अन्यथा अपने पैर के माप के साथ संलग्न कूपन भरकर आज ही हमारे पास भेजिये।

एक्यूप्रेशर थेरेपी हेल्थ सेंटर
७४, पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता-७०० ०१७
Telex : 021-4248 KRM IN

1. Brain
2. Mental Nerve
3. Pituitary
4. Pineal
5. Head Nerve
6. Throat
7. Neck
8. Thyroid
9. Spine
10. Piles
11. Prostate
12. Uterus
13. Penis
14. Ovaries
15. Testes
16. Lower Lumber & Lymph Glands
17. Hip
18. Bladder
19. Intestines

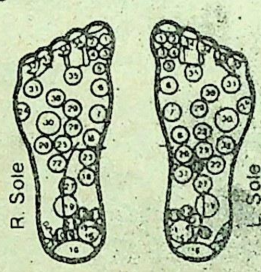

20. Colon
21. Appendix
22. Gall Bladder
23. Liver
24. Shoulder
25. Pancreas
26. Kidney
27. Stomach
28. Adrenal
29. Solar Plexus
30. Lungs
31. Ear
32. Energy
33. Nerves & Ears
34. Cold & Nerves
35. Eyes
36. Heart
37. Spleen
38. Thymus

एक्यूप्रेशर थेरेपी हेल्थ सेंटर
७४, पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता-७०००१७

कृपया उचित चोकोर पर ☑ निशान लगाइये

☐ मुझे एक जोड़ा एक्यूप्रेशर सेण्डलस् रजि. पोस्ट पार्सल द्वारा भेजें। मै रु० १०६.९५ (डाक व अतिरिक्ति खर्च) ड्राफ्ट/मनिऑर्डर से भेज रहा/रही हूँ।

☐ वी.पी.पी. द्वारा भेज दीजिये मै डिलिवरी के समय पोस्टमैन को रु. ११०.९५ देने का वचन देता/देती हूँ।

नाम ____________________

ठिकाना ____________ पिन ______

हस्ताक्षर ________ पैर का नाप ________

SKA 28

V DIWAN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

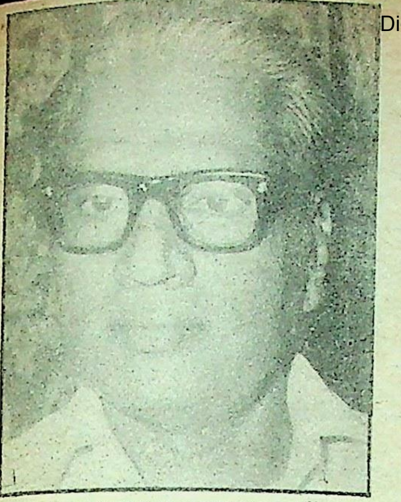

▣ ठाकुर प्रसाद सिंह

खाती. पहले मैं उनसे सहमत था पर अब बाबुओं की तरह मैं भी उन्हें डांटने लगा. एक दिन छोटे घर की एक बहू को अनाज चुराकर ले जाते मैंने रंगे हाथ पकड़ लिया तो कुहराम मच गया. बूढ़े मालिक ने मेरी पीठ ठोंक कर शाबाशी दी तो मैं प्रसन्न हो उठा.

मेरे परिवार की और भी कई लड़कियां उस गांव के बाबुओं से ब्याही गयी थीं. पर वे शादियां मेरे जन्म के पहले हुई थीं तथा उनमें से कोई भी लड़की जीवित नहीं थी. लड़कियों के मर जाने के बाद रिश्ते ठंडे पड़ गये थे. पर औपचारिकता कुछ हद तक बची रह गयी थी. इसी के चलते कभी-कभी दूसरे बड़े घरों से भी मुझे खाने के बुलावे आते थे. मैं भी ठंडे मन से वहां जाता और खाना खाकर चुपचाप लौट आता.

उस दिन भी बाबू श्यामनारायण सिंह के यहां से निमंत्रण लेकर नौकर आया. बाबू लोग स्वयं तो किसी के दरवाजे जाते नहीं पर नौकर की गोद में उनके परिवार का कोई न कोई बच्चा जरूर होता था. इससे मान लिया जाता है कि निमंत्रण देने स्वयं बाबू साहब ही आये हैं.

मैंने गोद के बच्चे का निमंत्रण स्वीकार लिया और नौकर के पीछे जाकर बड़े घर के मालिक को प्रणाम किया. वे बड़े ही स्नेह से मिले. सुंदर, गौरवर्ण और प्रसन्न बदन बाबू साहब ने मुझे बहुत प्रभावित किया.

खाना खाने हम लोग साथ ही बैठे. फिर उन्होंने मेरे घर के विषय में विस्तार से पूछना शुरू किया. वे शायद ही कभी मेरे यहां गये हों. पर मेरे घर के विषय में उनको काफी जानकारी थी, ऐसा उनकी बातचीत से लगा. मैं संतुष्ट बैठा धीरे-धीरे खाना खा रहा था. रसोई से चूड़ियों और पायलों की झनकार रह-रहकर आ रही थी, वातावरण बड़ा ही प्रीतिकर और घरेलू था.

तभी बाबू साहब ने पूछा, "बच्चा, तुम तो अपने पिता के अकेले लड़के हो?"

मैंने 'हां' कहकर सिर नीचे कर लिया.

"वे भी नहीं रहे." वे जैसे स्वयं से बात करते हुए बोले, "फिर तुम्हारी मां को यह क्या सूझी?"

मैं चौंक पड़ा और घबराकर उनकी ओर देखने लगा, "मैं समझा नहीं!"

"राजनारायण सिंह के चक्कर में तुम्हें क्यों डाल दिया? दो-चार लड़के होते तो कोई तुक भी थी. कुल एक लड़का और वह भी बिना बाप का."

मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया. मैं खाना रोक कर उनकी तरफ देखने लगा, "तो क्या तुम्हें कुछ भी पता नहीं है कि तुम यहां क्यों लाये गये हो?"

मेरे मुंह से बोल नहीं निकले. फैसला सुनाये जाने के पूर्व फांसी का मुजरिम जैसे देखता है वैसे ही मैं उन्हें देखता रहा.

वे बोले, "हैरत है, राजनारायण भाई ने इतना बड़ा धोखा तुम्हारी मां को दिया. कल-परसों उनके यहां जिले के अफसरान आने वाले हैं. वे हर बार गरीब नाते-रिश्तेदारों के लड़कों को खिला-पिलाकर उनके सामने हाजिर करते हैं. इस समय लड़ाई की भरती जोरों पर है. वे राय बहादुरी के चक्कर में गरीब-परिवारों को तबाह करते जा रहे हैं. वैसे तो मैं चुप रहता पर तुम्हारी बुआ ने मेरे घर में बार-बार कहलवाया कि मैं तुम्हें यहां से हटा दूं. . .तब मैं तैयार हुआ."

मेरे सामने का सारा दृश्य मेरे आंसुओं के कारण लिप-पुतकर एकाकार हो गया.

मैं मां की याद में बेचैन हो उठा. □

● 31 गुलिस्तां कालोनी, लखनऊ

लघुकथा

जो हुआ सो हुआ

▣ कमल डोगरे 'स्मृति'

घर-घर बर्तन मांजकर किसी तरह जीवन यापन करने वाली रामदेई की एकमात्र अविवाहित लड़की जब बिना किसी पूर्व सूचना के गर्भवती हो गयी तो रामदेई ने रो-रोकर आसमान सिर पर उठा लिया. कभी वह 'उस पापी' को कोसती, कभी उसके झुर्रियों भरे हाथों की मुट्ठियां बंधकर अपना व्यर्थ आक्रोश व्यक्त करतीं और कभी वह विवशभाव से अपनी लड़की को पीटती हुई ऊपर हाथ उठाती जैसे 'वह पापी' कोई और नहीं, आकाश ही हो.

पाषाण प्रतिमा-सी बैठी लड़की के सिर पर आसन्न प्रसव का संकट मंडराने लगा था. लोग उसके इस प्रकरण में अनावश्यक रुचि लेते हुए उसकी विविध मुखी आलोचनाएं कर रहे थे. रामदेई जब-तब उसे पीटती रहती, बार-बार उस 'कलमुंहे' का नाम पूछती रहती. यातनाओं के इस शिविर में मौन बैठी लड़की ने एक दिन तंग आकर, बहुत ही सहमते हुए अपने हाथ की कांपती हुई तर्जनी से एक व्यक्ति की ओर संकेत कर ही दिया.

लोगों की आशा के विपरीत, वह शहर का एक अत्यंत प्रतिष्ठित व्यक्ति था. नगर के प्रत्येक समारोह का मुख्य अतिथि था. वहां नगर वासियों के मन प्राणों में उसका आकर्षक व्यक्तित्व इस हद तक रचा-बसा था कि तमाम गोष्ठियां, समारोह उसके बिना संपन्न ही नहीं हो पाते थे. वह एक उत्कृष्ट वक्ता भी था और समाज के असहाय, उपेक्षित, लाचार स्त्री वर्ग से उसे पूरी सहानुभूति थी.

एक बार जब किसी समारोह में वह मुख्य अतिथि की हैसियत से बोल रहा था, . . . "और आये दिन महिलाओं पर अत्याचार हो रहे हैं, हम मौन देख रहे हैं, धिक्कार है हमें...हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति जैसी विलुप्त होती जा रही है. . ."

...इस दुष्ट ने मेरी बेटी का सत्यानाश कर दिया. . .इस कलमुंहे को मारो! चीखती हुई रामदेई मंच की ओर बढ़ने लगी.

वह जरा भी विचलित नहीं हुआ, स्वर को यथासंभव करुण बनाते हुए, भाषण को पूर्ववत जारी रखते हुए बोला, "मांजी की यह करुण पुकार किस नीच के लिए है. . .यदि मुझे पता लग जाये तो मैं. . .मैं उसका यहां पर. . .यहीं पर. . .पर मैं विवश हूं. . . मांजी, मैं विवश हूं. . .इस भीड़ में किसे दोषी कहूं—किसे? मांजी! अब जो हुआ सो हुआ. . मेरी और मेरे साथ इस विशाल जनसमूह की पूरी सहानुभूति आपके साथ है. . .मैं प्रयास करूंगा कि आगे इस प्रकार. . ."

आवाक् रामदेई कभी उसे, कभी भीड़ को, कभी स्वयं को देखती हुई भीड़ का एक हिस्सा बनकर खड़ी थी, भाषण चलता ही जा रहा था, मंत्रमुग्ध-सी भीड़ समर्थन में तालियां पीट रही थी. □

● द्वारा : श्री के. एल. डोगरे, 484 गांधी नगर, इटारसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अफवाहें

हृदयेश

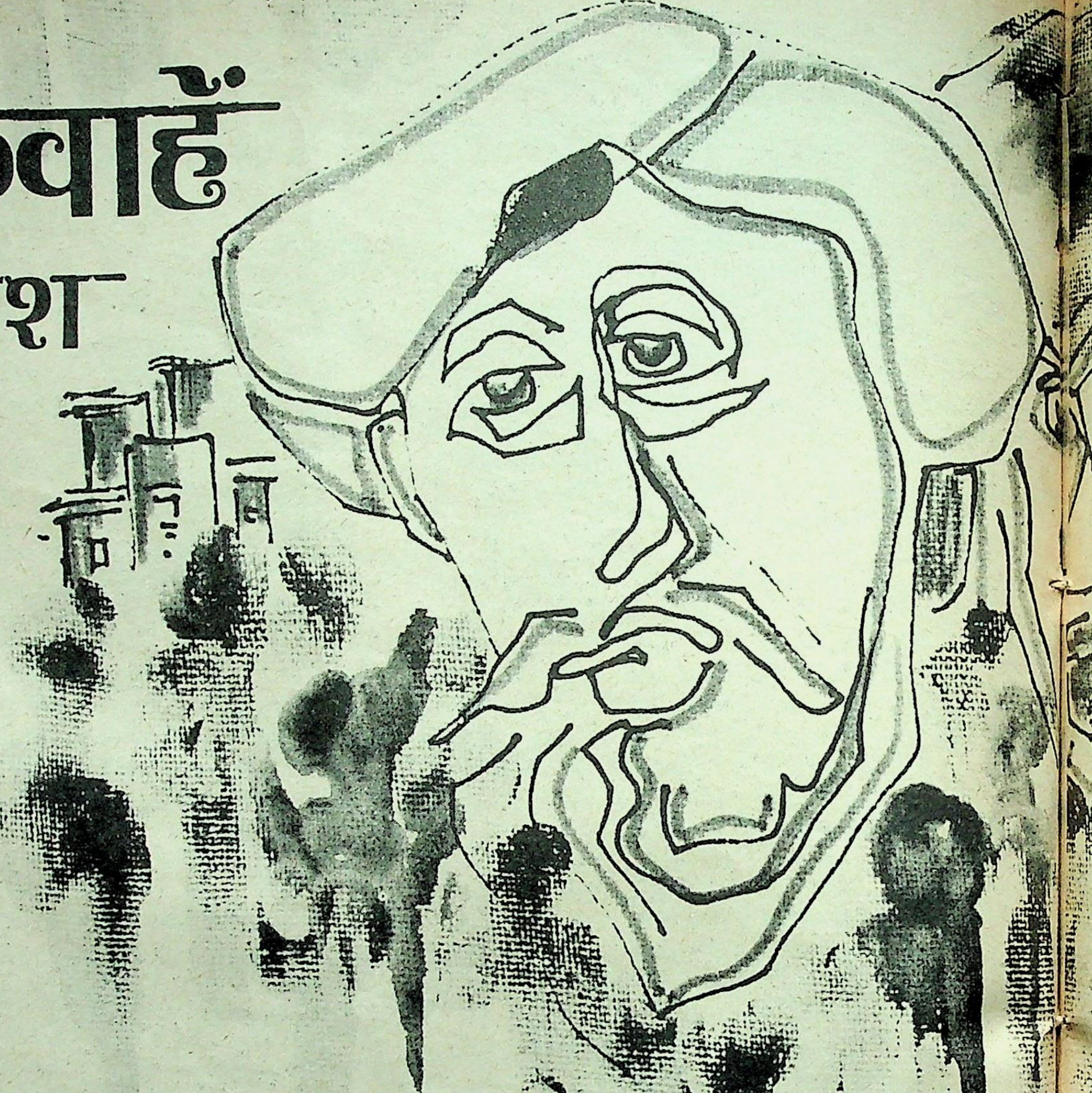

मेरे शहर में जो कुछ घटा है, शायद वैसा ही आपके शहर में भी घटा होगा. मेरे शहर में जिस तरह के लोग हैं, वैसे ही आपके शहर के भी होंगे, उसी तरह की मानसिकता और सोच-समझ वाले. पूरे देश और राष्ट्र का चरित्र एक-सा ही होता है.

मेरे शहर के उस मोहल्ले में उस दोपहर को वह खबर बाबू प्रकाश चंद्र ने दी थी कि देश की प्रधानमंत्री को गोली मार दी गयी. प्रकाश चंद्र कचहरी में सहायक नाजिर हैं और वह दोपहर में खाना खाने के लिए घर आते हैं. शहर के दूसरे मोहल्लों में उस खबर को दूसरे प्रकाश चंदरों ने दिया होगा. आपके शहर में वह खबर आपके शहर के प्रकाश चंदरों द्वारा दी गयी होगी.

प्रकाश चंद्र की दी हुई वह खबर फिर पूरे मोहल्ले में फैल गयी थी कि प्रधानमंत्री के गोली मार दी गयी. वह खबर जैसे ऐसी दायित्वपूर्ण थी कि उसे हर कोई हर किसी को बताकर अपनी जिम्मेदारी निभा रहा था. लोगों ने ट्रांजिस्टर खोल दिये, किंतु ट्रांजिस्टर पर कोई सूचना नहीं थी. या तो वहां भजन आ रहे थे या फिर गाने और संगीत. किस्सा क्या है? खबर जैसे सिर पर नाच रही थी, बिना पकड़ में आये हुए पक्षी की छटपटाहट देती हुई.

फिर ट्रांजिस्टर बोल उठे कि प्रधान मंत्री पर सुबह अपने दफ्तर जाते हुए हत्या का प्रयास किया गया. उनका शरीर गोलियों से जख्मी हो गया है और उनकी हालत गंभीर है.

फिर किसी ने बताया कि प्रधानमंत्री की मृत्यु हो गयी है. हिंदुस्तान रेडियो ने नहीं कहा है, पर पाकिस्तान रेडियो ने बता दिया है.

"अपना हिंदुस्तान रेडियो स्साला बड़ा पट्ठा है. इस बात को छिपा क्यों रहा है? जब इतनी गोलियां लगी हैं तो मर गयी होंगी. गोलियां चलानेवाले कौन थे?"

खबर अब भी सिर पर नाच रही थी और पकड़ में आ नहीं रही थी, न पकड़ में आने की छटपटाहट देती हुई.

साठ साल का सफेद दाढ़ी वाला सरदार सोहन सिंह गली में अपनी आटा चक्की पर मशीन ठीक कर रहा था. उसकी चक्की पर सर्दियों में रुई धुनने का भी काम होता था. रजाई-गद्दे भरने आने लगने पर एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत विभाजन के दौरान जो कत्ले-आम भारतीय उपमहाद्वीप में हुआ था, उसकी कहानियां आज भी रोंगटे खड़े कर देती हैं, कुछ ऐसा ही हादसा इस मुल्क को तब भुगतना पड़ा था, जब पिछले वर्ष प्रधानमंत्री की हत्या कर दी गयी. अफवाहों के कंधों पर सवार हो पाशविकता ने पूरे मुल्क के साथ जो खूनी खेल खेला, उसका जीता जागता इतिहास लिखती कहानी कि आतंकवाद अपना भयावह प्रभाव कहां-कहां और किस-किस पर छोड़ जाता है?

पखवारा पहले उसने रुई धुनने की मशीन चालू कर दी थी, मगर मशीन में खराबी आ गयी थी और उसे उसने आज सुबह खोल डाला था.

गोली लगने की खबर आने पर उसने हाथ में थमा रिंच रख दिया था और माथे पर आ गया पसीना पोंछते हुए बोला था, "यकीन नहीं होता कि प्रधानमंत्री के गोली मार दी गयी है. अगर ऐसा हुआ तो बहुत बुरा हुआ, बहुत ही बुरा. वे मुल्क की महान नेता हैं."

जब यह खबर आयी कि पाकिस्तान रेडियो के अनुसार 'वे' मर गयी हैं तो वह देर तक अपना माथा और गला पोंछता रहा था. फिर खंखारकर बोला था, "अगर यह सच है तो मुल्क के लिए बहुत बुरा हुआ, बहुत ही बुरा. बहुत ही दिलेर और दूरंदेश लीडर थीं. वह इस्पात की औरत थीं. . . सच में, यह बहुत ही बुरी खबर है."

चक्की के सामने रोडवेज के कंडक्टर गजेंद्र प्रताप का मकान था, जिन्होंने दूसरे रूट पर हो गये तबादले के कारण उन दिनों चिकित्सीय अवकाश ले रखा था. वह अपने चबूतरे पर से खुरक आवाज में बोले, "स्वर्ण मंदिर में जब से फौजी कार्रवाई हुई, सिख उनकी जान के तलाशी हो गये थे. मुझे लगता, यह सिखों का काम है."

सरदार सोहन सिंह मशीन छोड़कर आगे बढ़ आये, "ठाकुर साब, ऐसा न बोलिए. . . परमेश्वर के लिए ऐसा न बोलिए. हिंदू और सिख दोनों एक हैं. मेरा छोटा भाई मोहन सिंह, जो गाजियाबाद में है, उसकी बेटी की सगाई हिंदू चोपड़ा के घर हुई है. मेरी बहन की दोनों बहुएं हिंदू घरों से आयी हैं. ठाकुर साहब, यह वोटों की सियासत है, जो हिंदुओं और सिखों को अलग करने के लिए जहर फैला रही है.

फिर छह बजे हिंदुस्तान रेडियो से इस खबर की पुष्टि हो गयी कि प्रधान मंत्री की मृत्यु हो गयी. लगभग उसी समय पास के एक बड़े शहर से प्रकाशित होनेवाले दैनिक के विशेष संस्करण की एक प्रति उस गली में आ गयी, जिसमें घटना का विवरण देते हुए लिखा था कि प्रधान मंत्री की अपने ही दो सुरक्षा सैनिकों ने हत्या कर दी और वे सिख थे.

सोहन सिंह के हाथ में थमी हुई छेनी-हथौड़ी की चोट से उछलकर उनकी कलाई पर आ लगी. वह कलाई के उस भाग को सहलाते हुए चक्की के बाहर आ गये और गजेंद्र प्रताप से बिखरती हुई आवाज में बोले, "ठाकुर साब, जब आपने कहा था तो यकीन नहीं हुआ था, मगर वह कड़वा सच है. मुझे शर्म है. . .मैं शर्मिंदा हूं. कुर्सी की पालिटिक्स ने भाइयों के बीच में नफरत की दीवारें खड़ी कर दीं. . ."

"सरदारजी, सिखों ने यह बहुत ही बुरी हरकत की है." गजेंद्र प्रताप की आवाज में बीड़ी के धुएं की कड़वाहट घुली थी.

"हां ठाकुर साब, मैं भी मानता हूं, यह बहुत बुरी हरकत है. . .मैं निहायत शर्मिंदा हूं."

अंधेरा घिर रहा था. सोहन सिंह चक्की के अंदर जाकर बिखरा सामान समेटने लगा. वह अब मशीन कल ही ठीक करेगा. आदमी का मन उचाट हो जाये तो छोटा-सा काम भी पहाड़ बन जाता है.

ताला बंद कर घर जाते हुए वह फिर बोला था, "किसने सोचा था कि आज का दिन इतना मनहूस होगा. मुल्क के लिए बहुत ही बुरा हुआ, निहायत शर्मनाक वाकया. . ."

गली के घरों से मर्द लोग बाहर आ गये थे. प्रधानमंत्री की हत्या के बारे में वे जितना जानते थे, उतना दूसरों को बता देना चाहते थे. बताकर वे रुकते नहीं थे, फिर बताने लगते थे, इतनी देर में बताने लायक वे कुछ और जान लेते थे. गली में यहां से वहां तक बस उस हत्या के बारे में ही बातें हो रही थीं और इन बातों के कीर्तन में यह संपुट. 'दो सिखों ने उन्हें मार दिया,' 'सिखों ने उनको मरवा दिया,' बराबर जोड़ा जा रहा था.

सुबह ठीक से हुई भी न थी कि गली में खबर फैलने लगी कि दिल्ली, लखनऊ तथा देश के दूसरे कई शहरों में दंगे भड़क उठे हैं. यह खबर रेडियो बी. बी. सी की दी हुई है, जो झूठी नहीं हो सकती. दंगे प्रधानमंत्री पर गोली चलाये जाने की खबर के तुरंत बाद ही शुरू हो गये थे. दिल्ली की हालत बहुत खराब है. दिल्ली जल रही है.

कंडक्टर गजेंद्र प्रताप ने शौच के हाथ बाहर चबूतरे पर धोते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए कहा कि वह रात ही समझ गये थे कि दंगे होंगे! इतने बड़े कांड के बाद हिंदू भला कैसे चुप बैठते? हिंदू कोई कायर कौम नहीं है. राणा प्रताप, शिवाजी हमीं में से हुए हैं.

शादी के बाद अपने बाप से अलग होकर कोयले का काम करने वाला सुभाष चंद्र बोला, "पाकिस्तान से भागकर आने पर हमने इनको अपनाया, मगर ये सांप निकले. सांपों का सिर अगर अब भी न कुचला गया तो ये औरों को भी डंस सकते हैं."

गली से दो लड़के साइकिल लेकर शहर का जायजा लेने निकल गये. फिर दो लड़के और निकल गये.

वकील शिवकिशोर मिश्र का लड़का अनूप मोटर साइकिल लेकर निकल गया. वह एम. ए. में पढ़ता था. उसने यूनियन का चुनाव लड़ा था, मगर हार गया. चुनाव हारकर फिर वह एक राजनीतिक पार्टी के युवा मंच का सदस्य हो गया था.

शहर में बाजार बंद रहेगा. गली में हलवाई, पनवाड़ी, नाई, दर्जी की छुटपुट दस-पांच दूकानें थीं. वे भी बंद करा दी गयीं. प्रधानमंत्री की हत्या के शोक में एक भी दूकान खुलनी नहीं चाहिए. बहुत गलत काम होगा. गली में खबर आयी कि बाहर सड़क पर एक भी सिख दिखायी नहीं दे रहा है. सब डरकर अपने घरों में बंद हो गये हैं.

फिर खबर आयी कि प्रधानमंत्री जिंदाबाद के नारे लगाता एक जुलूस चौक से उठा है.

फिर खबर आयी कि एक जुलूस घंटाघर से उठा है.

फिर खबर आयी कि एक बहुत बड़ा जुलूस सदर बाजार से उठा है और वह गुरुद्वारे की ओर बढ़ रहा है.

फिर खबर आयी कि गुरुद्वारे के अंदर जमा सिखों और जुलूस के बीच पथराव हुआ है. सिर फूटे हैं. जुलूस के दो आदमियों की हालत गंभीर है. पहल सिखों ने ही की. जुलूस सिर्फ खालिस्तान मुर्दाबाद के नारे लगा रहा था.

गजेंद्र प्रताप अधजली बीड़ी फेंककर बलबलाया कि सिखों के दिमाग बहुत खराब हो गये हैं. इनको पाकिस्तान की शह है. पाकिस्तान बंगलादेश बन जाने का बदला खालिस्तान बनवाकर लेना चाहता है.

वहीं पास खड़े गली के एक अन्य रहनेवाले ने कहा, "सरदारों ने प्रधानमंत्री की मौत के बाद मिठाई बांटकर खुशियां मनायी हैं. इस शहर में भी गुरुद्वारे में रोशनी की गयी."

गली में खबर आयी कि सदर बाजार में दो सरदार कपड़े वालों की दूकानों में आग लगा दी गयी है.

फिर खबर आयी कि पंजाब से जो रेलगाड़ी आयी है, उसमें कई हिंदुओं की लाशें हैं. फिर खबर आयी कि शहर में कर्फ्यू लगा दिया गया है और पुलिस गश्त कर रही है.

गली में सब से पहले कर्फ्यू की ऐसी-तैसी बांके लाल ने की थी. उसने अपनी भैंस घर से निकालकर सामने पड़े खंडहर में बांध दी थी, जहां की जमीन पर अपना हक कायम करने के लिए वह बांधा करता था. भैंस घर में परेशान हो रही थी. फिर उसने वहीं जाकर उसकी पानी-सानी भी की. बांके लाल पचास साल का पस्त कद, पर भरे जिस्म का आदमी था. वह कचहरी में स्टांप-फरोशी करता था. वह अपने पास दस-दस, पंद्रह-पंद्रह साल पुराने स्टांप रोके रखता था और जिनको साक्ष्य के लिए कागज बनाने होते थे, उनके हाथ मनमाने दाम पर बेचा करता था. उसके खिलाफ एक बार टेलीफोन के चोरी के तार की बरामदगी का मुकद्दमा चला था, मगर वह छूट गया.

दूसरे नंबर पर कर्फ्यू की ऐसी-तैसी सुरेंद्र प्रकाश ने की थी. वह मग-बाल्टी लेकर गली के नल पर आ गया था और साबुन मलकर नहाने लगा था. वह तीस साल का लंबे कद का नौजवान था. वह बेढंगे पीले दांतों तथा चेहरे पर छितरे बदरंग चकत्तों के कारण साफ कपड़े पहनने पर भी हरदम गंदा-सा दीखता था. वह दिल्ली से बिसातखाने का सामान लाकर दूकानदारों को देता था. उसने कभी भी टिकट लेकर यात्रा नहीं की और उसका दावा था कि वह आज तक पकड़ा नहीं गया.

तीसरे नंबर पर कर्फ्यू की ऐसी-तैसी राजनीतिक पार्टी के युवामंच के सदस्य वकील साहब के सुपुत्र अनूप ने की थी, जो सुबह मोटर साइकिल लेकर शहर की स्थिति का जायजा ले आया था. उसका, गली में ही कुछ दूरी पर एक दोस्त रहता था, जिसके यहां एक दूसरा अखबार आता था. वह वहां जाकर अखबार ले आया और गली में ही खड़े होकर उसे इत्मीनान से पढ़ने लगा.

उसके बाद फिर गली में दो-दो, एक-एक कर कई लोग जमा हो गये थे, जो घरों के अंदर कैद रहने में अपनी हेठी समझते थे.

गली में फिर एक ओर से सफेद काले चकत्तों वाला कबरा कुत्ता नमूदार हो गया. कुत्ता सरदार सोहन सिंह का था. सोहन सिंह का मकान गली से बाहर एक दूसरे मोहल्ले में था, पर कुत्ते के लिए यह बेमायने था. उसके लिए वह हिस्सा भी अपना था, जहां मालिक का मकान था और वह हिस्सा भी, जहां मालिक की चक्की थी.

"सरदारजी का कबरा आया है!" गली में खड़ा एक लड़का यों बोला, जैसे उस कुत्ते को पहले उसी ने देखा हो और उसकी सूचना देना जरूरी हो.

सरदार तो नहीं आया, मगर जासूसी करने अपने कुत्ते को भेज दिया कि जाओ, पता लगाकर आओ कि गली में हिंदू कितना बौखलाये हुए हैं—पहले वाले लड़के से बड़े एक लड़के ने उस सूचना को फिर सूचना नहीं रहने दिया.

कुत्ता चक्की के पास रुक गया और फिर चक्की के पटरे पर चढ़ गया. आधा मिनट बाद वह पटरे से उतरा और आगे की ओर निश्चिंतता से बढ़ने लगा. गली में यहां-वहां जितने लोग खड़े थे, वे सब उसके अपने थे. कुत्ता जब उस बड़े लड़के के पास से गुजरा, उसने उसके लात जड़ दी, "खालिस्तान जा लंडूरे, यहां क्या कर रहा है?"

कुत्ता चिचियाता हुआ पीछे हट गया और मुंह उठाकर मारनेवाले की ओर देखने लगा. यह मुकुंदी था, जो अक्सर उसे डबलरोटी खिलाता था, उचका-उचकाकर.

तभी मुकुंदी से कुछ आगे खड़े आदमी ने एक ईंट उठाकर मारी, "ओ बे सरदारा के बाप, यह ठीक कह रहा है, खालिस्तान जा, खालिस्तान. . ." फिर किसी और ने ईंट फेंकी.

कुत्ता भागकर खंडहर पर चढ़ गया और वहां से भौंकने लगा, 'बाख. . बाख. . क्या हुआ. . क्या हुआ ?'

वहां वकील शिवकिशोर मिश्र का कुत्ता शेरू भी आ गया, जो ऊंचा और तगड़ा था. वकील साहब के सुपुत्र अनूप ने शी-शी कर उसे उकसाया कि वह दौड़कर कबरे को जा दबोचे.

कुत्ता शी-शी करने पर दौड़ा तो, मगर कबरे के पास पहुंचकर खड़ा हो गया, एक दोस्त की मानिंद.

जिस लड़के ने लात चलायी थी, उसने आड़ लेकर कबरे पर गुम्मा चलाया. जब वार खाली गया तो दूसरा गुम्मा एक वजनी गाली के साथ चलाया. फिर दूसरी तरफ से तीन-चार दूसरे लोगों ने ईंट-पत्थर चलाये.

चोट कबरे के न लग कर शेरू के लगी, जो पूंछ नोचता हुआ चिल्लाने लगा—'बाख. . याख. . याख. . बाख—यह क्या किया. . . यह क्या किया.'

जिले के अंदर की तहसील से गली में बृजकिशोर उर्फ बिरजू गुरू आ गया था. वह शराब के ठेके पर काम करता था और ठेकेदार के जो पांच-सात खास आदमी थे और जिनके जोर-जूते से जिले में देशी शराब की दूकानें ढंग से चलती थीं, उनमें से वह एक था. वह पचास साल के आसपास था, मगर जिस तरह की उसकी लंबी-चौड़ी कद-काठी थी, उससे उम्र में कहीं छोटा दीखता था. उसके चेहरे पर कड़े बालों वाली झबरीली मूंछें और चौड़े नथुनों वाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

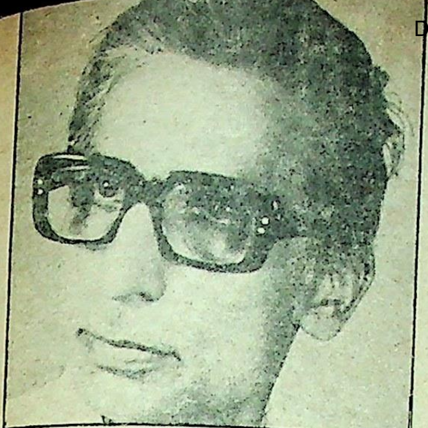

■ हृदयेश

फोड़ेनुमा नाक उसके व्यक्तित्व के जरूरी हिस्से हो गये थे. वह जोरू-बच्चों के जाल-जंजाल से मुक्त था. जब वह जवान था, उसने जुए के अड्डे पर हो गये एक झगड़े में एक आदमी के चाकू मार दिया था. हत्या के प्रयास के जुर्म में उसको पांच साल की सजा हो गयी थी. जेल से छूटकर उसने उस दुश्मनी और उस सजा का सारा हिसाब चुकता करने के लिए उस आदमी को फिर जान से मार डाला था. हत्या के उस जुर्म में गवाही न मिलने पर वह साफ छूट गया था. उसकी बहन को उसका बहनोई परेशान करता था और जब बहन ने तंग आकर आत्महत्या कर ली तो उसने बहनोई की हत्या कर दी. हत्या के इस जुर्म में भी विश्वसनीय साक्ष्य के अभाव में वह छूट गया था. हनुमानजी के मंदिर में जो दो कोठरियां थीं, उनमें से एक में उसने अपना ताला जड़ रखा था. दूसरे तमाम लोगों की तरह पुजारी की भी उससे फूंक सरकती थी. बस से उतरने पर, टोंके जाने पर, उसने कहा था कि शहर में अगर उसके पीछे कर्फ्यू लगा दिया गया है तो क्या वह घर जायेगा नहीं. उसे गली तक पुलिस का एक हेड मुंशी छोड़ गया था, जो उससे परिचित था.

बिरजू गुरू को प्रधानमंत्री की मृत्यु के बारे में तहसील की शराब की दूकान पर ही पता लग गया था, किंतु उनकी दो सिख सिपाहियों के हाथों हत्या हुई है, इसकी जानकारी उसे शहर में ही हुई थी और फिर पूर्ण जानकारी गली में आकर. चार-पांच दिन पहले उसकी ठेके की दूकान पर एक सरदार ट्रक ड्राइवर से दूकान की बेंच गिरा देने को लेकर लौझड़ हो गयी थी और उसे मलाल था कि ट्रक ड्राइवर दबा नहीं था और ट्रक पर बैठकर गालियां बकता हुआ चला गया था.

मंदिर में हल्का होकर जब वह गली में वापस आया, उसने पूछा कि कोई सिक्खड़ा भेंट चढ़ा या नहीं? और जब स्टांप-फरोश बांके लाल ने बताया कि गुरू, अभी तक तो कुछ नहीं हुआ है तो उसने खैनी की पीक पिच्च से थूकते हुए कहा कि उस गली में सब स्साले जनखे हैं.

"सोहन सिंह कल सांझ गली से गया तो फिर फटका नहीं. . . "

"सोहन सिंह गया तो क्या वह अपनी चक्की भी अपने चूतड़ों से बांधे लिये गया ?" बिरजू गुरू ने पिच्च से फिर थूक दिया.

"सोहन सिंह की चक्की फूंक देनी चाहिए." उसने गालियों के बाद कोई ठोस कार्यक्रम रखते हुए कहा.

"गुरू, जरूर फूंक देनी चाहिए." तीन चार यों किलके कि अब एक बढ़िया काम होने जा रहा है.

"कोई मिट्टी का तेल लाओ."

"गुरू, तेल क्यों, ठाकुर साब के यहां डीजल मिल जायेगा."

कंडक्टर गजेंद्र प्रताप ने राज्य परिवहन निगम की बसों में से चुराये हुए डीजल का एक कैन लाकर रख दिया, "लो, जितनी जरूरत हो, ले लो."

"कल रात सोहन सिंह ने मिठाई खरीदी थी." एक ने यों कहा, जैसे मिठाई खरीदते समय वह भी साथ में था.

"प्रधानमंत्री के मरने पर हरामी ने खुशी मनायी! खुशी मनायी तो लो अब रोये भी!"

बिरजू गुरू ने डीजल छिड़ककर चक्की में आग लगा दी.

आग की लपटें उठने लगने पर वकील साहब के लड़के ने उछलकर आवाज लगायी—प्रधानमंत्री जिंदाबाद!

वहां खड़े और लोगों ने भी वह नारा गुंजाया.

चक्की से लगी हुई मातादीन परचूनिये की दूकान थी. उसने कुछ दिन पहले ही हजार-बारह सौ रुपये जुटाकर दूकान की मरम्मत करायी थी. वह गली के पीछे रहता था और चूंकि एक सीधा-सादा इन्सान था, ऐसा कि जिसके लिए कर्फ्यू कर्फ्यू होता है, इसलिए उसने अपने को घर में कैद कर रखा था और उसे गली की सरगर्मियों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी. जब उसे जानकारी मिली कि आग उसकी दूकान में भी दौड़ गयी है, वह भागता हुआ आया. आग की जितनी ऊंची-ऊंची लपटें चक्की में से उठ रहीं थीं, उतनी ही उसकी दूकान में से भी, "हाय, यह क्या हो गया! मैं तो तबाह हो गया! हाय, मैं तो मर गया!" वह बदहवास-सा चीखने लगा.

सुबह गली में और ताजा खबरें आ गयीं कि रात कई दूकानें लुटी हैं. सब्जी मंडी में कपड़ेवाली पूरी बाजार फुंक गयी. रामनगर कालोनी में एक हिंदू घर में एक सरदार को बचाने की नीयत से छिपा लिया गया था. रात में उस सरदार ने घरवालों पर कृपाण से हमला कर दिया, घर वाला मर गया. औरत और दो बच्चे घायल अस्पताल में पड़े हैं. रात कुल मिलाकर चार कत्ल हो गये—इन खबरों के स्रोत क्या हैं, इनको लानेवाले कौन हैं, इसको कोई नहीं जानता था, पर वे आने दी जा रही थीं. उनकी सत्यता को परखा नहीं जा सकता था, इसलिए वे सब मानी जा रही थीं.

शहर में कर्फ्यू अब भी लगा हुआ था. मास्टर जानकी सहाय के घर पर उनका नाती एक हफ्ते से बीमार चल रहा था. बुखार उतर नहीं रहा था. कल डॉक्टर के यहां से दवा आनी थी और कर्फ्यू के कारण आ न सकी थी. कल रात नाती को 102 डिग्री बुखार हो गया था. आज सुबह भी उतना था. उनकी लड़की घबड़ायी हुई थी, वह खुद भी. नाती दूसरे की अमानत था. दवा न मिलने से बुखार भड़ककर कहीं गलत रूप न ले ले. उनको उम्मीद थी कि कर्फ्यू आज उठ जायेगा, पर वह उठा नहीं था. डॉक्टर अपनी दूकान के ऊपर ही रहता था. यों उसका मकान ज्यादा दूर नहीं था. मुश्किल से आधे किलोमीटर का फासला होगा, मगर कर्फ्यू में इतना फासला भी बहुत था.

जानकी सहाय की परेशानी जानकर साफ कपड़े पहनकर भी गंदा दीखने वाला सुरेंद्र प्रकाश मूंगफली टूंगना रोककर बोला, "मास्साब, कर्फ्यू में लोग दूकानें लूटकर माल घर ले आते हैं और आप अपने डॉक्टर के यहां से दवा भी नहीं ला सकते. रात इस गली में भी लूट का माल आया है. जरा हिम्मत से काम लीजिए. क्या पता, कोई पुलिसवाला आपका स्टूडेंट ही निकल आये.

मास्टर जानकी सहाय फिर भगवान का नाम लेकर निकल पड़े. वह आस्तिक थे. आयी विपत्ति को भगवान पर छोड़ देते थे कि वह दयालु और शक्तिमान है और सब कुछ संभाल लेगा. आगे बढ़ते हुए बार-बार उनको घबड़ाहट होती थी कि कहीं कर्फ्यू तोड़ने के जुर्म में उनको गिरफ्तार न कर लिया जाये. तब दवा तो गयी ही, वह भी गये.

गलियों के अंदर वाला आधा हिस्सा निर्विघ्न पार हो गया. अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधा रास्ता सड़क होकर था. सड़क पर ही डॉक्टर का मकान था.

गली के मुहाने पर पहुंचकर जानकी सहाय ठिठक गये. उन्होंने आड़ लेकर सड़क का जायजा लिया. सड़क सांय-सांय कर रही थी. पचास गज के फासले पर दो पुलिस वाले खतरे की झंडी जैसे खड़े थे. उन्हें झुरझुरी हुई, पर फिर वह भगवान का नाम लेकर सड़क पर आ गये और धीरे-धीरे बढ़ने लगे. वह पुलिस वालों को बता देंगे कि वह किस मजबूरी में घर से निकले हैं. आखिर उनके भी बाल-बच्चे होंगे. उनकी बात सुनकर उम्र में बड़ा सिपाही बोला, "खैर, हम तो कुछ नहीं कहते, पर आगे का जिम्मा आपका."

सौ गज आगे मोड़ पर चार सिपाहियों से लैस दरोगा खड़ा था. जब वह अपनी बात कह चुके, दरोगा ने हुक्म दिया, "कान पकड़कर उठिए-बैठिए, बीस बार."

पसीना-पसीना होते हुए जब उन्होंने अपनी मजबूरी फिर बतानी चाही, दरोगा ने डपट दिया, "श्रीमानजी, मैं कह रहा हूं. कान पकड़ के बीस बार उठिए-बैठिए. कानून कानून है. आप नाती की दवा के लिए कर्फ्यू तोड़ सकते हैं तो कोई अपनी महबूबा से मिलने के लिए भी तोड़ सकता है. कर्फ्यू न हो गया, स्साला बाबाजी का घंटा हो गया, जिसने चाहा, टन से बजा दिया."

उनको हतबुद्धि खड़ा देखकर दरोगा ने इस बार जमीन पर बेंत पटकते हुए इस तरह हुक्म दिया कि जानकी सहाय कान पकड़कर सचमुच उठने-बैठने लगे.

"हां, एक. . दो. . चार. . जरा कायदे से उठक-बैठक कीजिए, जैसे दर्जे में विद्यार्थियों से करवाते हो. . . पांच. . छह. . . "

वह दरोगा आंखों ही आंखों में मुस्कराता जाता था. उसे ऐसे दृश्य लुत्फ देते थे. वह इस मान्यता का था कि पुलिस हुकूमत के लिए है और हुकूमत सख्ती से चलती है. पुलिस लोगों को डराये और पुलिस से लोग डरें, तभी वह पुलिस है. वह छोटे घर का था और शरीफों को फंसा देखकर भी उसे सुख मिलता था.

पंद्रह. . . सोलह. . . अट्ठारह. . बीस. बस रुकिए. अब चुपचाप घर जाकर बंद हो जाइए और जब तक कर्फ्यू उठ नहीं जाता है, घर से बाहर निकलने की गलती फिर न करिएगा.

जानकी सहाय जब घर की ओर लौटे, उनके पैर डगमग कर रहे थे, जैसे जिस्म के ऊपरी भाग और नीचे पैरों में ताल-मेल टूट गया हो. उनको बीच चौराहे पर कान पकड़कर उठक-बैठक करनी पड़ी, इस हादसे ने उनको अंदर तक हिला दिया था. भले ही वैसा करते दूसरे किसी ने न भी देखा हो, उनकी अपनी आंखों ने तो देखा है. वह दृश्य वहां हमेशा के लिए गड़ गया है. भय, ग्लानि, आत्मघृणा, पीड़ा का जैसे उनके अंदर ज्वार उठ आया था.

वह घर के दरवाजे पर आये तो उनको उल्टी हो गयी. आंगन में पहुंचे तो फिर उल्टी हो गयी. घर के लोगों को बस इतना बताया कि पुलिस ने उनको डॉक्टर के मकान तक जाने नहीं दिया और उनके साथ बहुत बदसलूकी से पेश आयी. वह फिर उस त्रासद हादसे की याद से अपने को नुचने देने के लिए सिर तक कंबल खींचकर खाट पर पड़ रहे.

कमला की लड़की की शादी थी. शादी दिल्ली से होनी थी. कमला को लड़की लेकर दिल्ली परसों पहुंच जाना था. अगले दिन विवाह की तिथि थी. कमला विधवा थी. उसका पति कपड़े का काम करता था और पिछले साल ही उसकी कैंसर से मृत्यु हो गयी थी. अब दूकान पर उसका पंद्रह साल का लड़का बैठता था.कमला का भाई कानपुर में रहता था. यह विवाह उसी ने तय कराया था. एक हफ्ता पहले वह आया था और विवाह संबंधी जरूरी खरीदारी करके बीवी-बच्चों को छोड़कर चला गया था. कल उसे फिर आना था. उसी के साथ उन सबको दिल्ली जाना था. भाई आया नहीं था और कमला परेशान थी. लोगों से पूछने पर उसे पता चला था कि कानपुर में दंगा हुआ है और कर्फ्यू है. दिल्ली में भी दंगा हुआ है और कर्फ्यू है. कहीं कोई रेलगाड़ी चल नहीं रही है. अब क्या होगा ? भाई कानपुर से कैसे आयेगा और वह लड़की को लेकर दिल्ली कैसे पहुंचेगी. आज दो तारीख है. पांच को शादी है. शादी क्या हो नहीं पायेगी? टल जायेगी, वह पिछले छह महीने से इस तारीख से जुड़ी हुई थी. यह तारीख जैसे उसके अंदर लिख गयी थी.कल रात दरवाजे पर खटक हुई तो उसने भाई का नाम लेकर आवाज दी थी, "अमर, आ रही हूं." पर भाई की जगह दरवाजा बिल्ली ने खटकाया था. वह एक ठंडी सांस भरती हुई बिस्तर पर वापस आ पड़ रही थी.

गली में पांच-छह लोग खड़े थे और इस वक्त वह गली में आ गयी. पूछा कि कल क्या कर्फ्यू उठ जायेगा. वह दूसरों के मुंह से सुनना चाहती थी कि हां, उठ सकता है. संभावना भी एक सहारा है.

"देश की प्रधानमंत्री मारी गयी हैं तो दंगा क्या इतनी जल्द खत्म हो जायेगा? अभी तो बिस्मिल्लाह है."

सहारा नहीं मिला. अंदर की छटपटाहट छिटकने लगी, भाड़ में पड़े मक्के के दानें जैसी. उस छिटकन को कुछ बाहर ठेल देने के लिए वह बताने लगी कि उसका परसों दिल्ली पहुंचना बहुत जरूरी है. अगले दिन शादी है. उसके समधी साहब के यहां ज्वैलरी का काम होता है. बहुत बड़ी दूकान है. समधी साहब ने कहा कि उनको लड़की के सिवाय और कुछ नहीं चाहिए. उनकी कोई मांग नहीं है, सिवाय अकेली इस मांग के कि लड़की दिल्ली लाकर शादी की जाये. उनके काफी मिलने वाले लोग हैं. वह बारात में किसी को छोड़ नहीं सकते हैं. उसके समधी साहब देवता आदमी हैं. उनको कतई गुमान नहीं. उसका दामाद भी निहायत भोला-भाला है. बोलता है तो मिश्री की कनें झरती हैं. वह उनके लायक थी नहीं. उन लोगों को उसकी लड़की भा गयी तो रिश्ता मंजूर कर लिया.

एक युवक ने कहा, "दिल्ली में कसकर मारकाट हुई है. हजारों सिख मारे गये हैं और हजारों हिंदू भी. कुछ नहीं कहा जा सकता कि किसके सगे-संबंधी के साथ वहां क्या हो गया है"

"ऐसा न बोलिए, . . नहीं, ऐसा न बोलिए." दुबली काया की वह अधेड़ औरत यों चीखती हुई-सी हाथ हिलाने लगी जैसे ऐसा कहकर कहनेवाला उसके समधी के यहां की कोई बहुत बुरी खबर सुनाने जा रहा हो. उसका कमजोर जिस्म अशुभ आशंका से थर-थर कांपने लगा था, "ऐसा कुबोल न बोलिए. . . नहीं, ऐसा कुबोल न बोलिए." वह रोने भी लगी थी. फिर वह उन सबको इस भाव से देखती हुई कि वे हत्यारे हैं, वहां से चली गयी.

अपने बाप से अलग होकर कोयले का काम करने वाले सुभाष चंद्र ने शिकायत की कि उसको आज सुबह सिर्फ दाल से रोटियां निगलनी पड़ी हैं, सब्जी न हो तो वह खाना क्या, जैसे पतुरिया न हो तो वह बारात क्या, शाम के लिए भी सब्जी की कोई जुगाड़ नहीं है और वह तो भूखा रह जायेगा. कंडक्टर गजेंद्र प्रताप ने कहा कि वैसे उनके घर में प्याज पड़ा रहता था, पर इन दिनों ससुरा उसे भी खत्म होना था. एक अन्य ने बताया कि कर्फ्यू की खबर हो जाने पर कल कुछ सब्जी वालों ने आलू छह रुपये किलो और टमाटर दस रुपये किलो की दर से बेचे हैं.

स्टांप-फरोश बांके लाल ने एकाएक उनसे किसी मंजे हुए राजनीतिक नेता जैसे भाव से पूछा, "तो आप सबलोगों को सब्जी की काफी परेशानी है?" फिर नेता जैसे ही भाव से मुस्कराते हुए घोषणा की कि जिस किसी को सब्जी की दिक्कत हो, वह उनके साथ आये.

वह गलियों में से फूटती गलियों को पार कर एक ऐसी जगह आ गया, जहां एक खेत था. खेत में गोभी उगी हुई थी. फूल अभी छोटे और कमसिन थे.

उसके साथ सात-आठ लोग थे. उसने उनसे कहा कि हरेक अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरूरत लायक फूल उखाड़ ले. पहल करने के लिए उसने स्वयं ही चार-पांच फूल उखाड़ लिये.

सब लोग भी कांटे की बाड़ हटाकर खेत में घंस गये और गोभी के पौधे उखाड़ने लगे, कच-खच. . कच-खच.

खेत रोहन काछी का था, जो निगरानी के लिए वहां मौजूद नहीं था.

राशनिंग दफ्तर के बाबू रोशन लाल को बवासीर की शिकायत थी और गोभी-बैंगन जैसी बादी सब्जियां मना थीं, पर फिर भी उन्होंने आठ-दस फूल उखाड़ लिये.

गली में खबरों की कोई नयी खेप सरका गया था, उसी सच के कपड़े में बांधकर. इस खेप में था कि गुरुद्वारे में आग लगा दी गयी है और वह जल रहा है. कई लाशें नदी में बहती हुई आयी हैं. दो सिख लोदीपुर पुल पर रेल की पटरी उखाड़ते पकड़े गये. उनमें से एक के पास जेबी ट्रांसमीटर मिला. बाबा विश्वनाथ के मंदिर में बम पाया गया. बम फटा नहीं और पुलिस उठाकर ले गयी है.

राजकिशोर अपने घर में बैठे हुए देश की ताजा हलचलों को लेकर चिंतित थे. देश की प्रधानमंत्री की हत्या हुई, यह अपने में एक बहुत दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है, पर इस हत्या को लेकर जो हिंसा का नंगा तांडव होने लगा है, वह और भी दुर्भाग्यपूर्ण है. जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र आदि को लेकर देश में आये दिन दंगे होते रहते हैं, जिनमें सैकड़ों निर्दोष लोग मारे जाते हैं. राजनीति देश के हित में बड़े उद्देश्यों को लक्ष्य बनाकर देश में रहने वाले तमाम जनों को समता और प्रेम के सूत्र से जोड़ने के लिए है, न कि नफरत की दीवारें उठाकर उनको छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटने के लिए. राजनीति का बहुत घृणित रूप हो गया है. वह गलत हाथों में चली गयी है. वह गुंडों और बौनों की फसल उगा रही है. उसने व्यवस्था की कुर्सियों पर ऐसे अंधे-बहरे बैठा दिये हैं, जो सिर्फ अपनों को ही देख पाते हैं और सिर्फ अपनों की ही बातें सुन पाते हैं. ऐसी राजनीति देश को ले जाकर कहां छोड़ेगी?

राजकिशोर तबला वादक थे. वह संगीत के एक विद्यालय में लड़के-लड़कियों को तबला सिखाते थे. दो-चार घरों पर भी वह तबला सिखाने जाते थे. उनकी पत्नी की मृत्यु हो चुकी थी. उनके कोई संतान नहीं थी और सांसारिक अर्थों में वह निपट अकेले थे, पर वह अकेलापन महसूस नहीं करते थे. उनको अपने विद्यार्थी अपनी संतान जैसे ही लगते थे.

वह अब हरमीत कौर के बारे में सोचने लगे. बड़ी-बड़ी निर्मल आंखों और कोकिल स्वर वाली यह लड़की, जो मशीनरी का काम करने वाले सरदार जगजीत सिंह की बेटी थी, जितनी अच्छी तरह गुरुवाणी गा लेती थी, उतनी ही अच्छी तरह मीरा और सूर के पद और उतनी ही अच्छी तरह गालिब की गजलें. गुरुवाणी गाती हुई वह सिख लगती थी, मीरा के पद गाती हुई हिंदू और गालिब की गजलें गाती हुई मुसलमान. वह सब धर्मों का संगम थी, एक अखंडित मानव-आत्मा, लेकिन धर्म के अंधे उसे केवल सिख ही मानेंगे. पता नहीं, वह बेचारी इस समय कहां और किस स्थिति में होगी.

गली में धमाका हुआ. शोर से लगा कि किसी ने पटाखा दागा है. शरारती लोग हर स्थिति को भुना लेते हैं.

एक और धमाका हुआ. फिर एक और.

अचानक राजकिशोर के दरवाजे पर दस्तक हुई, फिर दरवाजा पीटा जाने लगा, तेज-तेज. वे खोलने न गये तो तोड़ जा सकते हैं.

राजकिशोर ने दरवाजा खोल दिया.

अंदर पुलिस का एक दस्ता घुस आया.

"बंदूक आपने दागी?" दस्ते के एक वर्दीधारी पुर्जे ने पूछा.

"मैंने नहीं दागी."

"आवाज यहां से ही आयी थी."

"मेरे पास बंदूक जैसी कोई चीज नहीं है."

"तो किसने दागी? पुलिस से जो हरामीपन करेगा, पुलिस उससे हरामीपन करेगी. अगर आपने नहीं दागी तो फिर किसने दागी?"

"मैं यहां अपने घर के अंदर था. मुझे नहीं मालूम. शायद किसी ने पटाखे दागे हों."

"दीवाली है, जो कोई पटाखे दागेगा? आप क्या करते हैं?"

राजकिशोर के यह बताने पर कि वह तबला वादक हैं, एक दूसरा वर्दीधारी पुर्जा अश्लीलता से मुस्कराया, "तब तो यहां नाच होता होगा." एक तीसरे पुर्जे ने अंदर की कोठरी और गुसलखाना झांक डाला कि वहां लड़कियां तो नहीं हैं.

एक चौथे पुर्जे ने अपने जिस्म को आराम देने के लिए जूतों से कसा दायां पैर उठाकर तबले पर रख दिया. वह तबला राजकिशोर के किसी कोमल संवेदनशील अंग जैसा था. तबले पर मढ़ा चमड़ा फट गया.

पुलिस का दस्ता चला गया.

राजकिशोर का मन अभी पुलिस की क्रूरता से कराह ही रहा था कि वहां गली के आठ-दस लोग आ गये, शायद वही, जिन्होंने पटाखे दागे थे. उन्होंने राजकिशोर से जानना चाहा कि पुलिसवालों ने उनसे क्या-क्या पूछा और उन्होंने क्या-क्या बताया. फिर उनमें से एक ने कहा, "पुलिस ऊपर से सख्ती का दिखावा करती है, पर अंदर से है हमारे साथ. पुलिस वाले खुद चाहते हैं कि सिखों से प्रधानमंत्री की हत्या का बदला लिया जाये." उसके बाद राजकिशोर ने पाया कि अल्मारी में रखी उनकी घड़ी गायब है. वह घड़ी राजकिशोर को उनके एक संगीत प्रेमी भक्त ने दी थी. घड़ी से अधिक वह एक यादगार थी.

शाम गली में अंधेरे के पर्दे खोलने लगी. पहले धीरे-धीरे, फिर तेजी से. और फिर अलग हट गयी, लो मेरा काम खत्म. पर्दे वह रोज खोलती थी, मगर रोज उसपर ध्यान नहीं जाता था. आज जा रहा था कि पर्दे इतने स्याह और भारी भी हो सकते हैं.

गली में खबरों की खेप कोई फिर सरका गया था. खेप में था कि यहां के सिखों को पहले से मालूम था कि प्रधानमंत्री की जल्द हत्या होगी और दंगे भी. खालसा फैंसी क्लाथ हाउस ने दो महीने पहले ही अपनी दूकान का पांच लाख का बीमा करा दिया था, सिंह टेंट हाउस ने भी. लखनऊ में एक सिख पानी की टंकी के पास पकड़ा गया कि पानी में जहर मिला दे. पुलिस कप्तान ने पुलिसकर्मियों से कह दिया है कि सिखों को कोई सुरक्षा न दी जाये, वे देशद्रोही हैं.

गली के एक अलग-थलग हिस्से में मुसलमानों की एक छोटी-सी बस्ती थी. वहां तीन-चार मकान सिखों के भी थे. एक मकान में सरदार सतवंत सिंह अपनी अंधी बीवी के साथ रहता था. सतवंत सिंह बढ़ईगीरी करता था. वह कुछ इस बुद्धू किस्म का सीधा था कि ठीक से अपना हिसाब भी नहीं जोड़ पाता था. चालाक किस्म के लोग हिसाब के मामले में अक्सर उसे चोट दे जाते थे. वह हरेक पर विश्वास कर लेता था और हरेक की बात यों कहकर मान लेता था, "तुस्सी ठीक फरमांदे हो." जब कभी उसकी समझ में आ जाता था कि उसके साथ मजाक की गयी है, वह अपने छितरे हुए दांत चमकाता हुआ हंसने लगता था, मजाक करनेवाले की ओर सद्भावना से देखता हुआ कि आप काबिल आदमी हैं. वह अपनी जिंदगी से असंतुष्ट नहीं था.

अंधेरे के पर्दे की आड़ लेकर विनय शंकर सतवंत सिंह के दरवाजे के पास जाकर खड़ा हो गया. उसके तीन साथी दरवाजे के दूसरी ओर दीवार से चिपक गये.

विनय शंकर तेईस-चौबीस साल का नौजवान था. वह पढ़ाई में उतना तेज नहीं था, जितना दूसरों की नकल उतारने में. वह किशोर कुमार, अमिताभ बच्चन, नसीरुद्दीन शाह, राज बब्बर जैसे अभिनेताओं के डायलाग उन्हीं की आवाज और उन्हीं के अंदाज में बोल लेता था. वह उन अध्यापकों की दृष्टि में आवारा बन गया था, जिनकी वह नकल उतारता था. वह जब इंटरमीडिएट के आगे पढ़ न सका तो अपने घर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब फिर काल ने करवट बदली

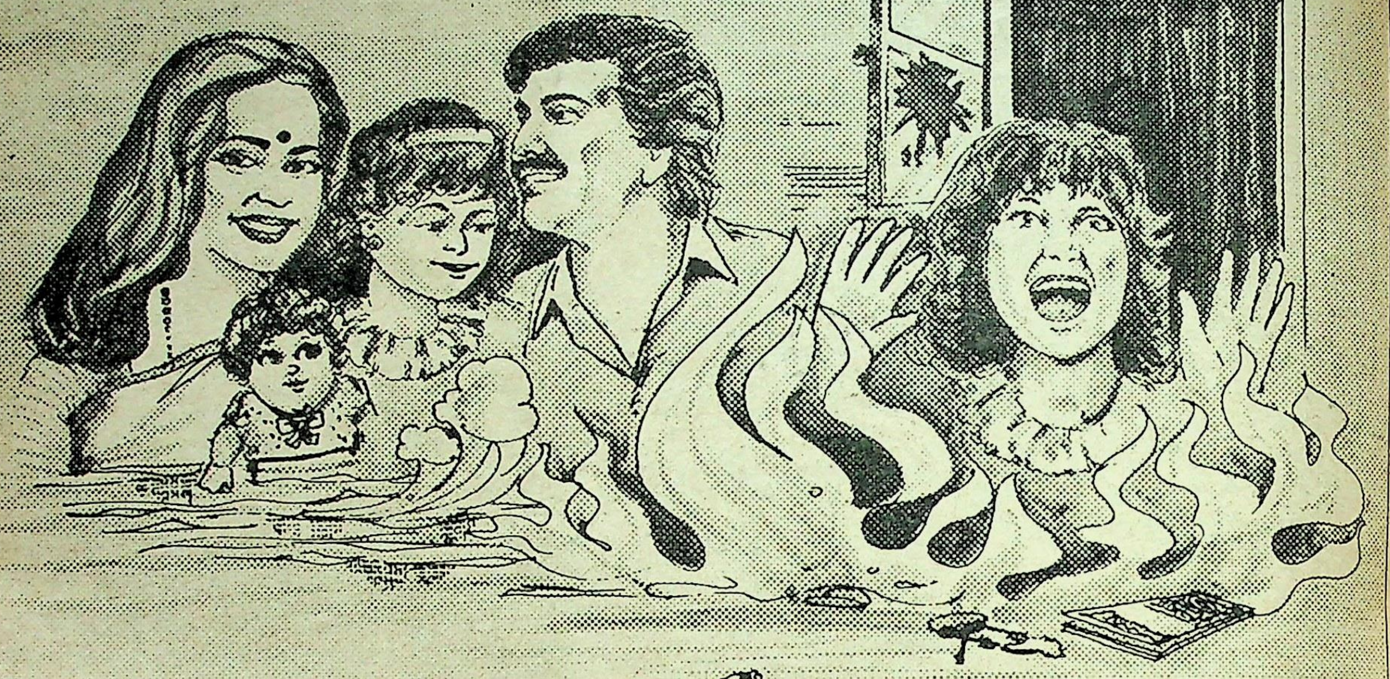

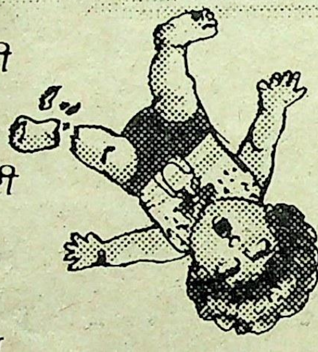

"एक था नर और एक थी नारी
दोनों की थी बिटिया प्यारी
छोटी सी उनकी दुनिया में
भरी थीं जग की खुशियां सारी
राजमहल सा उनका घर था
कोने कोने सुख का स्वर था
फल फूलों का बाग बगीचा
मोटर, झूला हर सुख सुविधा
ना थी कोई चिंता उनको
ना था उनको कल का डर
पर दबे पांव चोरी से छिपकर
होनी बन के आई बवंडर
टूटा झूला उजड़ी क्यारी
और बिखर गईं खुशियां सारी
लुट गई उनकी दौलत सारी
टूटी गुड़िया रोये बेचारी
काश पता होता जो कल का
कुछ करते होनी के छल का
कम हो जाती दुख की सीमा
पहले यदि करवाते बीमा"

साधारण बीमा उद्योग अपनी चार सहकम्पनियों के अंतर्गत आपकी संपति व व्यक्तिगत सुरक्षा सम्बंधी आपकी सभी बीमा ज़रूरतों को पूरा करता है। यही नहीं, आपकी विशेष ज़रूरतों के लिये विशेष बीमा योजना का भी इंतज़ाम किया जा सकता है। हमारी चार सह कम्पनियां अपनी 1600 शाखाओं सहित देशभर में सेवारत हैं।

- नैशनल इंश्योरेंस कम्पनी लि.
- दि न्यू इंडिया एश्युरेंस कम्पनी लि.
- दि ओरिएण्टल इंश्योरेंस कम्पनी लि.
- युनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कम्पनी लि.

**इस अनिश्चित दुनिया में
आपका एकमात्र निश्चित साथी**

Interpub/GIC/1/85 HIN

भारतीय साधारण बीमा निगम

जनरल इन्श्योरेंस कॉर्पोरेशन आफ़ इंडिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वालों की निगाह में भी आवारा बन गया और फिर कोई नौकरी न पा सकने पर खुद अपनी निगाह में भी.

उसके वे हमउम्र साथी भी उस जैसी स्थिति के शिकार थे.

अपनी योजना के तहत विनयशंकर को दरवाजे पर हल्के से थाप देकर सतवंतसिंह को पंजाबी भाषा में आवाज देना था और यह पूछे जाने पर कि बाहर कौन है, पंजाबी भाषा में ही कहना था कि वह गुरुद्वारे से ग्रंथी साहब का एक बहुत जरूरी संदेश लाया है. उसने वैसा ही किया और जब सतवंत सिंह ने दरवाजा खोलकर संदेश सुनने के लिए बाहर झांका, उसके एक साथी ने उछलकर मुंह पर कपड़ा रखते हुए उसे दबोच लिया और बाकी साथी उसे उठाते हुए-से गली में ले आये.

उनकी योजना का अगला चरण सतवंत सिंह को गधे पर बैठाकर गली में घुमाना तथा खुद उसके मुंह से ही सिख समुदाय और भिंडरवाले जैसे लोगों को गाली दिलवाना था. उस हंगामे का मजा लेकर फिर घंटे, दो घंटे बाद उसे वे छोड़ देते. इससे अधिक बदसलूकी करने का उनका कोई इरादा नहीं था. एक तो सतवंत सिंह ही इतना ज्यादा सीधा और बुद्ध था कि वह इससे अधिक घृणा अपने प्रति जगा नहीं सकता था, दूसरे वे लोग भी अभी उतने आवारा नहीं हुए थे कि उससे और आगे सोचते. अपनी प्रारंभिक सफलता से फूले हुए जब वे अपनी योजना के दूसरे चरण को पूरा करने के लिए सतवंत सिंह को धकियाते हुए गली के अपने सुरक्षित क्षेत्र में ला रहे थे, वहां फिल्म के किसी खलनायक जैसा शरीफ मोहम्मद नमूदार हो गया.

शरीफ मोहम्मद तीस साल की उम्र से लैस किसी कंटीले पेड़ के पत्तले, पर गंठीले तने जैसे जिस्म वाला नौजवान था. यों वह प्लास्टिक के जूते-चप्पलों का काम करता था, पर उसके लिए कहा जाता था कि वह अफीम की तस्करी भी करता है और यही उसका असली धंधा है. पास के एक शहर में उसके एक करीबी रिश्तेदार विधायक थे, जिसका उसे गुरूर था. उसने अपनी पहली बीवी को जहर देकर मार दिया था और दूसरी शादी कर ली थी. उसने कुछ महीने पहले मकान का टैक्स वसूल करने आये नगरपालिका के अमीन को पीटा था. बाजार में एक बनिये को यकीन न करने के लिए जुतिया दिया था.

शरीफ मोहम्मद ने एक मिनट तक खड़े-खड़े सतवंत सिंह को ताका और फिर झपटकर उसकी गर्दन पकड़ ली, "बोल मादर. . . .अब तक कहां छिपा था? अपनी औरत की. . ." उसने कसकर उसके मुंह पर एक तमाचा जड़ दिया.

"मुझकू झगड़े-फसाद ने कोनू मतलब नहीं. मैं आप लोकां का भाई हूं." सतवंत सिंह ने हाथ जोड़कर कांपते हुए कहा.

"भाई नहीं, तू हरामी दुश्मन है. तेरी कौम ने मुल्क के साथ गद्दारी की. मुल्क की रहनुमा को मरवा दिया. तू मादर. . . .आस्तीन का सांप. . . उसने इस बार सतवंत सिंह की कमर पर कसकर लात जमायी कि वह लड़खड़ाकर गिर पड़ा.

"मुझकू किसी अकाली से कोनू मतलब नहीं. मैं आप लोकां का भाई हूं." गिर पड़ने पर भी उसने अपने हाथ जुड़े रखे.

"शरीफ भाई, इसको अब जाने दीजिए." अपने हाथ से छिने शिकार की दुर्दशा देखकर विनय शंकर घबड़ा गया था.

"तो तू इसे पकड़कर लाया क्यों? अपनी मां की बारात करने?" शरीफ मोहम्मद ने अपनी छोटी आंखों से विनय शंकर को तरेरा, "मुतनी के, सांप रहम के लिए नहीं, मारे जाने के लिए होते हैं." यह कहते-कहते उसे एक पते की बात याद आ गयी, जिससे उसकी आंखें चमक उठीं और स्वर और भी तमक गया——प्रधानमंत्री को सतवंत सिंह ने मारा और यह हरामी भी सतवंत सिंह है? इस मादर. . . .को भी मार दो.

विनय शंकर के एक साथी ने गुम्मा उठाकर सतवंत सिंह के सिर पर पटक दिया. वह डर गया था कि निष्क्रिय खड़े रहने पर शरीफ मोहम्मद उसे भी गंदी गाली दे सकता है. इस बात ने भी उसे उत्प्रेरित किया था कि प्रधानमंत्री के हत्यारे का जो नाम है, वही इसका भी है.

सिर फट जाने से सतवंत सिंह तड़फड़ाने लगा था.

"अभी काम अधूरा ही हुआ है." शरीफ मोहम्मद ने एक दूसरा गुम्मा पूरी ताकत से सिर पर पटककर उस अधूरे काम को पूरा कर दिया.

बिरजू गुरू के पास जिस समय खबर पहुंची कि शरीफ मोहम्मद ने सतवंत सिंह बढ़ई को मार डाला. उसकी लाश गली में नाले के पास पड़ी है, वह मंदिर की कोठरी में अपने एक चेले के साथ मस्ती ले रहा था. खबर सुनकर उसके अंदर एक बेचैनी मरोड़ लेने लगी. शरीफ मोहम्मद ने यह हत्या कर अपना रुतबा बढ़ा लिया है. पिछले दो साल से उसका नाम आस-पास फैलता जा रहा है. जबसे उसने एक सरकारी मुलाजिम अमीन को पीटा और गद्दी पर से खींचकर गंज के बनिये को जूते से मारा, तबसे लोग उसे और भी अच्छी तरह से जानने लगे थे और उसे नाराज करने से बचते थे. वह उसका नाम लेकर उससे बराबरी से बात करता था, बल्कि इधर-उधर उसकी मखौल भी उड़ाता था कि बिरजू गुरू तो कर्मी-कमार गोश्त चखते हांगे, जबकि गोश्त उसकी रोज की खुराक है और दाल पीनेवाले आदमी को गुस्सा चढ़ता भी है तो पेशाब के रास्ते उतर जाता है. ऐसा कहने से उसका इशारा रामकली की ओर होता था, जिससे उसकी आशनाई थी. रामकली के कहने से उसने अपने दुश्मन चुन्ना से सुलह कर ली थी, जबकि पहले वह उसे जान से मार देने की कसम खा चुका था. अब यह शरीफ और भी फब्तियां कसेगा. उसे मलाल होने लगा कि सतवंत सिंह की हत्या उसके हाथों से नहीं हुई. सोहन सिंह की चक्की को फूंकने का अपना कारनामा उसे फीका लगने लगा. वह ससुरा भी कोई काम था? कुछ पहले उसने जो नशा किया था, वह उसकी बेचैनी को और भी भड़काने लगा.

"जग्गा!" वह अपने चेले से बोला, "एक मुसलटे ने एक सरदार को मार दिया और हम हिंदू कुछ न कर पाये. हिंदुओं के लिए यह डूब मरने की बात है."

"हां गुरू, डूब मरने की बात है. मुसलमान मीर हो गये." बिरजू को अपना छोटापन काटने लगा.

उसने बोतल में बची दारू उड़ेलकर पी डाली. उसमें यह चाहना भड़क उठी कि वह कोई बड़ा नामी काम करे.

उसने मंदिर की तहखानेनुमा जगह से बिना लायसेंसी दुनाली बंदूक निकाल ली और गली में आ गया.

उसके दिमाग में साफ नहीं था कि उसे क्या करना है. वहां बस यह था कि उसे कुछ करना है, कोई बड़ा नामी काम, कुछ ऐसा, जो शरीफ मोहम्मद के कारनामे से ऊपर हो. नशा इस चाहना को तेजी से उछाल रहा था, उसे और भी गड़मड़ बनाता हुआ. उसकी हालत उस बौराये भैंसे जैसी थी, जो बल से उबल रहा हो और किसी भी तरफ कुछ करने को दौड़ सकता हो. उसे बंदूक लिये गली में देखकर कई लोग इधर-उधर उत्सुकता से खड़े हो गये थे.

उसने चीखकर प्रधानमंत्री जिंदाबाद का नारा लगाया.

फिर खालिस्तान मुर्दाबाद का नारा लगाया और उसी के साथ तड़से बंदूक दाग दी. दुबारा फिर दाग दी.

सामने हरचरन सुनार के घर पर चीख हुई. उनका लड़का बारजे पर आ गया था और गोली उसके सीने पर लगी थी.

पांच मिनट के अंदर इक्कीस साल का वह लड़का एक लाश बन गया.

गली में रात उतर आयी थी. गली में कोई नहीं था सिवाय घुप अंधेरे के या सर्द सन्नाटे के या गूंगे डर के या फिर सरदार सोहन सिंह के कबरे और वकील साहब के शेरू उन दो कुत्तों के, जो इधर-उधर दौड़कर मुंह ऊपर उठाते हुए भौंकने लगे थे या फिर रोने या ख्खख्—बा ऽ ऽ ऽ ख्खख—या खख्ख्—बा खख्स्—यह क्या कियायय्—यह क्या कियाय्य—तब अंधेरा, सन्नाटा, डर, वे सब भी इसी के साथ रोने लगते थे——यह क्या कियाय्य——यह क्या कियाय्य. . . .

□

● 136/2 बक्सरियां, शाहजहांपुर-242001 (उ. प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Interpub/GIC/1/85 HIN

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुश्ती

मुद्राराक्षस

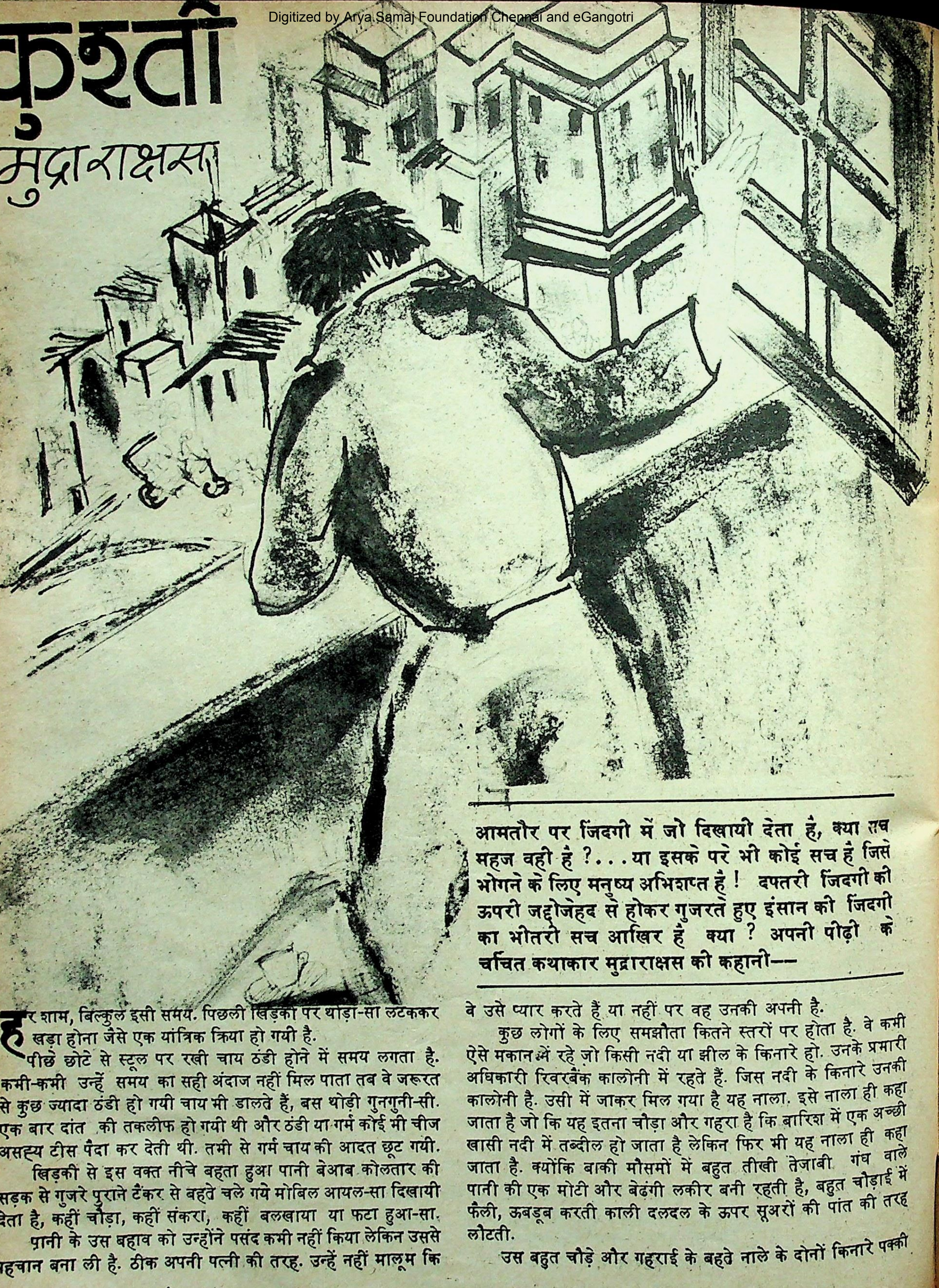

आमतौर पर जिंदगी में जो दिखायी देता है, क्या सच महज वही है?...या इसके परे भी कोई सच है जिसे भोगने के लिए मनुष्य अभिशप्त है! दफ्तरी जिंदगी की ऊपरी जद्दोजेहद से होकर गुजरते हुए इंसान की जिंदगी का भीतरी सच आखिर है क्या? अपनी पीढ़ी के चर्चित कथाकार मुद्राराक्षस की कहानी——

हर शाम, बिल्कुल इसी समय, पिछली खिड़की पर थोड़ा-सा लटककर खड़ा होना जैसे एक यांत्रिक क्रिया हो गयी है.

पीछे छोटे से स्टूल पर रखी चाय ठंडी होने में समय लगता है. कभी-कभी उन्हें समय का सही अंदाज नहीं मिल पाता तब वे जरूरत से कुछ ज्यादा ठंडी हो गयी चाय भी डालते हैं, बस थोड़ी गुनगुनी-सी. एक बार दांत की तकलीफ हो गयी थी और ठंडी या गर्म कोई भी चीज असह्य टीस पैदा कर देती थी. तभी से गर्म चाय की आदत छूट गयी.

खिड़की से इस वक्त नीचे बहता हुआ पानी बेआब कोलतार की सड़क से गुजरे पुराने टैंकर से बहते चले गये मोबिल आयल-सा दिखायी देता है, कहीं चौड़ा, कहीं संकरा, कहीं बलखाया या फटा हुआ-सा.

पानी के उस बहाव को उन्होंने पसंद कभी नहीं किया लेकिन उससे पहचान बना ली है. ठीक अपनी पत्नी की तरह. उन्हें नहीं मालूम कि वे उसे प्यार करते हैं या नहीं पर वह उनकी अपनी है.

कुछ लोगों के लिए समझौता कितने स्तरों पर होता है. वे कभी ऐसे मकान में रहे जो किसी नदी या झील के किनारे हो. उनके प्रभारी अधिकारी रिवरबैंक कालोनी में रहते हैं. जिस नदी के किनारे उनकी कालोनी है. उसी में जाकर मिल गया है यह नाला. इसे नाला ही कहा जाता है जो कि यह इतना चौड़ा और गहरा है कि बारिश में एक अच्छी खासी नदी में तब्दील हो जाता है लेकिन फिर भी यह नाला ही कहा जाता है. क्योंकि बाकी मौसमों में बहुत तीखी तेजाबी गंध वाले पानी की एक मोटी और बेढंगी लकीर बनी रहती है, बहुत चौड़ाई में फैली, ऊबडूब करती काली दलदल के ऊपर सूअरों की पांत की तरह लौटती.

उस बहुत चौड़े और गहराई के बहते नाले के दोनों किनारे पक्की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईंटों से सधे हैं और कहीं उन्हीं पर पीठ टिकाक और कहीं थोड़ा हटकर दोनों तरफ मकान हैं. दूर तक, टिन, खपरैल, पक्की छतें और यहां तक कि पालिथिन की फटी चादरें ओढ़े.

हर मकान में पीछे एक सपाट खिड़की या झरोखा है और नीचे की तरफ गंदगी नाले में गिराने वाला, सूराख, काई और सड़क की कालिख उगलता हुआ. हर घर जैसे वहां बैठा हुआ देर से अपना पेट साफ कर रहा हो. नाला दूर तक ज्यों का त्यों चला गया है और आगे आसमान को फाड़कर उसमें समा गया है. बारिश के बादल यहीं उठने हैं और वहीं ठहरे हुए अच्छे लगते हैं. बढ़कर मकानों पर,छा जाते हैं तो सिहरन-सी होती है कच्चे से अंधेरे की. और सीलन की. बादल जब शाम को कभी रंगीन होते हैं तो नाले के उस पानी के फैले हुए चीथड़े पर भी झलकते हैं. तब वह तेजाबी गंध भूल जाती है.

यह सब उतना बुरा तो नहीं है और उनका अनुमान है कि रिवर-बैंक कालोनी के दयाल साहब के घर से दिखाई देने वाली नदी इससे कुछ बहुत थोड़ा अच्छी नहीं दिखती होगी. थोड़ा पानी ज्यादा और कुछ चौड़ाई अधिक. लेकिन बादलों वाली शाम का रंग वहां इससे बहुत ज्यादा चटकीला क्या होगा !

हां छत पर चढ़ जाने के बाद यह दृश्य थोड़ा बदल जाता है. आसमान तो वैसा ही रहता है. आस-पास दूर तक चली गयी, कबाड़ लदी छतें भी वैसी ही रहती हैं. पर नीचे का नाला एक अजब दहशत-सी पैदा करता है. कभी उन्होंने सिंदबाद की यात्राएं पढ़ी थीं. उस किताब में सिंदबाद एक बार मौत की घाटी के किनारे जा पहुंचता है. वह कैसी थी यह याद नहीं. लेकिन छत से नाला काफी ठंडा लगता है मृत्यु की तरह, हजारों बरस के नरक की तरह सड़ता हुआ.

लेकिन रिवरबैंक कालोनी की नदी कौन-सी कम भयावह लगती है. पुल पर खड़े हो तो आंतों को खींचना शुरू कर देती है.

पीछेवाली जिस खिड़की से वे झांक रहे थे, उस पर लटका भूरा-सा कपड़ा उन्होंने बाकायदा खींच दिया. वह खींच देने पर घरबदल जाता है. पूरा मकान नाले के किनारे से खिसककर शहर के बीच आ बैठता है,

उन्होंने कमरे में निगाह दौड़ायी. कुर्सियां वगैरह थोड़ी पीछे हटानी होंगी. पीछे तो खैर नहीं हट पाएंगी. जगह नहीं है. पर बीच से कढ़े हुए केसमेंट से ढकी मेज वगैरह एक किनारे करनी होगी. इतने भर से जगह निकल आएगी. थोड़ी-सी वर्जिश के लिए वह काफी होगी. ज्यादा कसरत की जरूरत तो नहीं ही होगी. शरीर में अभी मजबूती बनी हुई है. पेशियों में कसाव है. फुर्ती भी है. कुश्ती के दांव-पेंच वे भूले नहीं है. लेकिन दांव-पेंच से ज्यादा जरूरी है, सहनशक्ति और मनोबल. वह दोनों हैं. फेफड़े में सांस भरने की क्षमता बढ़ानी होगी. इतना पर्याप्त है.

दयाल को कुश्ती में हराना मुश्किल काम नहीं है. उनके बाल सफेद ही ज्यादा हैं. गौर करने पर विश्वास हो सकता है कि पहली मंजिल की सीढ़ियां चढ़ने के बाद वे हांफते हैं. सांस फूलने लगती है, भले ही उतनी ज्यादा नहीं. उनका कमरा अगर दूसरी या तीसरी मंजिल पर होता तो सांस खासी ही फूलती. कुश्ती में अगर उन्हें सिर्फ थोड़ी देर रोका भर जा सके तो वे बेदम हो जायेंगे. इतनी सांस फूल जायेगी कि उन्हें गिराया जा सके.

लेकिन क्या यह सब सच है ? कुश्ती होगी ? टाइपिस्ट क्लर्क सतीश बहादुर और आफिस इंचार्ज दयाल के बीच क्या इस तरह की कुश्ती दफ्तर में ही सारे कर्मचारियों के सामने सचमुच मुमकिन है ?

उस दिन निदेशक महोदय दफ्तर का मुआइना कर रहे थे. हर कमरे का, हर कर्मचारी का. वे तीसरी मंजिल भी आये. उनके साथ उपनिदेशक और प्रभारी अधिकारी भी थे.

सतीश बहादुर ने खड़े होकर उन्हें ध्यान से देखा था. निदेशक के साथ आये दयाल कुछ अजीब लग रहे थे. उनकी शक्ति बढ़ गयी थी. और बदन छोटा हो गया था. निदेशक के साथ वे ऐसे लग रहे थे जैसे वे अपने बड़े अफसर के साथ नहीं किसी हंटर के साथ आये हों लेकिन वह हंटर कुछ इतना वजनी और बड़ा हो कि उसे लटकाना नहीं ढोना पड़ रहा हो.

उसी जगह शतीश बहादुर बोल पड़े "सर ये टाइपराइटर. . ." "टाइपराइटर ? क्या टाइपराइटर ?" दयाल ने तुरंत थोड़े तीखेपन में हंटर इधर घुमाया. निदेशक सिर्फ मुस्कराए, हल्की-सी सवालिया निगाह के साथ.

"इसमें सर 'ज' अक्षर टूट गया है और बड़े 'आ' की मात्रा गलत जगह लगती है. स्पेस . . ."

"मैं इसमें क्या कर सकता हूं ? मैं पेचकस लेकर बैठूंगा क्या ?"

"इसे ठीक तो होना चाहिए. क्यों नहीं हुआ ?" निदेशक ने बहुत मुलायमियत से, ऐसे किसी को चोट न लगे पर धक्का महसूस हो, कहा.

"लिखकर देना चाहिए था सर. मैं जानता हूं काम न करना हो तो टूटा टाइपराइटर लिए बैठे रहो."

"नहीं सर मैंने तो लिखकर दिया था ?"

"इन्होंने तो लिखकर दिया था" निदेशक थोड़ा-सा मजा लेते से बोले, "अब बताइए ?"

"बिल्कुल झूठ है. मेरी मेज पर कोई कागज नहीं भटकता." दयाल ने प्रतिवाद किया और सतीश बहादुर को घूरने लगे.

"दयाल साहब की मेज पर कोई कागज नहीं भटकता. . ." निदेशक मुस्कुराए, "ड्राअर में ?"

लोग बहुत शिष्टता से मुस्कुराए. सतीश बहादुर ने फिर कहा, "सर मैंने उसके बाद दो बार और लिख कर दिया. एक रिपोर्ट तो कल ही दी है सर."

"वो भी इनकी मेज पर नहीं होगी. फिर कहां गयी दयाल साहब?" निदेशक इस संवाद में खेल का-सा आनंद लेते लगे.

दयाल की कनपटियों पर परेशानी रेंगने लगी, "झूठ मत बोलो. मुझे झूठ से सख्त नफरत है."

जाहिर है झूठ से नफरत होना नैतिक पवित्रता की निशानी है. . . निदेशक इस बार अच्छी अंगरेजी में पुरानी ही संजीदगी से बोले.

. सतीश बहादुर कुछ ज्यादा ही घबरा गये. उन्हें लगा अगर वे अपनी बात साबित न कर पाये तो यहीं, अभी कोई भयंकर विपत्ति खड़ी हो जायेगी. वे और विनय लेकिन दृढ़ता से बोले, "मैंने कल टाइपराइटर के बारे में रिपोर्ट दी, उसे आपने पढ़ा भी था. आपको याद होगा साहब और फिर आपने साब उसी पर रखकर मूंगफली खायी थी. दो मूंगफलियां नीचे लुढ़क. . . "

"ये क्या बकवास है. . ." दयाल ने हलके से डांटा. निदेशक उसी तरह मुस्कुराते हुए बोले, "लेकिन उस पर मूंगफली क्यों खायीं आपने ? बादाम, काजू भी खा सकते थे, या फलों की चाट भी तो नीचे मिलती है. इनसे दिमाग को ताकत मिलती है. फलों में विटामिन ज्यादा होते हैं. आप फल नहीं खाते हैं ? या हरी सब्जी ?"

"जी खाता हूं सर मगर मैं इसे बहुत अच्छी तरह जानता हूं. यह काम ही नहीं करना चाहता. . . "

"हूं. ये तो मुश्किल मसला है. सतीश बहादुर साहब काम नहीं करना चाहते और दयाल साहब की मेज पर कोई कागज नहीं रहता." निदेशक सोचने का नाट्य-सा करते हुए बोले, "यह तो मुश्किल है. फैसला हो कैसे ? क्यों साहब ?"

निदेशक ने अपने कौतुक की मुट्ठी कमरे में अदब और मुस्कुराहट के स्टूलों पर खड़े बाकी लोगों की तरफ कर दी. वे सिर्फ मुस्कुराते रहे. बोले कुछ नहीं.

"एक रास्ता है मिस्टर दयाल, आप कभी कुश्ती लड़ते थे लड़ते थे न ?"

"जी हां साहब."

दयाल का यह सबसे प्रिय विषय था. कुश्ती में कब क्या दांव लगाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए इसका ब्योरा देते हुए वे अक्सर अपनी जांघ पर हाथ मारकर अपने अतीत की प्रभावशाली की तस्वीर खींचते थे. कभी-कभी किसी को आज भी ललकार देते थे. बड़ा गुमान है जवानी का ? आओ दो-दो हाथ हो जायें—

निदेशक और अधिक मुस्कराये, "आप मिस्टर सतीश बहादुर को उठाकर खिड़की से बाहर फेंक दीजिए."

"मन तो करता है साहब. . ."

"मगर सतीश साहब भी कसरती लगते हैं. उठा पाएंगे ?"

"बिरजू उस्ताद से कुश्ती सीखी थी मैंने. मुझसे पकड़ करने में बड़े-बड़ों के छक्के छूट जाते थे सर!"

"तो हो जाये."

"जी ?"

"हो जाये कुश्ती !"

"सर यह अद्भुत होगा. . ." कमरे के बाकी लोगों ने खुशी और उत्साह से कहा. दयाल साहब सकपका गया और उन्होंने थोड़ी सख्ती भरी निगाहें कमरे में के लोगों पर डालीं. लेकिन लोगों की कौतुक लिप्सा में कोई फर्क नहीं आया.

"तो हो जाये, फिर, अभी हो ?"

दबे हुए क्षोभ की प्रतिक्रिया में दयाल ही कहते-कहते रुक गये कि फिर बोले, "क्यों साहब उन्हें पटखनी दिलवाना चाहते हैं छोड़िए. . ."

ये तो पीछे हटना हुआ दयाल साहब. निदेशक खासा मजा लेने लगे. वह प्रसंग इतना रोचक था कि एक बार शुरू हुआ तो आगे बढ़ता ही गया. दयाल की आंखों में क्षोभ के बजाय असहायता झांकने लगी. क्षीण-सी ही सही, उन्हें उम्मीद थी कि यह प्रसंग मजाक ही में समाप्त हो जायगा या कमरे में उपस्थित कोई उनके बचाव लिए इस खेल को स्थगित कराने की कोशिश करेगा.

लेकिन कमरे के सभी लोग अनायास इस मामले में प्रभारी अधिकारी के विरुद्ध हो गये थे. वे इसका मजा लेने पर आमादा हो गये थे. संभव है कि इस कुश्ती में दयाल जीतें लेकिन उनसे लड़ने का जो मौका टाइपिस्ट सतीश बहादुर को मिलने वाला था उतने से लगभग सब का बदला चुकने जा रहा था. देखते ही देखते वहां उपस्थित सभी लोगों को दयाल से मिले कष्ट याद आ गये थे.

दयाल बोले, "देखिए सर, मैं इनसे लड़ तो सकता हूं, मैं इनको अच्छी तरह पटकूंगा लेकिन जरा महीने भर का रियाज कर लेने दीजिए बरसों से तो यहां फाइलें निबटा रहा हूं."

"महीने भर का रियाज-वाजिब है. तो रही दयाल साहब. आज तारीख है सात. अगले महीने की छह तारीख पक्की रही. तय?" निदेशक ने बाकी लोगों की तरफ देखा. लोग बहुत खुश थे.

दयाल ने उन्हें फिर घूरा. इस बार उनकी आंखों में दहशत भरा चिड़चिड़ापन उभर आया था. अगर उर्दू कवियों के अनुसार आंखें सचमुच छुरी या तीर का काम कर सकती होतीं तो दयाल दफ्तर के बहुत से लोगों का अब तक बुरी तरह जख्मी कर चुके होते.

इस घटना के बाद शुरू के दो तीन रोज लोगों ने सिर्फ उस दिन के संवादों के मजे लिए. दयाल की घबराहट किसी से छुपी नहीं रही थी. उसे याद करके भी कई रोज लोग खुश होते रहे और फिर सब कुछ भूल गये. दफ्तर में दयाल का रोबदाब फिर पहले जैसा ही दिखाई देने लगा. ठीक पहले जैसी ही खामियां उन्हें मातहतों के काम में मिलने लगीं. कभी-कभी तो कोई मातहत सिर्फ इसलिए भी डांट खाने लगा कि वह वाक्य में अर्धविराम लगाना भूल गया था. दयाल को मातहत के काम में जब कोई बड़ी गलती नहीं मिलती थी और डांटने के लिए उन्हें अर्धविराम जैसी दुरूह चीज का सहारा लेना पड़ता था तो उनका गुस्सा खासा बढ़ जाता था. तब वे सबसे पहले आज की शिक्षा की आलोचना करते थे. उसके बाद समूची नयी पीढ़ी कितनी कुंदजेहन और कामचोर है. इस पर धाराप्रवाह बोलते थे. इसके बाद देर तक वे सिर्फ डांटते रहते थे. इतनी देर तक कर्मचारी को चुपचाप खड़ा रहना होता था. ऐसी हालत में यह भी मुमकिन होता था कि वे चीख कर कहें, अब मेरे खोपड़े पर क्यों खड़े हैं ?

जाहिर है कर्मचारी यह सुनकर वहां से खिसकने की कोशिश करता था. तब वे पहले से भी ज्यादा जोर से चीखते थे, "अब जा कहां रहा है ऐं ?"

लोग चूंकि इस सबके आदी हो चुके थे इसलिए धीरे-धीरे उन्हें यह कार्यालय फिर सामान्य लगने लगा.

इसी बीच सहसा कुश्ती वाली बात फिर ताजी हो गयी. हुआ यूं कि निदेशक जो बहुत कम ही लोगों को दिखायी देते थे, एक बार फिर दिख गये. दरअसल इधर दफ्तर में दो ऐसी घटनाएं हो गयीं जिनके कारण वे दिखे. एक तो नया साल आ गया था और दूसरे दफ्तर का एक प्रोजेक्ट बहुत ज्यादा कामयाब हो गया था. इन दोनों बातों के लिए निदेशक ने दफ्तर के सारे कर्मचारियों को अपने बड़े से कमरे में बुलाया था. शुभकामनाएं देने के बाद उन्होंने दफ्तर की छोटी-मोटी कई बातें भी कीं फिर नजर सतीश बहादुर पर टिक गयी. शरारत भरी मुस्कुराहट होंठों के अंदर दबाकर बहुत गंभीर आवाज में उन्होंने पूछा, "सतीश बहादुरजी आपके टाइपराइटर में बड़े 'आ' की मात्रा अभी भी गलत जगह लगती है ?"

"जी सर, वो बात यह है कि मेकेनिक ठीक तो कर गया था मगर अब उसका रिबन ही नहीं सरकता !" सतीश बहादुर ने बड़ी मासूमियत से कहा.

"हूं. दयाल साहब. . . . ?" उन्होंने दयाल साहब की तरफ देखा. दयाल उस पल होंठ चबाने लगे थे सहसा निदेशक बोले, "कितनी गलत बात है. मैं भी भुलक्कड़ हो गया हूं. अरे भई उस कुश्ती की तैयारी आप लोग कर रहे हैं न ?. कब होनी है कुश्ती ?"

"सर छह तारीख को. . ." कर्मचारियों के चेहरों पर अचानक ही रौनक आ गयी.

दयाल ने नाराज होते हुए कहा, "सर इस आदमी को मैं अभी बता देता अगर आपके सामने यह असभ्यता न कही जाती.

नहीं भाई. निदेशक बोले, "कुश्ती तो ढंग से ही होगी. और छह तारीख को ही."

उन्होंने केयरटेकर को मनोरंजनवाले कमरे में गद्दों का इंतजाम करने का हुक्म दिया और दो मध्यस्थ नियुक्त भी कर दिये. सीटी लाने का काम भी सौंप दिया गया. यहां तक कि दो कर्मचारी आंखों देखा हाल बताने के लिए भी नियुक्त हो गये. टेपरेकार्डर और कैमरा लाने का काम स्टोर कीपर के जिम्मे कर दिया गया.

इसके बाद दयाल को लगा मामला सचमुच बहुत गंभीर है. वे खुद सतीश बहादुर का टाइपराइटर देखने उसके कमरे में आये. उसे घूरकर गुर्राती हुई आवाज में घूरकर बोले, "रिबन तो मुझे तुम लोगों के दिमाग को ठीक करना पड़ेगा. और तुम-तुम इस होश में मत रहना कि कुश्ती का तमाशा करके मामला खत्म हो जायेगा. बहुत बर्दाश्त कर लिया है मैंने. कामचोरी नस-नस में भरी है, कुश्ती लड़ेंगे. ऐसा पटकूंगा कि हड्डियां बटोरे नहीं मिलेंगी. ये मत समझ लेना कि मेरी उम्र ज्यादा है इसलिए जीत जाओगे."

वे देर तक इसी तरह बोलते रहे. दरअसल इस तरह वहां आकर डांट-डपट करने का एक खास उद्देश्य था, वे उसके शरीर का जायजा लेना चाहते थे. सतीश बहादुर की उम्र तो अभी कम थी ही, स्वास्थ्य भी ठीक ही था. बल्कि बदन में एक तरह की कसावट और मजबूती थी क्योंकि वे कालेज में खेल कूद में काफी रुचि लेते थे. यहां तक कि उनका खयाल था कि अगर उनके साथ नाइंसाफी न की जाती और पढ़ाई के दौरान ही शादी न हो जाती तो वे एक अच्छे पेशेवर खिलाड़ी साबित होते.

दयाल उन्हें डांटकर या उनकी शारीरिक शक्ति का जायजा लेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चले गये. उनके जाने के बाद सतीश बहादुर काफी निराश होकर बैठ गए. उन्हें इस बात का गहरा दुख हो रहा था कि बहुत मुश्किल से मिली इस नौकरी का सारा संतोष उनके उस टाइपराइटर की बलि चढ़ गया था जो उनके सामने आने के बाद से आज तक कभी ठीक नहीं हुआ था. वह टाइपराइटर न सिर्फ बिगड़ा रहता था बल्कि बदसूरत भी काफी था. दूर से देखने पर वह टाइपराइटर कम एक अनगढ़ हथकरघा ज्यादा लगता था. इस मशीन पर काम करने में उनकी अरुचि के और दूसरे कारण भी थे.

पढ़ाई के दौरान जैसा कि हर युवा के साथ होता है, वे खासे सुहाने सपने देखने की आदी हो गये थे. पढ़ाई खत्म करके वे कभी अपने को एक अफसर पाते थे कभी बहुत बड़ा प्रोफेसर. लेकिन पढ़ाई खत्म करने के बाद इस टाइपराइटर के पास बैठ पाने की सुविधा उन्हें बहुत ज्यादा परेशानियां उठाने के बाद मिली थी. तब तक उनके बच्चे भी हो गये थे. सबसे बड़ी परेशानी तो उन्हें उस दिन हुई थी जिस दिन वे तबादले पर इस शहर भेजे गये थे. दो महीने तक तो रहने लायक उन्हें कोई जगह ही नहीं मिली थी और तब जाकर कहीं उन्हें नाले के किनारे बने इस मकान की ऊपरी मंजिल पर दो छोटे-छोटे कमरे मिले थे. शुरू के कुछ दिन इस शहर के घर में बहुत ही भयानक थे. उस नाले से रात दिन एक तीखी तेजाबी गंध उठती थी. सुबह के बाद इसमें एक और दुर्गंध भी मिल जाती थी. पर धीरे-धीरे वे इसके आदी हो गये. खासतौर से इसलिए कि जब कभी इस तेजाबी दुर्गंध को हटाकर ताजी हवा का झोंका उधर से गुजरता था तो बहुत ज्यादा ही सुहाना लगता था. जैसे कोई आदमी बहुत कड़वी चीज खाता रहे और फिर उसे कच्चा आटा भी खिला दिया जाये तो बहुत मीठा लगे. उन्होंने अपनी अभिरुचि के इस तरह परिवर्तित हो जाने का एक अच्छा सा तर्क भी खोज लिया था. वे अक्सर चाय पीते वक्त बीवी से कहा करते थे कि अगर दुर्गंध का अस्तित्व न हो तो सुगंध का अर्थ ही क्या रह जाये. उस नाले में उजबुजाती हुई कीचड़ हमेशा भरी होती थी. सतीश बहादुर याद दिलाते रहते थे कि कमल भी तो कीचड़ में रहता है जो कि यह महज एक कहावत थी और झूठ थी. कमल बहुत अच्छे पानी में खिलता है और कीचड़ में सिर्फ उसकी जड़ रहती है. और वह कीचड़ भी इस नाले जैसी गंदी नहीं होती सच तो यह है कि सतीश बहादुर ने कमल देखा ही नहीं था.

तो जनाब, दयाल के जाने के बाद न चाहते हुए भी वे हमेशा की तरह गमगीन हो गए. तब उनके सामने बैठने वाले फाइलिंग क्लर्क ने अपना मुंह खोला. ठीक ऐसे वैसे दयाल के कमरे में आने और वहां से जाने के साथ उस मुंह के बाद होने और खुलने का कोई स्वचालित संबंध हो. उसने कहा, "कुत्ता साला. मगर सतीश तुम्हें इससे डरने की कोई जरूरत नहीं है. साले के बदन में दम नहीं है. बुढ़ा तो हो रहा है. उठा कर पटकना जरा जोर से."

इस बात पर डिस्पैच क्लर्क का मुंह भी खुल गया, "है तो सही बात बहुत डींग मारता रहता था, अब पता चलेगा. मगर सतीश तुम जरा सावधान रहना. आदमी बहुत कमीना है. तुम्हारी रिपोर्ट भी खराब कर सकता है. साल खत्म हो गया है न. . ."

"रिपोर्ट?" फाइलिंग क्लर्क ने तुरंत अपना मुंह बंद कर लिया क्यों कि सालाना रिपोर्ट तो उसकी भी लिखी जानी थी.

"कर दे रिपोर्ट खराब परवाह नहीं है." सतीश नाराज होकर बोले, "उठाकर पटका नहीं तो मेरा नाम नहीं."

"मगर अभी तो तुम्हारा प्रोबेशन है. ध्यान रखना." डिस्पैच क्लर्क सहानुभूति दिखाता हुआ बोला, "न हो तो तुम निदेशक साहब से बात कर लो. वो चाहेंगे तो दयाल क्या, दयाल का बाप भी कुछ नहीं कर पायेगा."

सतीश बहादुर संभावनाओं पर गौर करते हुए बैठे रहे, देर तक. धीरे धीरे उन्होंने पाया कि हर कीमत पर इस कुश्ती के लिए तैयार हैं. जो भी हो, कुश्ती वे लड़ेंगे और दयाल को पछाड़ेंगे.

• मुद्राराक्षस

उन्होंने कमरे के बीच की मेज हटा दी और बाकायदा वर्जिश शुरू कर दी. पिछली खिड़की से आती दुर्गंध वे भूल गये और तब तक कसरत करते रहे जब तक पसीने से नहा नहीं गये.

आखिर छह तारीख आ गयी. उस दिन वे थोड़ा जल्दी ही दफ्तर पहुंच गये. उन्हें यह देखकर बहुत खुशी हुई कि वहां करीब-करीब हर कोई उस अभूतपूर्व घटना की प्रतीक्षा कर रहा था. आसपास की मेजों के लोग उनके करीब आ खड़े हुए. वे आज उनकी खासी खातिरदारी भी कर रहे थे तभी दयाल वहां आ गये. ताज्जुब है कि इस बार उनमें से कोई भी सकपकाया नहीं.

"क्या हो रहा है यहां?" दयाल हमेशा जैसे रोब से बोले.

"कुछ नहीं सर, आज कुश्ती है न. . . .!"

"बहुत नौटंकी मत करो. कुश्ती है तो इसका मतलब यह नहीं कि काम ही नहीं होगा. तुम लोगों को हरामखोरी के लिए तो कोई न कोई बहाना चाहिए. याद रखो मैं एक एक को ठीक कर दूंगा." वे नाराजी से लोगों को घूरते हुए बोले, "और ये भी याद रखना सालाना रिपोर्ट लिखने का भी वक्त आ गया है. मैं एक-एक को होशियार कर देना चाहता हूं समझे."

वे चले गये. सतीश बहादुर को लगा वह रिपोर्ट वाली बात उन्हीं से कही गयी है.

दोपहर को सचमुच कुश्ती शुरू हो गयी. निदेशक एक कुर्सी रखकर बैठ गये थे सतीश बहादुर ने फैसलाकर लिय था कि जो भी हो दयाल को पटखनी अच्छी तरह देंगे.

दयाल बहुत गंभीर थे.

आखिर सीटी बजी. हाथ बढ़ाने के बजाय दयाल ने सतीश को घूरा. निदेशक ने ही याद दिलाया कि उन्हें हाथ मिलाना है. हाथ मिलाने के बाद दयाल ने मौका नहीं दिया. किसी पेशेवर पहलवान की तरह लिपट पड़े, लोग शोर मचाकर सतीश को बढ़ावा देने लगे. इससे दयाल का गुस्सा और बढ़ गया. सतीश बहादुर थोड़ा चूक जाता तो नीचे आ चुका होता पर वह जल्दी ही संभल गया. लोगों का शोर उसने सुना और झुककर उसने दयाल को कमर से उठा लिया. दयाल अचकचा गये उन्होंने छटपटा कर उनकी पीठ पर एक घूंसा मारा. निदेशक ने सीटी बजायी, "घूसा नहीं चलेगा."

दयाल को उठा लेने पर शोर और बढ़ाया और लोग उनके नीचे गिराये जाने का इंतजार करने लगे. तभी लोगों ने देखा सतीश बहादुर के घुटने मुड़े. वे दयाल को उसी तरह उठाए हुए बैठ भी गये और देखते ही देखते लोट गये. दयाल ने उत्साह में आकर उन्हें रगड़ भी दिया. लोग गुस्से में सतीश बहादुर को चे गालियां देने लगे.

दयाल बेहद खुश हो गए थे.

सतीश बहादुर से उठकर भीड़ में गुम हो गये. आज जब वे लौटे तो एक संतोष उन्हें जरूर था, उन्होंने अपनी सालाना रिपोर्ट खराब होने से बचा ली थी. बीवी की चाय का इंतजार करते उन्होंने आज फिर पिछली खिड़की खोल ली. थोड़ी देर वे नीचे झांकते रहे फिर परदा बंद कर दिया. नाला कितना ज्यादा गंदा है उन्होंने सोचा, और बदबू भी किस कदर असह्य !

□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दमरी की खोज में

विवेकी राय

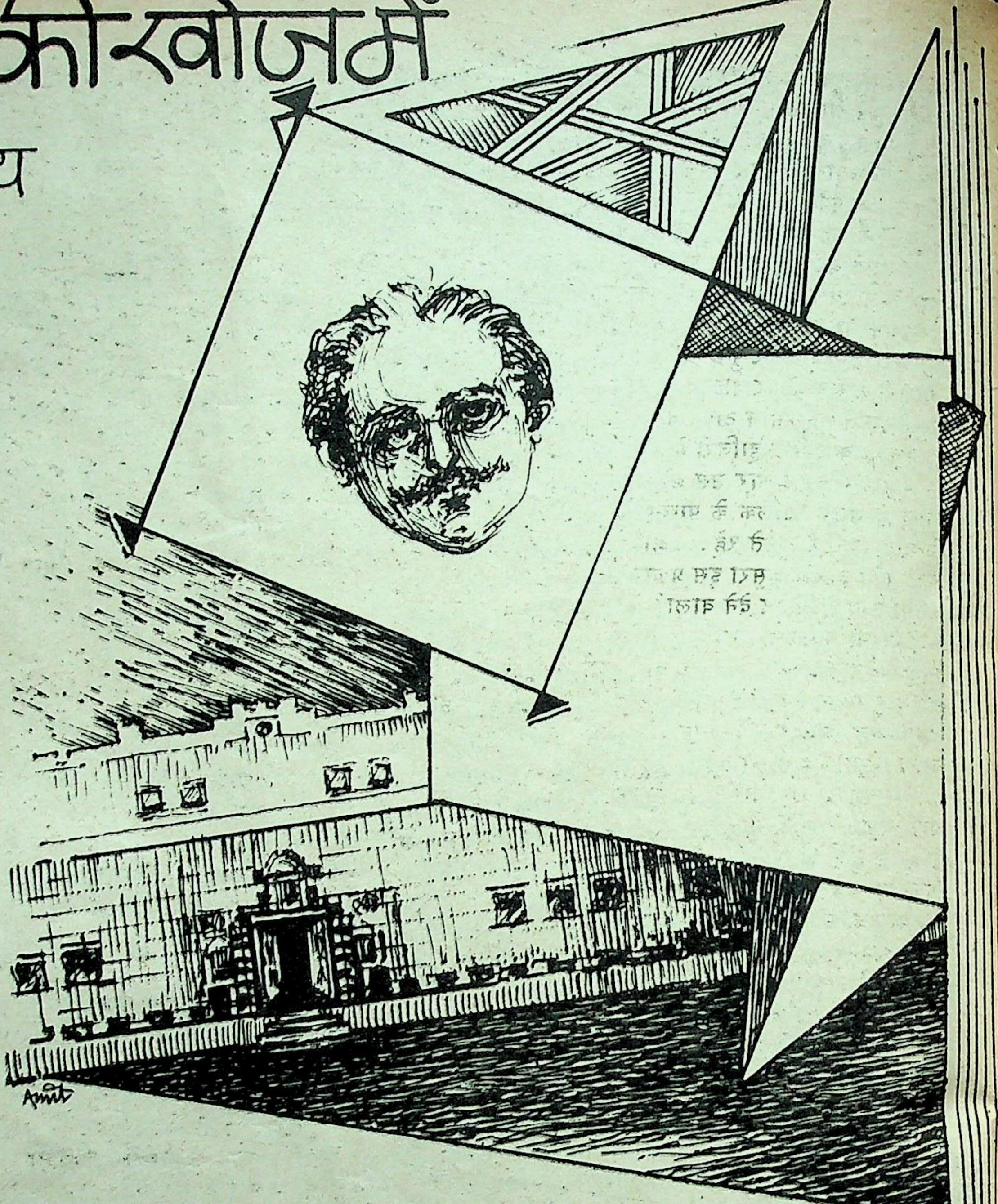

अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है, क्यों न इसे सबका मन चाहे—कहने वाले कवि की कल्पना में भारत का कौन-सा गांव था, जहां रहने के लिए सबका मन करे, हम नहीं जानते, पर आज के भारत का गांव कैसा है, वहां कौन रहना चाहता है, कौन नहीं और क्यों? आदि प्रश्नों का उत्तर खोजती ग्राम्य जीवन के चितेरे विवेकीराय की अन्यतम रचना—

अब मैं उन कारणों की छानबीन में उलझा हुआ हूं कि चिलचिलाती दोपहरी में, जबकि धूप की चमक से आंखें चौंधिया जाती थीं और बाहर कहीं चिड़िये का एक दूत भी डोलता नजर नहीं आता था, उस गगनचुंबी धवल महल के शीतल और सुखदायक गर्मगृह से निकलकर क्यों भाग आया तथा जब बाहर आकर मुक्ति की सांस ली तो सिकुड़ा हुआ मन क्यों फैलने लगा, उस कैदखाने के बाहर, खुले खेत और बगीचों में? लेकिन स्पष्ट रूप से मुझे कोई कारण नजर नहीं आता. नजर पर बारंबार चढ़ता दमरी और तब कानों में दोपहरी के सन्नाटे के ताल पर गूंजने लगतीं उसकी बातें, सिघाई के संगीत की भांति, कि किस प्रकार ठाकुर अर्थात् बड़े बाबू साहब की नाम-चर्चा मात्र से वह खिलकर चहकने लगता है, कि किस प्रकार अपने उस मालिक के बड़प्पन का बखान करते वह अघाता नहीं है. कहता है, आदमी नहीं, देवता हैं. गांव की तो बात ही क्या, जिला-जवार के साथ हैं. दरवाजे पर पहुंचते ही जैसे सिर पर उठा लेते हैं. दमरी सबसे अधिक इस बात पर जोर देता है कि अपने रिआया और परजा-परानी जन को वे खूब मानते हैं और देते हैं तो भरपूर देते हैं, क्योंकि भगवान ने उन्हें भी खूब दिया और कमी किसी बात की नहीं है.

सचमुच बड़े बाबू साहब में कमी किसी बात की नहीं. दमरी की बातें सुन-सुनकर मेरे मन में शायद उनके दर्शनों की लालसा छिपी थी और इसीलिए बिना कुछ सोचे-समझे उनके पीछे-पीछे चल पड़ा. मुलाकात मात्र संयोगवश उनके गांव गोपालपुर के पास वाले पूरब के बगीचे में ठीक रास्ते में ही गयी थी. मैंने देखा, उनमें गांव के बड़े-बूढ़े बुजुर्गों की भांति आने-जाने वाले राहगीरों से सौजन्यवश यह पूछने का भाव है कि कहां घर है? कहां जाना है? मुझसे भी उन्होंने ये सवाल किये और प्रयोजन जानने के बाद तो एकदम पीछे पड़ गये. बोले, "आपका नौकर दमरी कई दिन से गैरहाजिर है और उसे खोजने आप उसके इस गांव पर आ गये तो मेरी यह खुशकिस्मती है कि आपसे मुलाकात हो गयी. अब आप मेरे गरीबखाने में तशरीफ फरमाएं, बहुत-बहुत मेहरबानी होगी."

"मगर मुझे दमरी से मिलना बहुत आवश्यक था." मैंने संकोच के साथ कहा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा लगा कि दुबारा दमरी का नाम सुनते ही उनके मुंह पर विचित्र प्रकार की आड़ी-तिरछी, कुछ जली-बुझी-सी लकीरें उभर गयीं और पान थूककर बोले, "दमरिया से मिलना है तो वह साला कहां जायेगा? अभी पकड़वाकर आपके सामने हाजिर कर दूंगा. मुझे क्या मालूम था कि वह आपके यहां रहता है? खैर, इत्मीनान रखें. इस नावक्त में आपको मैं कहीं और कदम नहीं रखने दूंगा."

उसके बड़े बाबू साहब की जबान मुझे बहुत आकर्षक लग रही थी. गांव के परिवेश को देखते ऊंचाई उस कोठी की ही असाधारण नहीं थी, इस साफ-सुथरी जबान में भी कुछ वैसी ही चीज थी. उन्होंने कुछ लोगों को बगीचे से बुलाकर कुछ समझाया तो मुझे मालूम हुआ कि वे इस दोपहरी में खड़े होकर वास्तव में बाग की पैमाइश करा रहे थे. उन्होंने चलते-चलते एक अमीन टाइप के व्यक्ति को बुलाकर कहा, "देखिएगा, ऐसा न हो कि मेरी गैरहाजिरी में किसी गरीब इंसान का कतल हो जाये!"

और मैं इस प्रकार उस छोटे-से गांव में साक्षात् बड़प्पन-सी उठी कोठी में उसके मालिक के पीछे-पीछे दाखिल हुआ. रास्ते भर दमरी के शब्द कानों में गूंजते रहे . . . आदमी हैं कि शान-गुमान नाम को भी नहीं. कौन है और दूसरा इस प्रकार छोटे-बड़े, परिचित-अपरिचित को समान भाव से आदर देने वाला? कौन है अपने मजदूरों-बनिहारों को भी 'आदमी' समझने वाला? उनके साथ हंसी-ठिठोली तक करके उन्हें निहाल कर देनेवाला? . . . एक बार कभी गोपालपुर चलिए तो हमारे बड़े बाबू साहब को देखिए. फिर तो आप उन्हें भूलेंगे नहीं. वह आदर करेंगे, वह खिलायेंगे-पिलायेंगे कि आप भी कहेंगे . . . कहां थकता दमरी सौ-सौ मुंह से सराहते?

अच्छा तो लो दमरी, मैं तुम्हारे गांव के तुम्हारे उस मालिक के यहां आ गया! मैं तो तुम्हें कुछ नहीं कहता, पर ये तुम्हारे मालिक मारे दुलार के तुम्हें 'दमरिया साला' कहते हैं. मजा आ जायेगा, जब वे तुम्हें 'पकड़वा' कर सामने हाजिर कर देंगे! कितने दिलचस्प हैं ये तुम्हारे बड़े बाबू साहब!

लेकिन सबसे अधिक दिलचस्प तो मुझे वे तब लगे, जब बैठक खाने में पहुंचने पर उन्होंने एकदम शहरी अंदाज में पूछा, "क्या लेना पसंद करेंगे, ठंडा या गरम?" तो यह आदमी ठंडा-गरम सब तरह का इंतजाम सदा रखता है? फिर यह इतना उदार है कि मेहमान के मन के भीतर के जवाब का भी इंतजाम रखता है. आगे कहता है, "आप जैसे खद्दरपोश इंसान के लिए ठंडा ही बेहतर होगा!" सुनकर मन भीतर से जुड़ा गया.

मिठाई और लस्सी की तरावट तथा घर-गृहस्थी और खेतीबाड़ी के कुशल-समाचार की मिठास में डूबकर जब फिर एक बार मुख्य प्रयोजन मन की सतह पर उभर आया तो मैंने देश-दुनिया की चलती बातचीत के बीच में ही सहमते-सहमते धीमे से कहा, "किसी को भेजेंगे क्या उसके यहां?"

"किसके यहां?" बात बंद कर मेरी आंखों में एक सर्वथा अपरिचित रहस्यमय आंखें डालकर बड़े बाबू साहब ने पूछा.

"वही दमरी . . . उसे बुलायेंगे न?"

"बुलायेंगे क्यों? वह साला खुद आयेगा." उन्होंने फूल की फर्श पर गिरी थाल की भांति झनककर कहा, "वह कमीना मेरा आदमी होकर मेरे यहां काम नहीं करता है, देखिए तो भला, भागकर आपके यहां हरमजदगी करने पहुंच गया है. कामचोर तो है ही, बेहूदा, बदतमीज और नालायक भी है . . . सुराज क्या हुआ, इनके पंख जम गये. कोई यहां भाग रहा है, कोई वहां भाग रहा है. मन करता है, खंभे में बंधवाकर सौ कोड़े रसीद करें और खाल में भूसी भरवाकर बतौर इश्तहार टांग दें. . . . आपको मेरी बातें बुरी लग सकती हैं, मगर मेहरबान, जरा दिल में लगी इस आग पर भी तो गौर फरमायें कि सब क्या से क्या हो गया? जूतियों को अब क्या सचमुच सिर पर ढोना पड़ेगा?"

"लोकतंत्र का आदर तो करना ही होगा." मैंने कहा.

"आप ठीक कहते हैं. इन्हीं सबों के पास वोट है. अधिक कसने पर टूटने का डर रहता है. तार को ढीला रखना पड़ता है."

"लेकिन कहां ढीला है? अभी भी तो कमजोरों की बस्तियों को फूंक डालने के समाचार अखबारों में छप जाते हैं."

"आप अखबारों की बातें करते हैं? ये झूठ लिखते हैं. ये यह नहीं सोचते कि बिना नौकरों के जब अखबार नहीं छपते तो खेती-गृहस्थी का काम कैसे चलेगा? अब क्या हम लोग खुद अपने हाथों से हल जोतें? सानी-पानी करें? . . . हमने तो ट्रैक्टर खरीद लिया है. सारी झंझट खतम! मगर तब भी आदमी तो चाहिए ही."

"घबराइए नहीं, अब कंप्यूटर आ रहे हैं."

"हमारा कंप्यूटर तो इस साले दमरिया का खानदान रहा है. अब यह ससुरा है कि छिटक कर दरकिनार हो गया है."

"आप कहें तो दमरी को मैं छोड़ दूं."

"इतना बिगाड़कर अब क्या छोड़िएगा? वह 'दमरिया' आपके यहां 'दमरी' हो गया तो अब मुमकिन नहीं कि यहां उसका गुजारा हो. . . . अब आप खाना खाकर आराम करें. . . . ऐ परमुआ, चल, साहब के लिए खाने और सोने का इंतजाम कर."

बड़े बाबू साहब बगल के दरवाजे से कहीं भीतर चले गये. मैं उनका जाना देखता रहा.

महीन चावल का सुगंधित भात, घी से तर खूब पीली अरहर की गाढ़ी दाल, खिली-खिली चपातियां, आलू-परवल और कटहल का साग, पुदीना मिली आम की चटनी, तरह-तरह के अचार, पापड़ आदि के बाद कटोरे भर सजाव, दही से उपसंहार, तबीयत में मस्ती तो अब आ ही जानी चाहिए थी. जल से खस की भीनी-भीनी खुशबू आ रही थी. नौकर ने हाथ धुलाकर एक नये कक्ष में पहुंचा दिया. वहां बगल में एक खाली पलंग दिखायी पड़ा. बिस्तर उस पर पहले से ही खुला था. बिना बताये समझ गया कि यह मेरे लिए है. बगल के पलंग पर एक सज्जन खर्राटे भर रहे थे. उसके बाद दो बड़ी-बड़ी चौकियां सटी-सटी पड़ी थीं. एक लंबा-चौड़ा धप्-धप् गद्दा उन्हें ढंक रहा था. गद्दे पर चौपड़ की बिसात बिछी थी और छः सात मोटे-मोटे चमकते चेहरे और साफ-सुथरे वस्त्रों वाले व्यक्ति उसे घेरकर अपने रंग में मस्त थे. खड़खड़-खड़खड़ पासा बजता था. वही हथियारों के चलने का शब्द था और भिन्न-भिन्न आवाजें बताती थीं कि लड़ाई में काफी सरगर्मी है. चार मुख्य खिलाड़ियों से अधिक मजा वाह-वाह-वाहकों के शायद मिल रहा था! यह मारा . . . वह गोटी कटी . . . अबकी बचके कहां जइहौ . . . अरे-रे-रे . . . बस पौ बारह! ठहाके गूंज उठे. शायद इससे प्रभावित हो एक छिपकली ने छत के कोने से जो छलांग लगाई तो वह सीधे टेलीविजन के ऊपर पड़े परदे पर ठीक मेरे सामने गिरी, पट्ट! सामने का गिरना तो लाभ का योग है. क्या बड़े बाबू साहब दमरी को बुलवा कर ला रहे हैं! नहीं, अब उनका कहां पता है?

कुछ देर बाद मेरे सामने सवाल उठा कि अब क्या करूं? नींद लगना संभव प्रतीत नहीं हो रहा था. प्रतिक्षण कोई अप्रत्याशित धक्का तोड़ रहा था. वातावरण का बोझ असह्य था. बोझ बढ़ता ही जा रहा था. कहां का कहां यहां आ फंसा. ऐसा लगता कि यहां आना कोई भारी गुनाह हो गया. अपनी हीनताएं सौ-सौ मुंह बोलने लगीं. एकदम खप नहीं पाया उन भाग्यवानों में. अपने को समझाना व्यर्थ हुआ. भोजन भार प्रतीत होने लगा. वह आनंदोल्लास का कोलाहल काट खाने लगा. कमरे की शीतलता जलन पैदा करने लगी. कभी-कभी अपनी इस स्थिति पर खीझ होती! एक पढ़ा-लिखा अध्यापक होकर मैं क्यों इतना कमजोर हूं? सुराही का पानी पीकर, पान चबा-चबाकर और सिगरेट के धुएं खींच-खींच कर ये बगल के लड़वैये खेल की लड़ाई में इतने मस्त हैं तो मैं तो जीवन की असली लड़ाई लड़ता हूं. मैं कोई छिपकली नहीं हूं कि ठहाके सुन अपनी पकड़ छोड़ दूं.

मैंने देखा, वह छिपकली चूने से पुती चिकनी दीवार पर सरकते-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

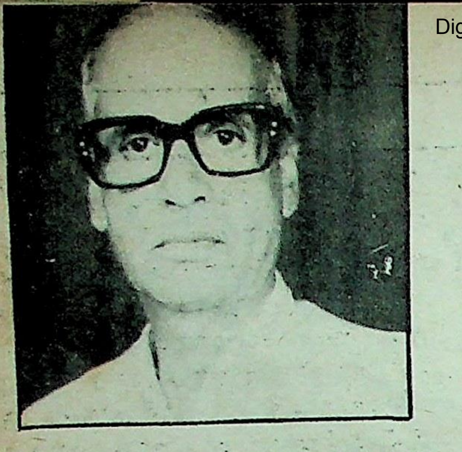

▣ विवेकी राय

सरकते 'रंग बिरंगे चित्रों के पीछे कहीं छिप गयी. बेशक चित्र बहुत कलात्मक हैं, परंतु उनमें मन को रमाने का प्रयत्न भी व्यर्थ सिद्ध हुआ. रह-रहकर दृष्टि कहीं और चली जाती. वह जहां भी जाती, उखड़ जाती. उसे सर्वत्र बड़े बाबू साहब खड़े मिलते, एक भीषण प्रश्न की भांति! क्या मैं सचमुच उनका सौजन्य पचा नहीं पा रहा हूं? झूठा कौन है, दमरी या वे स्वयं? कुछ बहुत गड़बड़ बात है.

किसी ओर से हवा का एक सुखद झोंका आया, अदब के साथ, बल खाता हुआ. उस शीत-स्पर्श के महल में दाखिल होते मन का वातावरण कुछ बदला. मैंने सोचा, हवा बाहर से आयी तो गरम रही होगी. वह भीतर आकर ठंडी हो गयी. उसकी यह ठंडक निश्चित रूप से झूठी है. इस मिथ्या शीतलता से बाहर की खुली सत्य की आंच भली! यह शीतलता नहीं, भारी अशांति है. और इस प्रकार जब वह अशांति बहुत बढ़ गयी तो मैं पलंग पर उठकर बैठ गया. सबसे पहले कुर्ता शरीर में डाल लिया. धूपवाले चश्मे को रूमाल से पोंछकर आंखों पर चढ़ा लिया. चप्पल ठोंककर उसपर चढ़े गर्द-गुबार को साफ किया. उठकर एक गिलास पानी लिया. छाता खड़खड़ाया. सबका मतलब था कि कोई टोके और पूछ-पाछ वाला अध्याय समाप्त होकर निकल भागने का मार्ग प्रशस्त हो. जब किसी ने पूछना तो दूर, इधर निगाह भी नहीं उठायी तो खड़ा हुआ, अब चलूं. अच्छा, चलते-चलते एक समवेत नमस्ते ठोंक दूं.

लेकिन, उधर कुछ और गुल खिला था. किसी पक्ष की बाजी उलझ गयी थी. फिर, खड़-खड़ खड़-खड़ कर पासा जो डाला तो मानो मरी तोप में पलीता दग गया. फिर एक बार ठहाकों से छत हिल गयी. पास-पास बैठे दो मोटे सज्जन मारे खुशी के गले से गला लगाकर चिपक गये. दुबले-पतले सफाचट मूंछों वाले पूरब ओर बैठे सज्जन ने पश्चिम ओर बैठे सोने की चेनवाली घड़ी के सज्जन से झटककर हाथ मिलाया और दोनों कसकर झकझोरते रहे. दक्षिण ओर बैठे सज्जन चुपचाप गोटी बटोरकर फिर बिछाने लगे. उत्तर-पश्चिम के कोने में बैठे लंबे-लंबे बालवाले सज्जन किसी झोंक में आधा हंसते और आधा बोलते हुए पान लगाने लगे. हमारे नमस्कार को ग्रहण करने की फुरसत किसी को नहीं थी. मैं धीरे से दरवाजे से बाहर हो गया. बाहर एक नौकर ऊंघ रहा था. चौथे फाटक पर खाकी कोट-पैंट और टोपी पहने एक आदमी फाइल लिये स्टूल पर बैठा था. मेरे पहुंचते ही उसने उठकर सलाम किया, "सलाम साहब!"

"मगर मैं कोई साहब नहीं हूं." मैंने कहा.

"जी सरकार, मुझे सेक्रेटरी साहब और एम.पी. साहब से मिलना है." उसने कहा.

"तब सीधे भीतर जाओ. यदि कोई पूछे कि कैसे आ गये तो कह देना कि अभी-अभी जो साहब यहां से बाहर गये हैं, उनसे इजाजत लेकर आया हूं." मैंने कहा.

बाहर आकर पहली बार यह महसूस हुआ कि जेठ की दुपहरिया की धूप भी बहुत प्यारी होती है. विशेष कर उस स्थिति में जब आदमी किसी नशे में हो. बेशक मेरे ऊपर भी एक नशा सवार था, एक अज्ञात नशा और वह काफी दूर चलने के बाद तब टूटा, जब लगा कि मैं देवी चबूतरे के ऊपर छायी हुई घनी नीम की छाया में पहुंच गया हूं.

लगा कि मुझे प्यास लगी है. पानी की खोज में आंखें इधर-उधर दौड़ने लगीं. सीवान में कहीं कुआं या कोई आदमी नहीं दिखायी पड़ा तो घास पर बैठकर सोचने लगा, यहां कोई नहीं है. अतः जरूर कोई ईश्वर है. एकांत शून्य और नीरव निस्पंद घाम की चमकती दीवार के उधर वाली कोलाहल की दुनिया में कोई और है. दुपहरिया बीच में माया की भांति नाच रही है. इस माया में ऐसा लगता है कि अचल पेड़-पौधे चींटियों की भांति रेंग रहे हैं और गांव कालिमा की लहरों से बने चित्रों की भांति किसी उजली मेघ-नदी में बहे चले जा रहे हैं. एक अजीब-सा सनन्-सन्न . . . सनन्-सन्न नीम की चलती धीमी-धीमी सांस में घुल रहा है. आंच के झोंके जब-तब आकर नीम की छाया से कुछ सायं-फुस बात कर जाते तो आनंद आ जाता. वास्तव में यहां आनंद के अतिरिक्त मुझे और कुछ का भान नहीं रह गया था. बहुत विकट था यह आनंद, कहां से कैसे आ गया? बहुत कठिन है इसका गणित. शायद यह मूर्खता का गणित है. मैं चला दमरी की तलाश में और यहां आकर लगा कविता खोजने. पता नहीं, गांव पर दमरी है या नहीं. कहीं ऐसा न हो कि उस बार की तरह बेगारी में पकड़कर बड़े बाबू साहब ने भेज दिया हो दारोगाजी की बेटी का विवाह संभालने के लिए और दारोगाजी ने भेज दिया हो तहसीलदार साहब के लड़के के तिलकोत्सव में खटने के लिए. दुनिया में गरीब हो और सीधा हो तो उसकी गुजर नहीं. किस प्रकार शपथ खाकर लौटने पर कहता रहा दमरी, "काली माई किरिये, थानेदार साहब रोज आटा देत रहेन, बनाले-खाये बदे."

इस बीच पता नहीं कब एक आदमी पास के ईख के खेत में आकर पानी चलाने लगा था. वह ढेकली को यंत्रवत् उठा-गिराकर कहीं पानी चढ़ा रहा था. उसका सिर खुला था, छाती खुली थी और पूरा अस्तित्व खुला था. कमर में कछनी कसी थी. एकदम ठोस बबूल के कुंदे-सा अवबूढ़ा शरीर धूप की जलन में अविचल भाव से हिलडुल रहा था. हाथ ताबड़तोड़ चल रहे थे. उसकी तल्लीनता को देखते जेठ के माहुर घाम और शरद की चांदनी में कहीं कोई अंतर रह गया था. उसकी मार्तंड विजय का अनुभव कर मेरा ताप जाता रहा. उसके सजीव श्रम से मेरी थकावट मिट गयी. मैंने उसकी ओर मुंह कर खड़े-खड़े अंजुरी को मुंह के पास ले जाकर कुछ इशारा किया. इशारा सटीक बैठ गया.

लोटे में पानी लेकर नीम तले आते-आते उसने पूछा, "कहां घर है बाबू?"

मुझे याद आया, ठीक यही सवाल तो गांव के गोंपड़े बड़े बाबू साहब द्वारा भी पूछा गया था!

थोड़ी देर में वह परिचित हो गया. उसकी ईख की खेती के बारे में बातचीत हुई. उसने बताया कि पानी चलाते-चलाते थक जाने पर यहीं आकर वह सुस्ताता है तथा सुर्ती खाता है. रात में सीचे खेत में खाट डसाकर सोता है तो शिमला का मजा आता है.

"शिमला गये हो?" मैंने पूछा.

"नहीं, सुना भर है." उसने जवाब दिया.

"सुने भर क्यों हो? शिमला तो तुम्हारे गांव में ही है. वह देखो." मैंने बड़े बाबू साहब की कोठी की ओर इशारा किया.

मेरी बात सुनकर वह सचमुच उधर एकटक देखने लगा, जैसे पहली बार देख रहा हो. फिर गंभीरता के साथ बोला, "शिमला नहीं, यह डकैतों का अड्डा है. दिनभर इसमें छिपे रहते हैं और रात को निकल कभी इस गांव पर कभी उस गांव पर पड़ जाते हैं."

मुझे लगा, यह भी कम दिलचस्प आदमी नहीं है. अब इत्मीनान से इस व्यक्ति द्वारा दमरी के बारे में पूछताछ की जा सकती है, मगर एक भय से अभी भी पिंड नहीं छूट रहा था. अपने भगे मेहमान को खोजते शेष खातिरदारी के लिए बड़े बाबू साहब कहीं यहां भी न पहुंच जायें. □

● बड़ी बाग, गाजीपुर (उत्तरप्रदेश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं अपने-आप को फुर्सत नहीं देना चाहता !

अपने समय के चर्चित कथाकार, उपन्यासकार और नाटककार रमेश बक्षी से महेश दर्पण की अंतरंग बातचीत.

□ एक लेखक लिखते-लिखते अनायास खामोश बैठ जाता है. . .जबकि इससे पहले एक खास समय में वह काफी लिखता रहा होता है और उसमें से उसकी कुछ चीजें उल्लेखनीय भी होती हैं. जैसे एक दौर में आपने काफी कहानियां लिखी हैं. . .कुछ लोग थे, जो उस वक्त तो कम लिख ही रहे थे, पर उसके बाद चुप ही हो गये. . .उस वक्त की आपकी कुछ कहानियां हमें अब भी याद हैं. . .

देखिए, गायब हो जाना या चुप हो जाना जो है, इसके पीछे तो बहुत सारे व्यक्तिगत कारण भी होते हैं और कुछ अपनी विवशताएं भी होती हैं. जैसे विधा बदलने वाली बात के परिणाम. नाटक में जब मैंने शिफ्ट किया तो कहानी थोड़ी-सी पीछे आ गयी. लेकिन कहानी कहीं पीछे नहीं आयी. जो किस्सागो हमारे अंदर है न, वह हमेशा ही जिंदा रहता है. 'मेज पर टिकी हुई कोहनियां' जिस वक्त लिखी थी, आपको बताऊं मैं मुश्किल से इंटरमीडिएट का स्टूडेंट था. वह इतनी पापुलर स्टोरी रही कि लोग मुझे 'शबरी' के नाम से जानने लगे. . . कुछ लोग मुझे 'कैक्टस' के नाम से जानने लगे. फिर 'ज्ञानोदय' और 'आवेश' के संपादन के वक्त मैंने महसूस किया कि. . . ज्ञानरंजन की एक कहानी है 'यात्रा' और सुदर्शन चोपड़ा की कहानी है 'सड़क दुर्घटना'. . . तो ये कहानियां इन लोगों से लिखवाने का छोटा-सा श्रेय मुझे भी जाता है. . . पर ये रचनाएं उनके लिए 'लैंडमार्क' बन गयीं.

□ थोड़ा-सा हटकर अगर हम बात करें तो आपकी एक बात याद आ रही है . . . जहां आप कहते हैं, व्यक्ति का सच रचना का सच नहीं होता. जबकि मैं आपकी इस बात के साथ जोड़ना यह चाहता हूं कि जीवन के यथार्थ में या कल्पना में जो यथार्थ उभरता है, वही रचना को जन्म देता है. . . !

देखिए, जहां तक मेरे लिखने का सवाल है, वह व्यक्ति का लेखन है. जैसे कोई आदमी बाल डाई करना शुरू कर दे तो उसे हमेशा यह खयाल रहता है कि कितने बाल काले हो गये, कितने सफेद रह गये. . .तो शिल्प के प्रति

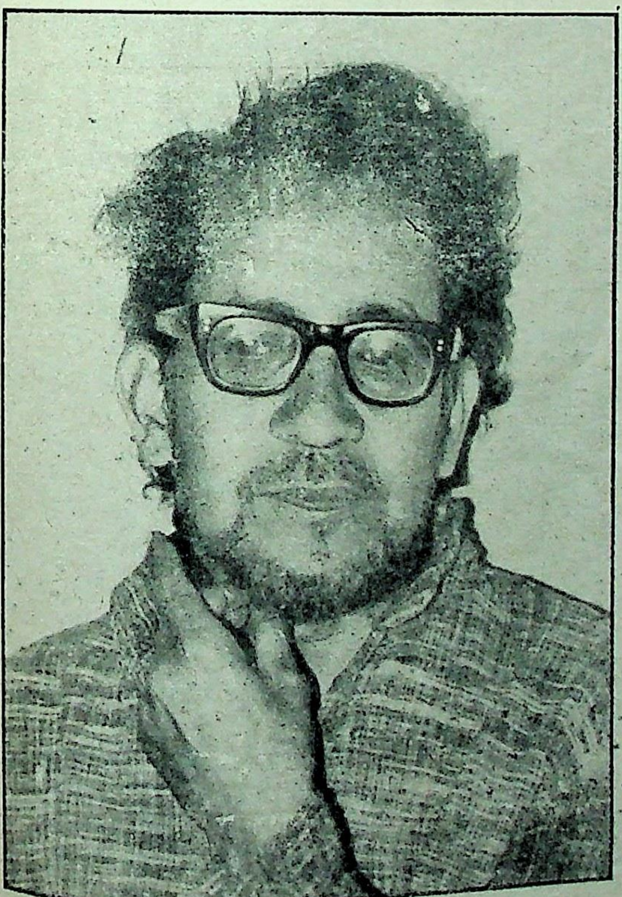

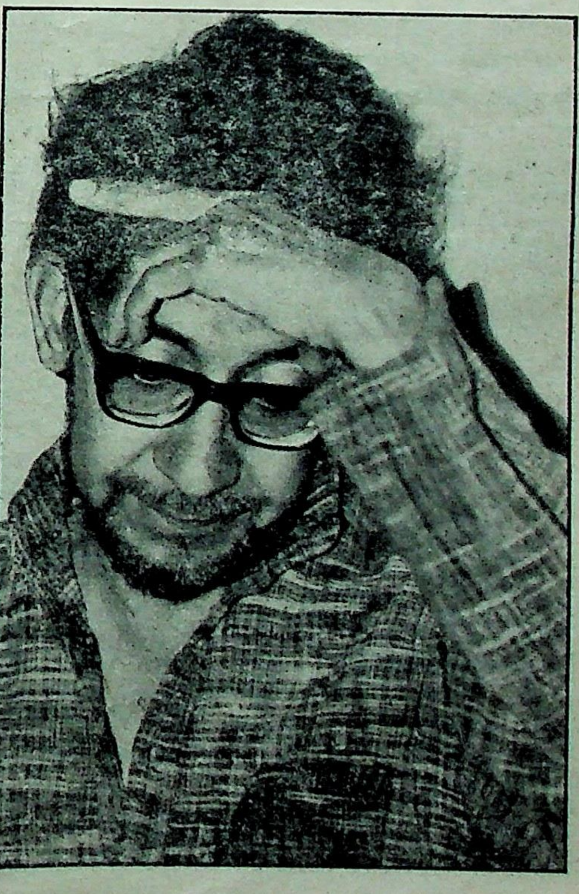

छायांकन : धर्मवीर जयनर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं बचपन में कभी सायास था. उस सायास होने का मेजर कारण था ओ हेनरी और चेखव. . . क्योंकि मैं इन लोगों से शुरू-शुरू में बहुत ज्यादा प्रभावित था. . .कि कहानी कितनी कांपैक्ट, कितने अच्छे ढंग से सुगठित होती है. राजेंद्र यादव अब भी उससे ग्रस्त हैं. बचपन से ग्रस्त थे. . .आज भी हैं, लेकिन वो बाल डाई करने की तरह होता है. पर मैं कहता हूं कि जीवन के अनुभवों में व्यक्ति ज्यादा महत्वपूर्ण है. उस व्यक्ति में से चीजों को हम निकालते रहते हैं. ये भी मैं आपको बताऊं कि निश्चित ही कुछ रचनाओं में नाम जरूर हैं, पर जो जीवन का यथार्थ है, उसे बिल्कुल अछूता रखा है. कोई उसे छू भी नहीं पाया. उस रूप में मैंने उसे देखा.

▣ फिर आप यह क्यों कहते हैं कि आपकी हर रचना आत्मकथा का हिस्सा है !

हां, मैं ये भी कहता हूं !

▣ तो ये दोनों चीजें कंट्राडिक्ट नहीं करतीं?

नहीं, देखिए मैंने कहा न, कि मेरी रचना में व्यक्ति का अंश है. अब व्यक्ति के अंश को मैं कलात्मक रूप में प्रस्तुत करूं या कथात्मक रूप में. . . ये दोनों एक बराबर हैं. अपने प्रति मैं कहीं धोखाधड़ी नहीं कर रहा. इसके अलावा जीवन के अनुभवों से जो कुछ भी मिला है, वही मेरी पूंजी है.

▣ आज जहां आकर आप खड़े हो गये हैं, खासकर लेखन के अर्थ में. . .तो इस अनुभवी दौर से गुजरकर आपने यह निर्णय नहीं लिया कि आपको कम लिखना चाहिए. . .या रुक-रुक कर लिखना चाहिए?

मेरे साथ एक दिक्कत यह है कि रुककर लिखना या कम लिखना महत्वपूर्ण नहीं रहा. ताल्स्तोय की एक बात पर मैं पूरा विश्वास रखता हूं कि युद्ध के समय में कोई नहीं लिख सकता. उसके लिए थोड़ी-सी शांति की जरूरत होती है. जहां तक गद्य का लेखन है, उसके लिए बैठना पड़ता है. मैं आपसे बताऊं कि मेरा अधिकांश लेखन टाइपराइटर पर होता है. तो उसके कारण मुश्किल क्या होती है कि 'आई हैव टु सिट एंड टाइप'. . . हालांकि मैं बाहर देखते हुए भी टाइप कर सकता हूं, पर थोड़ा वक्त तो उसमें लगता ही है न ! पर कम लिखने की बात इस वजह से नहीं आयी है. मैं आपको बताऊं कि अधिक लिखना एक मजबूरी थी. शुरू-शुरू में तो जो था न, वह एक किस्म का उत्साह. . .उसके बाद जब ये लगा कि रचनाएं कहीं भी स्वीकृत हो सकती हैं. . .कहीं भी प्रकाशित हो सकती हैं. . .तो यह भी लगा कि जो अच्छा लगे, वही लिखना है. उपन्यास पर जब मैं काम करता हूं तो मुझे एक-आध साल लग जाता है. लोग समझते हैं कि मैं कुछ लिख ही नहीं रहा,

अच्छी. . . कहानियां आ ही रही हैं. आलोचना में भी काम हो रहा है. वैसे अब तो जमाना लद गया जब समीक्षक लेकर लेखक चलता था. अब उसकी जरूरत नहीं है.

जबकि एक साल तक मैं लगातार काम करता रहता हूं. दूसरे जब मैं नाटक लिखता हूं तो मुझे साल-छः महीने नाटक लिखने में लगते हैं. कुछ अपने दोस्तों से बात करने में लगते हैं. नाटक प्रस्तुत होता है. नाटक जब सामने आता है तो लोगों को लगता है कि मैं दो साल तक शांत था. . .जबकि मैं दो साल तक शांत नहीं था. दूसरे, प्रमोद की (प्रमोद गणपत्ये) दोस्ती से या कुछ और लोगों की दोस्ती से पेंटिंग का शौक पैदा हो गया. कुछ पैसा आया तो रंग ले आये. . .मतलब ये विधाएं बदलती रहती हैं. . .कुछ न कुछ मैं करता रहता हूं.

▣ आपके समय में कई लोग एक साथ कहानी के क्षेत्र में आये और उन्होंने अच्छी कहानियां दीं भी. पर बाद में एकाएक लगा कि वे सब लोप-प्रायः हो गये हैं. . .उनमें से कुछ उपन्यासों की तरफ भी झुक गये. . .तो क्या आपको ऐसा लगता है कि कहानी से अलग होने के पीछे कोई खास कारण था ?

कुछ कारण तो थे ही. मैं आपको बताऊं कि एक दौर चला था, जब प्रकाशक कहते थे कि साहब बड़े उपन्यास दे दीजिए. . . पर सडनली जब सरकार ने दस-बीस रुपये से ज्यादा कीमत की किताब खरीदने पर पाबंदी लगा दी तो प्रकाशकों ने कहना शुरू किया कि साहब आप छोटा-सा सौ-एक पेज का उपन्यास हमें दे दीजिए. . .बिक भी जायेगा और सुविधा भी रहेगी. जहां तक लेखक का सवाल है तो यह इस तरह से है कि अगर लेखक जेनुइन है तो पहले एक छोटी कहानी लिखी, फिर बड़ी कहानी लिखी, फिर उपन्यास लिखा. . .फिर बड़ा उपन्यास लिखा. . . यह तो कैनवास की तरह होता है. . .जैसे बचपन में चित्र बनाना सीखा तो पहले केतली बनाते थे. हाथी बनाते थे. . . पर बाद में कैनवास बड़ा होता गया. तो यह कैनवस जो है, यह उम्र के साथ और अनुभव के साथ-साथ बड़ा होता जाता है.

▣ एक लेखक जिस समय रचनाकर्म करता है उस वक्त उसकी 'आइडियोलॉजी, कितना काम करती है. यानी लिख लेने के बाद तो खेमेबाजी हमारे यहां शुरू हो जाती है. . . पर. . .

देखिए, मैं खुद पी. डब्ल्यू. ए. का सदस्य था. हम लोग वहां जाते थे और वहां के सेक्रेटरी हमारी कहानी पर हमें सलाह देते थे. . .जो मुझे बर्दाश्त नहीं होती थी, पर उस वक्त ज्यादा आजादी थी. वैसे, मोटिवेटेड होकर जो लिखना होता है, वह कहीं न कहीं आदमी को मारता तो है ही.सीधी बात नहीं आ पाती?

▣ जिस तरह से अभी आपने बताया, उससे लगता यह है कि पी. डब्ल्यू. ए. से आपको सीखने को कुछ नहीं मिला.

मैंने सीखा केवल इतना कि हम क्या कुछ कह सकते हैं. . .लेकिन मैं कतई प्रभावित नहीं हुआ. जहां तक प्रोग्रेसिव विचारों का सवाल है, उनसे मैं तब भी संबद्ध था और अब भी संबद्ध हूं.

▣ देखिए, मैं जो पूछना चाहता हूं. वह यह है कि जब आप सामान्य तौर से परिवार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कहानी लिख रहे होते हैं. . . जिसमें एक पिता आता है, मां आती है, भाई-बहन और पति-पत्नी आते हैं. . . तो वहां आप अपनी आइडियोलॉजी से भी तो काम करते हैं. . . या नहीं ?

मैं जो महसूस करता हूं कि जो पोलिटिकली आब्सेस्ड होगा, वो तो करेगा. . .पर हम, जो दिन में अखबार पढ़कर किसी खबर पर सोचते रह जाते हैं. . .अब कोई कहे कि साहब यशपाल मार्क्सवादी लेखक हैं या जैनेंद्र को कोई कहे कि सामाजिक हैं. . कहां के हैं सामाजिक साहब ! यशपाल कहां के मार्क्सवादी थे साहब! सबसे ज्यादा अश्लील कहानियां अगर किसी ने लिखी हैं तो वो यशपाल ने लिखी हैं और सबसे अधिक साड़ी-जंफर उतार कहानी किसी ने लिखी हैं तो वो जैनेंद्र ने लिखी हैं; कहां फर्क है? इसमें कहां आप आइडियोलॉजी ढूंढेंगे ?

▣ दरअसल, इधर की अधिकांश कहानियों में जो हम देख रहे हैं कि 'परिवार' जैसी महत्वपूर्ण संस्था गायब हो रही है, या तो नारा आयेगा, या झंडा या जुलूस. . .

मैं नहीं मानता इसे. अच्छी कहानी में अभी कुछ हो सकता है. पिछले दिनों मैंने कई कहानियां पढ़ीं. . .काशीनाथ सिंह की भी, जिन्होंने एक समय अच्छी कहानियां लिखी हैं. पर इधर. . .एक चपरासी की गाथा हो या किसी आदमी की तकलीफ हो, सीधा का सीधा वर्णन है. पर वह एक आदमी की तकलीफ तो है. जैसे मैंने एक उपन्यास लिखा 'बयान.' सामने एक साहब रहते हैं एल. डी. सी. रामदयाल, जो संपन्न होकर रिटायर हुए हैं. यह सब सोचने पर निर्भर करता है विजुएलाइजेशन, आब्जर्वेशन, सोचना और अलग होने की कल्पना का अपना महत्व है.

▣ इधर जबकि हम देख रहे हैं कि साहित्य में 'मीडियॉकर कल्चर' चल पड़ा है. . . बावजूद इसके कुछ युवा रचनाकार बेहतर भी लिख रहे हैं तो आप इन उभर रहे लोगों पर कुछ कहेंगे ?

देखिए, नये आदमी पर अंतिम निर्णय देने वाली बात गलत है. क्योंकि देखिए, मान लीजिए कि आपने अभी एक कमजोर कहानी लिखी और दो साल बाद एक अच्छी कहानी लिख दी तो. . .मैं नहीं समझता कि कहानी को लेकर निराश होने जैसा कुछ है. यह तो एक प्रोसेस है. . .प्रोसेस में से गुजरने की बात है. ऐसी दुनिया के हर भाषा के साहित्य के साथ हुआ है. गतिरोध भी आते हैं. . .फिर कुछ नाम आ जाते हैं. . .और हम नामों के इर्द-गिर्द घूमने लग जाते हैं.

ताज्जुब करेंगे कि 'हिंदी कहानी का मध्यांतर' में मैंने कृष्ण बलदेव वैद से शुरू किया है, राजकमल चौधरी भी हैं और फिर ज्ञानरंजन, रवींद्र कालिया, ममता कालिया. . . जो बहुत ज्यादा पॉपुलर हुए हैं, उन्हें मैंने छोड़ दिया है—जैसे मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेंद्र यादव को नहीं लिया. जैसा आपने नये लोगों के बारे में पूछा, नाम तो मैं नहीं बता सकूंगा, पर निराशा की कोई बात नहीं है. अच्छी कहानियां आ ही रही हैं. आलोचना में भी काम हो रहा है. वैसे अब तो जमाना लद गया, जब समीक्षक लेकर लेखक चलता था. अब उसकी जरूरत नहीं है.

▣ एक खास उम्र पर आकर मृत्युबोध हर आदमी को जकड़ता है. . .आपने तो ऐसे कुछ लेखकों के इंटरव्यूज, डायरियां और विचारों को अनुवाद या रूपांतर करके प्रोजेक्ट भी किया है. क्या इस तरह का विचार आपको भी महसूस होता है ?

एक बात मैं आपको बताऊं, मैंने 'बाहर आये हुए लोग' लिखते वक्त, जिसमें मैंने लोगों के न रहने पर उनको पूरा पढ़कर उन पर वैचारिक लेख लिखे थे. . . तो उससे मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला था. लेकिन 'मृत्युबोध' जो है न, वो मेरा खयाल है कि जीवन से जुड़े रहने की सबसे बड़ी विशेषता है. मृत्युबोध जब आपने कहा तो मुझे मुक्तिबोध की भी याद आयी. मैंने उनको 'कंटीन्युअस कोमा' में देखा है. उस समय श्रीकांत वर्मा, शरद जोशी, परसाई और दुष्यंत कुमार वहीं थे. जो कुछ बातें तब हो पाती थीं. . . कहीं मुझे कुछ ऐसा नहीं लगा. ये जरूर है कि अपनी यौवनावस्था में आत्महत्या वाली चीज बड़ी प्रभावित करती थी. . . पर जिंदगी के साथ टकराने के बाद वह खत्म हो गयी. कोई मुझे यह कह दे कि मुझे कैंसर हो गया है और एक महीने के बाद मैं मर जाऊंगा तो मैं कतई परेशान नहीं होऊंगा. तो मृत्युबोध वाली जो चीज है न, यह हेरेस करने वाली चीज नहीं है. आप देखिए पिछले दिनों त्रूफो की डेथ हुई. रिचर्ड बर्टन की डैथ हुई. उनके सामने भी तो उनका मृत्युबोध था. और वे तो एकदम टॉप पर थे. त्रुफो ने तो किसी से कहा ही नहीं कि मुझे कैंसर है. . .'ही डाइड विदिन वन मंथ.'

▣ मान लीजिए आपको यह पता लग जाता है कि एक खास समय के भीतर आप मर जायेंगे. . .तो कौन-सा काम ऐसा होगा, जो आप चाहेंगे कि पूरा कर जायें. . . ?

मैं कुछ नहीं चाहूंगा. मैं इंजॉय करूंगा. एक दारू की बोतल ले आऊंगा और आराम से बैठूंगा. जायें सब भाड़ में. जब अभी तक मैं वह सब नहीं कर पाया जो मुझे करना था, तो अब क्या क्या करूंगा. मुझसे एक सवाल लोग हमेशा पूछते हैं कि 'मेरे बाद मेरी रायल्टी का क्या होगा ?' मैं बताता हूं उन्हें कि जीते जी तो मैं ले नहीं पाया. . . मरने के बाद क्या लूंगा ? मैं परेशान नहीं होता. भागने वाली बात मेरे बचपन से मेरे साथ रही है. . . जैसे एक पागल कुत्ता मुझे काटने आये. . . तो मैं उससे लड़ूंगा नहीं, अपने आपको बचाने की कोशिश करूंगा. मैंने किस कीमत पर अपने आपको बचा रखा है, यह मैं जानता हूं. कंपोज खाकर सो गये. सुबह उठे, अपने काम में लग गये. मैं अपने आपको फुर्सत नहीं देना चाहता. फालतू बातों के लिए. . . न मृत्युबोध है, न अब आत्महत्या वाला बोध रह गया है. □

जीवन को जानना जरूरी है।

▣ मार्कंडेय

कथाकार के लिए उस जीवन को जानना अत्यंत जरूरी है जिसके बारे में वह लिखता है. रही बात जानकारी के भिन्न स्तरों की तो एक जानकारी यह भी हो सकती है कि आप किसी जाति विशेष की जीवन परंपरा, रीति-रिवाज, बोल-चाल को पुस्तकों में पढ़ लें और उसे किसी कहानी का आधार बना लें. निश्चय ही ऐसी रचना निष्प्राण होगी और वह कोई रचनात्मक स्तर प्रस्तुत नहीं कर सकेगी. कथानक में तो रचनाशीलता के दर्शन तभी होते हैं, जब संदर्भित समाज से रचनाकार का तादात्म्य होता है. उसकी आकांक्षाएं कथानक से जुड़ी होती हैं. संवेदनाओं का आदान-प्रदान होता है. संसार की जो भी महान कृतियां समय की सीमाओं को लांघकर जीवित हैं, वे लेखक से अत्यन्त गहराई से जुड़े हुए जीवन पर ही आधारित हैं. अनुभव प्राप्त करने की स्थिति और अनुभव होने की स्थिति में अंतर है. लेखक इस बात का निणय लेकर, झोला उठाकर किसी अपरिचित जीवन संदर्भ में परिचय प्राप्त करने के लिए जाये और वहां एक सहज रचना का आधार पा जाये, यह उसकी अपनी क्षमता पर निर्भर करता है. स्वाभाविक और सहज तो यही है कि वह अपने परिचित संसार को ही निरंतर व्यापक करता रहे और उसे अपनी रचना का आधार बनाता रहे. ▣

—'प्रतिमान,' अंक : चार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाजायज कब्जा

यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र'

महत्वपूर्ण क्या है—अधिकार या कब्जा? कब्जा जमाना या कब्जा हटाना! इनमें से क्या उचित है और क्या अनुचित? क्या करना चाहिए और क्या नहीं? नाजायज कब्जे के इर्द-गिर्द स्त्री और जमीन को लेकर ऐसे ही तमाम सवालों का खुलासा करती मार्मिक कथा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब कभी भी वह नाजायज कब्जों पर बुलडोजर चलवा कर आता था तो उसे एक अजीब-सा सुख भीतर ही भीतर मिलता था. हालांकि प्रकट में वह बड़ी नाटकीयता से अपने होंठों पर थूक की चिपचिपाहटभरी चमक और आकृति पर बनावटी उदासी लाकर कहता था, "यह साली ड्यूटी भी अजीब बला है, इसके प्रति ईमानदार न रहो तो आत्मा कचोटती है और रहो तो दिमाग अजीब पीड़ा से घिरा रहता है. जरा सोचिए. . . किसी के जमे-जमाये घर को उजाड़ना कितना बड़ा अनर्थ-अन्याय है?. . . पर ड्यूटी. . . यह भी तो आदमी का एक धर्म है. वस्तुतः मेरे लिए यह ड्यूटी एक धर्मसंकट है."

और जैसे ही वह अपने घर में घुसता, अपने पम्मी कुत्ते को गोद में लेकर अपनी सब्जी काटती हुई पत्नी को गर्व से कहता, "डार्लिंग, इसे कहते हैं साहसी आदमी. साहसी क्या, दुस्साहसी. एक आला डिमोलेशन आफिसर. इस देश के लोग कितने बदमाश होते जा रहे हैं? बीच सड़क पर कब्जे कर लेते हैं. आज जब मैं गांधी रोड पर सशस्त्र पुलिस के साथ पहुंचा, तब भीड़ ने हम पर पथराव किया, गालियां दीं. . . पर मैंने अपना बुलडोजर चलवाकर अपनी ड्यूटी को पूरा किया. ड्यूटी इज गॉड. . . अरे डार्लिंग," उसने पम्मी का चुंबन लिया और सब्जी काटती हुई बीवी से झल्लाहटभरे स्वर में कहा, "तुमको लाख बार कह चुका हूं कि मैं जब घर आऊं, तब तुम सब्जी मत काटा करो, पर तुम ऐसी हो कि सब्जी काटती हुई ही मिलती हो! मंदा, तुम मेरी अभिरुचि के विरुद्ध काम क्यों करती रहती हो?"

उसकी पत्नी का नाम मंदाकिनी था, जिसे योगेश मंदा कहता था.

"तुम ठीक छह बजे आते ही क्यों हो?" मंदा पलकें ऊंची करके उसे सप्रश्न देखती और कहती, "जानते नहीं, यह मेरे सब्जी काटने का समय है. . . और तुम यह भी जानते हो कि मुझे एक कंप्यूटर की तरह काम करने में ही आनंद आता है. फिर तुम्हारे पांच बच्चे ठीक सात बजे खाना मांगते हैं. उन्हें एक क्षण का भी धैर्य नहीं."

"आदमी और कंप्यूटर?" वह बुदबुदाया.

"जी कंप्यूटर. . . आज कुछ नया एडवेंचर किया है श्रीमान ने?" बात को बदलते हुए मंदा ने कहा.

"नहीं."

"क्यों?"

"मेरा अभियान आज खत्म हो गया."

"इस देश में कोई भी अभियान खत्म नहीं होता है. एक सिलसिला यदि शुरू हो गया, फिर उसका अंत नहीं. जैसे नाजायज कब्जों का सिलसिला. यदि तुमने गंभीरता से सोचा-समझा और देखा हो तो नाजायज कब्जा करके घर बसानेवाले भी कभी टूटते नहीं, कभी पराजित नहीं होते, बल्कि वे तुरंत दूसरी जगह अपना सिलसिला शुरू कर देते हैं. यह उनकी बुनियादी जरूरत है—एक परिवार के लिए एक मकान. . . बुनियादी अधिकार के लिए लड़ाई जारी रखी जा सकती है."

वह झुंझला उठा. नाराजगी प्रकट करता हुआ रूखे स्वर में बोला, "तुम्हें कुछ भी मालूम नहीं है, इस सिलसिले के पीछे सच्चाई क्या है. दरअसल कुछ पेशेवर लोग ये कब्जे करते रहते हैं और फिर उन्हें बेचते रहते हैं. यह एक बिजनेस हो गया है, पर इधर हमारी सरकार बड़ी सख्त हो रही है. वह काफी सतर्कता से काम ले रही है. .. दनादन नाजायज कब्जों को हटा रही है."

"आपकी सरकार?" मंदा ने ऐसा मुंह बनाया, जैसे उसकी जीभ पर इन शब्दों के साथ कसैलापन तैर आया हो. वह व्यंग्य में फस से हंसकर बोली, "आपकी सरकार जैसी उदासीन और अंधी सरकार मैंने तो नहीं देखी. मेरे देखते-देखते यमुना पुल के पास की दीवारों से सटकर मजार और मंदिर बन गये और बनते जा रहे हैं. . .क्या यह नाजायज कब्जे नहीं? कल ये ही सांप्रदायिक दंगों के कारण हो जायेंगे? क्या सरकार की आंखें हैं? सुना है कि कानून अंधा होता है, पर मुझे तो सरकार भी अंधी ही लगती है."

योगेश ने खिसियाकर कहा, "हां. . हां. . ये नाजायज कब्जे हैं. लेकिन . . . लेकिन. . . ."

वह तड़ाक से बोली, "यदि तुम अपने आपको तीसमारखां समझते हो तो उन्हें हटाओ. . . मैं जानती हूं कि तुम नहीं हटा सकते. . . मंदिर, मजार. . . को हटाने के लिए पवित्र आत्मा और सच्चाई की जरूरत होती है और तुम. . . तुम. . ."

उसकी आकृति तांबे की तरह चमकने लगी. आंखों में से प्रश्न तीर की तरह निकलकर उसके भीतर घुस गया.

"तुम यह कहना चाहती हो न कि मैं पापी आदमी हूं? मैं. . .मैं. . . मंदिर-मजार नहीं हटवा सकता?"

वह खिलखिलाकर हंस पड़ी. बोली, "योगेश, तुम सचमुच में कमजोर आदमी हो. सुनो, इस तरह घबरा जाओगे तो सारी सच्चाइयां नंगी हो जायेंगी. तुमने सेठ इमरतीलाल का बरामदा क्यों नहीं तुड़वाया? मंदिर-मजार बहुत बड़ी बात है."

"पता नहीं तुम क्यों मुझे कोंचती रहती हो?. . . शादी को दस साल बीत गये. इन दस सालों में तुमने कभी भी मुझे संपूर्ण समर्पण नहीं किया. हाड तुड़वाकर भी तुम अपनी जिद्द, कुतर्क और कोंचने की प्रवृत्ति नहीं छोड़ती हो."

"यह तो मेरी नियति है." मंदा ने साफ-साफ कहा, "मैं अहिल्या जो नहीं हूं. मुझे एकदम पत्थर नहीं बनाया गया है. दिमाग सोचता है, इसलिए लड़ती हूं."

"अहिल्या. . . अहिल्या ही हो." योगेश ने झट से कहा. उसकी आंखों में वेदना तैर उठी. आकृति पर खुरदरा आक्रोश चमक उठा. वह तुनककर बोला, "अहिल्या तो पत्थर हो गयी थी. . . पर-पुरुष के प्रेम करने के फलस्वरूप पत्थर. . .कहां उसे पतिव्रत धर्म बचा पाया? सतीत्व का धर्म उसकी मर्यादा को भंग होने से रोक नहीं पाया?. . . एक आम औरत की तरह वह भी भोग ली गयी. सब कुछ वासना के वशीभूत हो गया. . . फिर राम के स्पर्श से उद्धार. मैंने भी तो अपने स्पर्श से तुम्हें एक इज्जत की जिंदगी दी है, वर्ना. . ."

"तुम्हारा स्पर्श. . .?" उसने बिफरकर कहा, "तुम्हारा स्पर्श मेरा उद्धार नहीं, मेरा बंधन है, एक कैद है. एक अत्याचार है."

"मंदा!" वह चिहुक पड़ा. उसके चिहुंकने का ढंग भी अद्भुत था, जैसे कुछ भीतर घुटता हुआ बाहर निकला हो. जैसे उसकी पीठ में यकायक किसी ने छुरा भोंक दिया हो.

वह पथरीला हो गया. एक अजीब-सी घृणा थी उसके चेहरे पर, जो विवशता से ढंकी-ढंकी थी.

"चीखो मत!. . . हमें सारी जिंदगी इसी तरह बितानी है. एक दूसरे की एक चमकदार हिंस्रता को भोगते हुए."

"मैं. . .मैं. . .मैं. . ."

"बोलो, मैं एक सख्त व क्रूर रिश्वतखोर डिमोलेशन अफसर हूं. नाजायज कब्जों को हटाने वाला. . . एक फर्जपाबंद अफसर, पर तुमने मेरे आत्मलोक पर कितने नाजायज कब्जे बना रखे हैं. . . ये केवल मैं जानती हूं. पूरे दस साल से. . .एक-एक पल के कब्जे. . .ओह!"

योगेश अपने कमरे में चला गया, मंदा बुदबुदाती-बुदबुदाती रो उठी. आंखों में गीलापन तैर आया. फिर आंसू ढलक पड़े.

उसके पांचों बच्चे स्कूल गये हुए थे, इसके कारण गहरा अटूट सन्नाटा छा गया था.

योगेश अपने कमरे में से ही जोर से चिल्लाया, "मुझे चाय चाहिए!"

वह निरुत्तर रही.

फिर वही तनावभरा सन्नाटा.

योगेश बाज की तरह झपटता हुआ मंदा के पास आया और चांटा जमाकर, चीखकर बोला, "मैंने चाय मांगी थी, सुना नहीं तुमने?"

"मैं अभी चाय नहीं बनाऊंगी."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या?" वह अवाक रह गया और उसकी आंखों में अपमानजनित क्रोध चमक उठा.

वह दांत पीसकर फिर बोला, "तुम्हारी यह मजाल कि तुम मेरी आज्ञा को न मानो? मैं योगेश, एक डिमोलेशन आफिसर. . . नाजायज कब्जों को हटानेवाला. . . समझी! तुम्हारे भीतर वही बीमारी है, जो तूने नाजायज कब्जा करनेवालों के बारे में बतायी थी. . सिलसिला. . . न मिटनेवाला सिलसिला, तुमने शुरू कर रखा है. पांच दिन के बाद थप्पड़-घूंसे खाना."

वह फिर पत्थर की बनी रही.

"मैं पूछता हूं कि चाय बनाओगी या नहीं?" वह गुर्राया.

उसने नकारात्मक सूचक सिर हिला दिया.

वह उस पर पिल पड़ा.

न जाने क्यों योगेश को लगा कि वह कोई घर ढहा रहा है. किसी झोंपड़ी को नष्ट करके उसके घासफूस को बिखेर रहा है और उसकी यह भावना और प्रगाढ़ तब हुई, जब मंदा ने कोई अवरोध-विरोध नहीं किया. एकदम निस्पंद और निःशब्द बैठी रही वह.

वह सहसा रुक गया. आंखें फाड़-फाड़कर मंदा को देखने लगा. मंदा की आकृति पर ढीठता और अपार करुणा थी. बाल बिखर गये थे, जिससे उसके चेहरे पर पागलपन की रेखाएं नाचने का भान करा रही थीं.

वह थूक निगलने की मुद्रा बनाकर विद्रूपता से बोली, "यह घर कभी नहीं ढहेगा डिमोलेशन आफिसर साहब! यह नाजायज कब्जा साबुत ही रहेगा."

वह बदहवास-सा इधर-उधर चहलकदमी करके बोला, "तू कुछ भी कह, कितना भी सता, कितना भी असहयोग कर, मैं तुझे नहीं छोड़ूंगा. . ." वह सन्निकट आकर अपने शब्दों को घृणा व रोष से चबाता हुआ पुनः बोला, "मैं. . .मैं तुझे पाना चाहता था. . . तुझे पा जाना मेरे जीवन की सफलता थी, उद्देश्य था. मंदा मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता. . . यह कब्जा नहीं हटेगा. . . कतई नहीं हटेगा. . . समझी!"

और योगेश बाहर निकल गया.

उसे अपने पांचों किशोर बच्चे रास्ते में मिले. वे दूरस्थ स्थित स्कूल से आ रहे थे. उसकी लड़की मेघा ने उससे लगभग लिपटते हुए कहा, "पापा. . . पापा कहां जा रहे हैं?"

वह झुंझलाकर बोला, "जाओ, घर पर मम्मी इंतजार कर रही है."

जबकि मम्मी घर में आंसू बहा रही थी. वह न तो बच्चों का इंतजार कर रही थी और न उनके बारे में सोच ही रही थी.

योगेश घूमता-घामता एक रद्दी रेस्तरां में पहुंच गया, जहां एक पेशेवर औरत बैठी-बैठी अपने पार्टनर से भद्दी-भद्दी बातें कर रही थी. जब उसने अपनी बातों के नंगेपन को हद से बाहर कर दिया तो वह अपना प्याला लेकर एक पेड़ के नीचे बने चबूतरे पर चला गया और चाय पीने लगा. चाय पीते-पीते उसे कुछ याद आने लगा.

योगेश मंदा पर कालेज जीवन से ही आसक्त था और उससे शादी करके उम्र भर के लिए पाना चाहता था. और मंदा किसी और को प्यार करती थी, लेकिन अपनी योग्यता, खानदान और सभी तरह की क्षमताओं के बलबूते पर वह मंदा को पाने में सफल हो गया. उसे याद है कि मंदा ने उससे कहा था कि वह किसी और से प्रेम करती है, वह अपने प्रेमी की पत्नी बनना चाहती है. . . इस पर योगेश ने झूठ ही कहा कि वह भी उसे बेइंतहा प्यार करता है, जबकि वह केवल उसके अतुल सौंदर्य को चाहता था.

"पर मैं नहीं करती." मंदा ने दृढ़ता से कहा.

"क्यों नहीं करती?"

"तुम मुझे पसंद नहीं हो." उसने स्पष्ट रूप से कहा.

"पर मैं तुम्हें पसंद करता हूं."

"क्यों?"

"तुम बहुत सुंदर हो और मुझे एक सुंदर पत्नी चाहिए, जिसे मैं घर में घुसते ही देखूं तो प्रसन्न हो जाऊं. जिसके हाथ से खाना खाते हुए मुझे एक मिठास का एहसास हो और जिसके साथ रात को सोऊं तो लगे कि. . ."

"पर मन. . ."

"मन भीतरी चीज है. भीतरी चीज की कोई सार्थकता नहीं. मुझे तुम्हारी जरूरत है. मैं केवल तुम्हें चाहता हूं. तुम कितनी सुंदर हो!"

"क्यों मेरी जिंदगी बरबाद करने पर तुले हो?"

पर वह नहीं माना. उसने एक ऐसा जाल फैलाया कि मंदा सामाजिक क्रांति की बजाय समझौता कर बैठी. एक धौंसजनित समझौता कि यदि वह शादी नहीं करेगी तो उसके मां-बाप आत्महत्या कर लेंगे. वह इन विसंगतियों स्थितियों को नष्ट नहीं कर पायी और उसी दलदल में धंस गयी. शायद यह संस्कारों का आतंक था या कहीं न कहीं उसकी भीतरी ऊब और टूटन. इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वह सामंती व्यवस्था से वैयक्तिक रूप से भी नहीं निकल पायी. हो गयी योगेश की. योगेश ने उसे अपने पद, जाति और धर्म के दबावों से जीत लिया. उसके शरीर पर नाजायज कब्जा कर लिया. उसे पत्नी बना लिया.

योगेश ने इसे अपनी महान विजय समझा. सुहागरात को परंपरागत वाक्यों के बासीपन को न उगलकर उसने दंभपूर्ण स्वर में कहा, "मैंने तुम्हें प्राप्त कर लिया. जानती नहीं, मैं एक आला अफसर हूं. तुम्हारी जाति व धर्म का हूं. और इस देश में जहां व्यक्ति या समूह सभी जगह परास्त हो जाता है, वहां अंत में वह भी जाति और धर्म के हथियार से जीत जाता है. . . और तेरा प्रेमी महेश, वह चुगद है, फटीचर है, बेकार और छोटी जाति का है. . . कहां माथुर और कहां भटनागर! . . . आओ हम सुहागरात मनायें."

"नहीं. . . मुझे हाथ मत लगाना." उसने तड़पकर कहा, "यदि मुझे जबरदस्ती छूने की चेष्टा की तो मैं अपनी जान दे दूंगी."

वह कुटिलता से मुस्कराया. फिर कंधे उचकाकर बड़ी नाटकीयता से बोला, "जान देने की कोई जरूरत नहीं. बस, इतना जान लो कि मैं तुम्हारा पति-परमेश्वर हूं."

और वह बाहर चला गया.

थोड़ी देर में उसकी सास आयी. उसने बड़े प्यार से कहा, "बहू, मुझे अपने बेटे की ज्यादतियों की अब जानकारी हो गयी है, परंतु अब तुम इसकी पत्नी हो. बड़े घरानों में लड़की एक बार ही पत्नी बनती है. उदास क्यों है?" उसने छूकर कहा, "अरे, तुम्हें तो हल्का बुखार है."

"मैं मर जाना चाहती हूं." वह चीखी.

"ना बेटी ना, ऐसा नहीं कहते. मैं कल तुम्हें अपने पीहर भेज दूंगी. कुछ खा लो, पी-लो. तुमने दिन भर कुछ भी खाया-पिया नहीं है."

योगेश नाटकीयता से भीतर घुसा और मां की बात का समर्थन करता हुआ बोला, "मां ठीक कहती है. मैं कल तुम्हें अपने पीहर पहुंचा दूंगा. लो, यह टेबलेट ले लो. . . अरे, ले लो न. प्लीज. . . कल, सचमुच. . . विश्वास करो."

और सुबह जब वह जागी तो वह अनावृत थी. गंदगी फैली हुई थी. वह पागलों की तरह चीख पड़ी, "मुझे नशीली दवा पिलाकर लूट लिया!" पर उसकी वहां से मुक्ति नहीं हुई. उसे एक कांटेदार घेराव में बंद कर दिया गया. फिर बस एक ही सिलसिला. बलात्कार. . .बलात्कार! न उसने उसे पीहर जाने दिया और न कहीं और. जब उसका बाप आया तो योगेश ने उससे कहा कि वह इस छिनाल को घर से बाहर कदम भी नहीं रखने देगा. . . अब यह मेरी पत्नी है और इस पर कापीराइट मेरा है."

उसके बाप की आकृति करुणा से पुत गयी. आंखें नम हो गयीं. वह थूक निगलकर कुछ कहना चाहता था, पर उसकी जबान लड़खड़ाकर रह गयी. उसने अपने को इतना अशक्त महसूस किया कि उसके जिस्म में न किसी तरह की हरकत आयी और न कोई जुंबिश, एकदम बुत.

योगेश ने लगभग उसे कोंचने की गरज से कहा, "तुम यहां आये ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

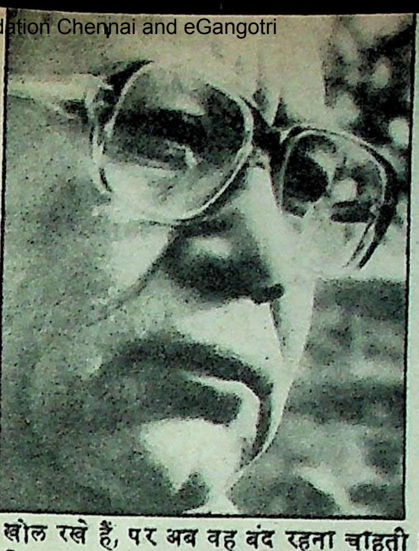

◘ यादवेंद्र शर्मा चंद्र

क्यों? मैं ऐसे गैरजिम्मेदार बाप को माफ नहीं कर सकता. इच्छा होती है कि तुम्हारे चेहरे को दरिंदा बनकर खरोंच डालूं."

इस बार उसकी जुबान खुली, पर बड़ी धीमी. वह बोला, "कौन कब अपराधी बन जाता है, यह कोई नहीं जानता. जानने की कोशिश भी नहीं की जाती. यदि कोशिश करके कोई सच जान ले तो उसे आश्चर्य-जनित अवसाद घेर लेगा, क्योंकि सत्य उसके विचारों के दायरे से भी विचित्र होता है. वस्तुत: अनुमानों के सहारे दौड़ना गलत है. तुम मेरी बेटी को लेकर व्यर्थ ही संदेहों के जाल बुनते रहते हो? यह मानसिक ग्रंथि है."

"ग्रंथि. . ." वह चौंककर बोला, "मेरे मन में कोई ग्रंथि नहीं है."

"फिर तुम्हारे भीतर अपने पेशे को हिंस्रता व क्रूरता है. तुम बीमार हो. ओह! मैंने सोचा था कि सजातीय दामाद पाकर मैं सही काम कर रहा हूं, पर सब कुछ गलत हो गया. मैंने अपनी बेटी को नरक में धकेल दिया."

उसने अपने पर लगाये गये आरोप को सुनकर आग्नेय नेत्रों से अपनी पत्नी के बाप को देखा. कुछ खा जाने की भावना थी उनमें.

मंदा के बाप को भी अपना दामाद एक भेड़िया लगा, हमलावर भेड़िया.

वह दरवाजे की ओर बढ़ता हुआ बोला, "तुम दूसरों के घरों को तोड़ते-तोड़ते अपना ही घर तोड़ने लगे हो. मगर मैं तुम्हें खबरदार किये देता हूं कि यदि तुमने मेरी बेटी को सताया तो मैं अदालत के दरवाजे खटखटाऊंगा ही नहीं, उन पर लातें मारूंगा."

और वह तीर की तरह निकल गया.

फिर धीरे-धीरे लगातार पांच बच्चों का बाप हो गया. हर बच्चे के जन्म पर वह खुशियां मनाया करता था और मंदा के कमजोर और दुर्बल होते हुए शरीर को देखकर वह एक हिंस्र प्रसन्नता से भर जाता था, जैसे वह जीतता जा रहा है. उसने देखा कि पांचवां बच्चा होते-होते मंदा के गले के पास वाली हड्डियां उभर आयी हैं और गाल धंस गये हैं. छातियां सूखकर पिचक गयी हैं और आंखों में हरदम एक पराजय की भावना तरल रूप से दीप्त होती रहती है. वह उसे कोंचने पर बाज नहीं आता था और अक्सर वह उसके अंग-अंग को अपनी अग्निमय सांसों से झुलसाकर आहत कर देता था. कहता था, "अब कोई दूसरा घर है तुम्हारे लिए! जाओ . . . भाग जाओ . . . यह दरवाजा खुला है!"

उसे अपने आप पर वितृष्णा-सी हो गयी थी. करती भी तो क्या? वह स्वयं इस क्रूर सत्य से परिचित थी कि भावनाओं व आकाशी बातों की पृष्ठभूमि में देह की प्राप्ति ही है. सौंदर्य के स्पर्श की लालसा ही है. अब उसके तन में न तो कुंदन-सी दीप्ति है और न यौवन को देने वाली तृप्ति. यदि कोई औरत किसी मर्द को झेल जाने की शक्ति से अपने को असमर्थ पाती हो तो उसे अपने मर्द के हाथों नहीं सौंपना चाहिए.

और योगेश महसूस करने लगा कि उसने उसे परास्त कर दिया है. एकदम कमजोर बना दिया है. वह भागकर अब कहीं भी नहीं जा सकती. इस चुसी हुई औरत को कौन अपने गले बांधेगा? कोठेवालियां भी नहीं खरीदेंगी. औरत का जवान और मांसल होना बहुत जरूरी है. निरंतर एक-एक वर्ष के बाद पांच बच्चे . . . बन गयी न खोह . . . कुतिया, घरघुसरी . . . ."

योगेश की चाय खत्म हो गयी थी. उसने देखा कि पेड़ की छाया ढलते सूर्य के कारण उससे दूर चली गयी है और उसका निचला अंग धूप के घेराव में आ गया है.

वह उठा. चायवाले को पैसे देकर आहिस्ता-आहिस्ता चल पड़ा, किंतु अतीत ने उसका पीछा नहीं छोड़ा. सोचने लगा कि मंदा भी विचित्र है, एकदम अद्भुत. अपनी धुनाई कराके भी वह हारती नहीं, लड़ती है. उसे कोंचती है. उसने उसे हरा दिया, यह उसका भ्रम है . . . एक मन को समझाने का बहाना है. उसकी छुरियां तो लगातार चलती ही रहती हैं . . .अब वह उससे मुक्ति के लिए कहता है, उसके लिए उसने दरवाजे खोल रखे हैं, पर अब वह बंद रहना चाहती है . . . कहीं उसने उसे ही शिकस्त न दे दी हो?

यह प्रश्न उसको बींध गया. उसके चेहरे पर गहरी उदासी छा गयी है. वह महसूस करने लगा कि कभी-कभी आदमी अपने को ऊंचाई के चरम शिखर पर खड़ा समझता है, पर वह वस्तुत: बहुत नीचे ही होता है, एकदम मतिभ्रम

"वो रहा साला जल्लाद . . . हमारे घर को तोड़नेवाला."

"अकेला है."

तड़ाक.

एक पत्थर आकर उसके सिर पर लगा. तर-तर खून बहने लगा.

उसने घबराकर उधर देखा कि एक भीड़ उसकी ओर बढ़ रही है. उनके हाथों में पत्थर हैं. वह सरपट भागा. वह भीतर से परास्त था.

पीछे से आवाज आयी, "भाग गया साला, दुम दबाकर भाग गया."

वह भागता-भागता अपने घर पहुंचा. उसका चेहरा खून की लकीरों से भयावह हो गया था. वह दरवाजे के बीच खड़ा था. चिल्ला रहा था, ". . . मंदा . . . मंदा . . . मंदा."

कोई उत्तर नहीं.

उसने एक भद्दी गाली दी. फिर वह भूखे बाज की तरह भीतर की ओर लपका. वह बदहवास था और अंटसंट बक रहा था.

तभी बड़े ही सहज ढंग से उसकी नयी-नयी बर्तन मांजने वाली नौकरानी बाहर निकली और चौंककर बोली, "यह खून कैसा?" काहे को बाबू पागल की माफिक चीखता है. बीवीजी बच्चों को लेकर सिनेमा गयी हैं."

"कौन से सिनेमा?"

"मैं नहीं जानती."

"ओह, साली को आने दे. जान निकाल दूंगा." उसने दोनों हाथों को आंतरिक उद्विग्नता से रगड़कर कहा.

"जान निकाल दूंगा? . . . किसकी जान निकाल देंगे आप? अपनी घरवाली की? दस साल तो हो गये हैं जान निकालते-निकालते. अरे! निकालने वाले और ही होते हैं? आप तो दूसरों के जमे जमाये घर तोड़ सकते हो, पर अपना सड़ा हुआ घर भी नहीं तोड़ सकते. बीवीजी ने हमें सब कुछ बता दिया है . . . अरे, क्यों जुल्म करते हैं? . . . खैर, आज कल में मेरा हिसाब कर देना. मैं इस कसाईबाड़े में अब नहीं रह सकती. तीस दिनों में ही ऊब गयी. राम . . . राम. कैसे हैं आप लोग? छि: छि: . . ."

और वह बिना हाथ धोये ही चली गयी.

वह खड़ा रहा. क्रोध में उसका चेहरा ताम्रवर्णी हो गया. जबड़े खिंच गये. मुट्ठियां बंध गयीं.

उसने आव देखा, न ताव. मंदा की टंगी हुई तस्वीर को उतारा और उस पर घूंसे बरसाने लगा. उसके हाथ में कांच की किरचें चुभ गयीं. लहू बह निकला. अब तस्वीर उसके चेहरे की तरह लहूलुहान थी. □

● आशा लक्ष्मी, नया शहर, बीकानेर-334001 (राजस्थान.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके घर के पिछवाड़े के प्लाट की चहारदीवारी गिर गयी थी. ईंटें यहां वहां बिखरी थीं. मैं कई दिनों से देख रहा था कि वे ईंटें जहां की तहां हैं और वह औरत अपने घर के पिछवाड़े वाले गेट पर खड़ी होकर कुछ देर कुछ निहारती थी फिर चुपचाप अंदर लौट जाती थी. उसके चेहरे पर एक स्तब्ध जड़ता जमी हुई थी. मैं हैरान था. दो महीने बाद मैं प्रवास से लौटा था. इस बीच इस औरत का सारा उत्साह कहां उड़ गया.

इस अनधिकृत मुहल्ले में जब मैं आया तो बहुत कम मकान बने थे. मेरा मकान बनने के बाद उस औरत ने भी अपना मकान बनवाना शुरू किया था. मकान क्या था, बस, मकान का ढांचा था. अनधिकृत मुहल्लों में मकान ऐसे ही बनते हैं. सस्ती जमीनें लेकर लोग छोड़ देते हैं. जमीन लेने वालों में कुछ व्यापारी होते हैं जो जमीन का भाव बढ़ने का इंतजार करते हैं, कुछ मध्य या अल्पवित्त के लोग होते हैं जो पॉश मोहल्लों में जमीन नहीं ले सकते और न एक साथ मकान बनवा सकते हैं. बस, धीरे-धीरे टुकड़ों में मकान बनवाते हैं. कुछ लोग अपने प्लाट के चारों ओर एक कच्ची-सी चहारदीवारी खिचवा देते हैं ताकि प्लाट पर उनका अधिकार बना रहे. वे चहारदीवारियां गिरती रहती हैं. कभी लोग आने-जाने के लिए या निपटने के लिए दीवारें तोड़ देते हैं, कभी वे बरसात में अपने आप गिर जाती हैं. उस औरत के मकान का ढांचा बन गया था और उसका सौभाग्य था कि उसके आसपास मकान नहीं थे, केवल कई प्लाटों की चहारदीवारियां थीं. वह औरत ताक-तूक कर उन दीवारों की ईंटें उखाड़ती रहती थी और यदि कोई दीवार गिर गयी तो उसकी सारी ईंटें रात भर में साफ कर जाती थी—अपने बच्चों के साथ मिलकर. आसपास कहीं किसी का स्टोन डस्ट या रेत पड़ी होती तो धीरे-धीरे उसे भी साफ करती रहती. छोटे-छोटे कामों के लिए मिट्टी खरीदने की भी जरूरत नहीं पड़ती, वह पास के प्लाटों को खोद-खोदकर मिट्टी निकालती रहती. कभी-कभी किसी प्लाट का गेट साफ हो जाता तो मैं उसी की करतूत समझता. मैं, पत्नी और मेरे बच्चे छत पर खड़े होकर उसकी ये हरकतें देखते रहते. बच्चे हंसते—'वो देखो, आज उस प्लाट की शामत आयी हुई है.' लेकिन पत्नी और मैं क्रोध से बड़बड़ाते... 'कैसी औरत है जो दूसरों का प्लाट बरबाद कर रही है और माल चुरा-चुराकर अपना मकान खड़ा कर रही है.' फिर अपने क्रोध को शमित करने के लिए तर्क ढूंढ लेते, 'ठीक ही तो कर रही है, ससुर लोग प्लाट छेंका-छेंकाकर घर बैठे हुए हैं और इंतजार में हैं कि खूब दाम बढ़ जायें तो प्लाट बेच देंगे. यानी हम लोग उनके प्लाटों की कीमत बढ़ाने के साधन हैं, हम उनके रखवाले हैं. चलो, वह औरत ठीक ही कर रही है.' वह औरत जब भी पिछवाड़े से निकलती दीखती, हम मजाक में कहते, 'निकली-निकली, किसी के प्लाट की शामत आयी.' और उसने धीरे-धीरे अपने मकान के ढांचे को एक कामचलाऊ मकान में परिणत कर लिया.

छत पर पत्नी भी आ गयीं. बोलीं, "क्या देख रहे हैं बहुत तन्मय होकर?"

"मैं उस औरत को देख रहा हूं और सोच रहा हूं कि उसके पिछवाड़े इतनी सारी ईंटें गिरी हुई हैं, वे अब तक सही-सलामत कैसे हैं?"

"बेचारी!" पत्नी ने दर्द भरे स्वर में कहा. मैंने पत्नी के चेहरे की ओर देखा. मैं सोचता था कि वे मेरे कथन पर हंसेंगी, मजाक बनायेंगी लेकिन उनका चेहरा तो व्यथा से तरल हो आया था.

"बेचारी? यह बेचारी कब से हो गयी?"

"बेचारी तो पहले से ही थी, हम इसे नजदीक से जानते नहीं थे, केवल दूर से देखते थे और मजाक करते थे."

"अब तुमने नजदीक से जान लिया क्या?"

"कुछ-कुछ तो जान ही लिया और अब तो और बेचारी हो गयी है."

"हां, कुछ बात तो है क्योंकि मैं उसे कई दिनों से देख रहा हूं... उदास-उदास, खामोश-खामोश पिछले दरवाजे पर आती है, खड़ी रहती है और लौट जाती है."

"जिसकी नवविवाहिता लड़की को जलाकर मार दिया गया हो वह और क्या हो सकती है?"

"क्या हुआ, यह तुम क्या कह रही हो?"

"आप दो महीने बाद आ रहे हैं न, इस बीच यहां बहुत कुछ हुआ. उस बहुत कुछ में सबसे दर्दनाक हादसा है, इसकी लड़की की हत्या!"

वह औरत

रामदरश मिश्र

किसी के दुख को जानना क्या इतना सरल होता है कि देखा और जान लिया...? जिंदगी में एकाएक क्या हो जाता है ऐसा कि सारा उत्साह पलभर में उड़न छू हो जाये...? जाने-माने कथाकार-कवि और उपन्यासकार रामदरश मिश्र की कहानी—

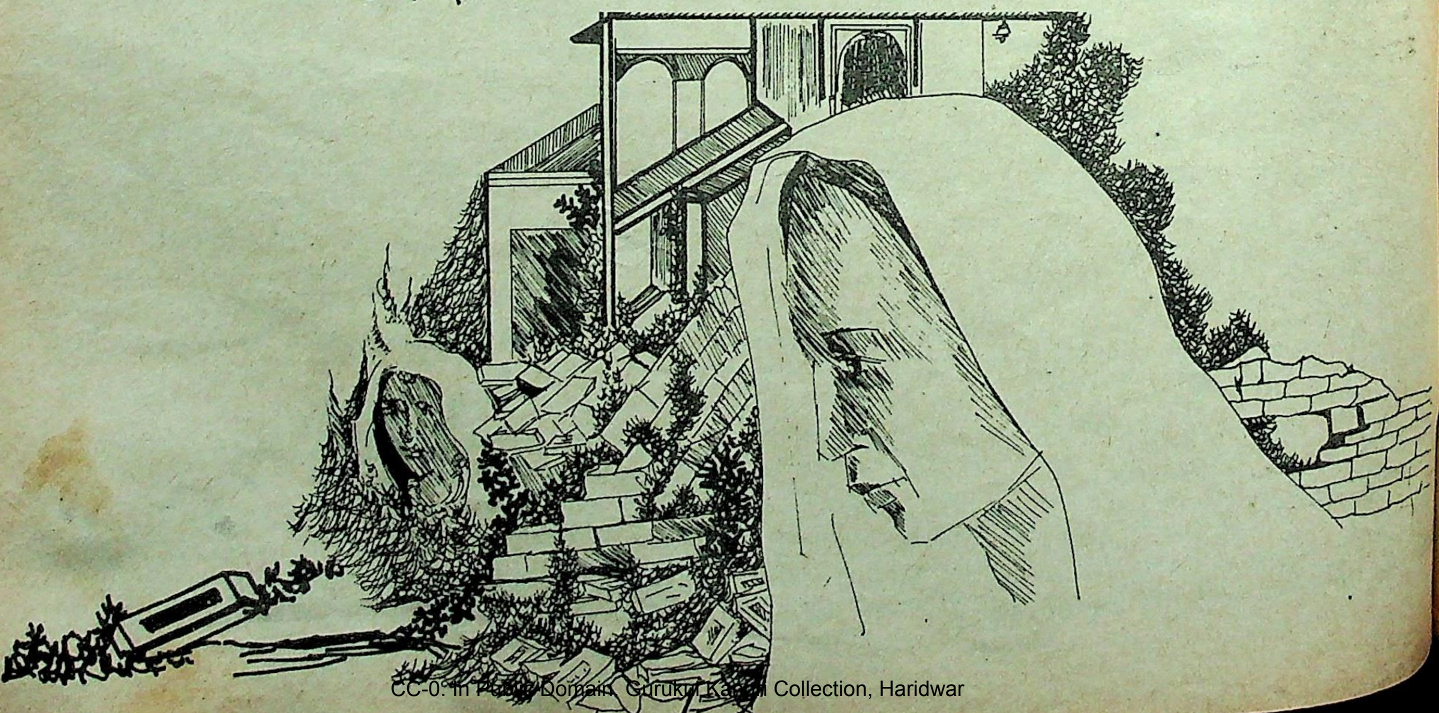

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या हुआ, कुछ बताओ तो सही."

"लोग दूर से कैसे लगते हैं. अगर उनकी दुनिया में प्रवेश करो तो वे कुछ और दिखायी पड़ने लगते हैं. दूर से हम जिन पर हंसते हैं, जिन्हें कुरूप समझते हैं, उनके करीब जाइए तो हम व्यथा से मर जाते हैं और उनकी बाहरी कुरूपता हममें सहानुभूति जगाने लगती है. आदमी की दुनिया कितनी जटिल है? है न?"

"हां, है तो सही, लेकिन तुम कुछ बताओ तो सही."

"इसकी लड़की की शादी थी. वह पहली बार मेरे घर आयी थी, शादी का निमंत्रण देने. मैं शादी से पहले ही एक दिन उसके घर पहुंची. उसने बड़े प्यार से स्वागत किया, "आओ बहनजी, हमारे धन्न भाग कि आप मेरे घर आयीं." फिर उसने वे सामान दिखाने शुरू किये जो लड़की को दिये जाने थे—टी.वी. सोफा सेट, बर्तनों के सेट और कपड़े-लत्ते. यह भी बताया कि पंद्रह हजार नकद दे रही हूं. कुल मिलाकर चालीस हजार दे रही हूं बहनजी."

"बहुत दे रही हैं आप."

"क्या करूं बहनजी, लड़की की खुशी के लिए यह सब कुछ कर रही हूं. आप लोगों को दुआ से लड़का अच्छा मिल गया है. लड़की सुखी रहे, इसी में अपना सुख है. अपने दिन तो जैसे अब तक काटे हैं काट लूंगी, लड़की को वे दिन न देखने पड़ें जो मुझे देखने पड़े हैं."

मैंने देखा उसकी आंखें भर आयी हैं. उसने आंचल से आंसू पोंछ डाले. मुझे लगा कि कोई बहुत गहरा दर्द है जो छलछला आया है. बोली, "बहनजी, मैं मरद के रहते हुए भी विधवा हो गयी. वह कमीना दूसरी औरत कर बैठा. उसे उसने सदर बाजार में रख छोड़ा और मैं मोती नगर में थी. पहले तो मुझे पता ही नहीं चला लेकिन जब वह रात-रात भर गायब रहने लगा और दुकान की कमाई घर आना बंद होने लगी तो मैंने उससे पूछा, झगड़ा किया और आखिर में वह गुस्से में मुझे पीटने लगा और कबूल कर लिया—'मैंने दूसरी औरत रख ली है; तुझे मेरे साथ रहना हो तो रह, नहीं तो कहीं और चली जा! तेरे में क्या है—न रूप, न रंग, न बाप के यहां से दहेज ही लेकर आयी.' मेरे तो होश उड़ गये, क्या करूं, क्या न करूं? लड़की पांच साल की थी और लड़का तीन साल का. उस अभागे पर उसकी नयी नवेली ने ऐसा जादू कर रखा था कि वह बच्चों को भी मारने-पीटने लगा. हम भूखों मरने लगे, बच्चे फटेहाल घूमने लगे."

"ऊबकर मैंने एक दिन घर छोड़ने का फैसला ले लिया. सोचा था, वह बच्चों को मेरे साथ नहीं जाने देगा, लेकिन उसी ने खुद कहा—'जाती हो तो अपने इल्ले-पिल्ले भी साथ लेती जाओ. इनकी परवरिश कौन करेगा?'

"मैं उन्हें लेकर अपने मायके चली गयी. भाई बहुत अच्छे थे लेकिन भाई पर कोई कब तक बोझ बन सकता है. मैं खुद कुछ करना चाहती थी. मैं अपढ़ थी इसलिए घरेलू काम करने के सिवा और क्या कर सकती थी. बेबस होकर मैं कई घरों में चौका-बरतन का काम करने लगी. भाई के मोहल्ले में ही एक छोटा-सा कमरा ले रखा था. कुछ पैसे हुए तो एक छोटी-सी चाय की दुकान खोल ली. बहनजी, भगवान की दया से खाने-पीने का काम चलता गया, बच्चों को पढ़ाया-लिखाया भी. दोनों बच्चे इंटरेंस हैं. भाई ने इस मोहल्ले में जमीन ली, मुझसे भी कहा—मैंने भी दो हजार में दो सौ गज जमीन ले ली. सस्ती थी, सपर गया. सौ गज जमीन बेच दी, लड़की की शादी के लिए. भगवान भला करे उस नेक भाई का जिसने जिद करके यह जमीन खरिदवा दी थी. जैसे-तैसे एक छोटा-सा मकान भी उठवा लिया. मकान क्या है बहनजी, सिर छुपाने के लिए एक छत तैयार कर ली. अपनी बिसात मकान बनवाने की कहां है?"

पत्नी ने एक विराम लिया फिर बोलीं, "वह औरत कितनी खुश थी कि उसकी बेटी को अच्छा घर वर मिल रहा है और वह अपनी औकात के बाहर जाकर दहेज दे रही है. उस दिन अद्भुत कृत-कृत्यता का भाव उसके तन-मन से फूट रहा था. शादी बहुत धूम-धाम से हुई. वीडियो फिल्म भी बनी. शादी के बाद कई बार मुझसे मिली और आंखों में आनंद का ज्वार संभाले कहती रही, "बहनजी, भगवान ने मेरी सबसे बड़ी मुराद पूरी कर दी. लड़की सुखी परिवार में चली गयी. यह भी सुख है कि मैंने अपने कमीने मरद को बेटी की शादीकी सूचना तक नहीं दी." पत्नी चुप हो गयीं.

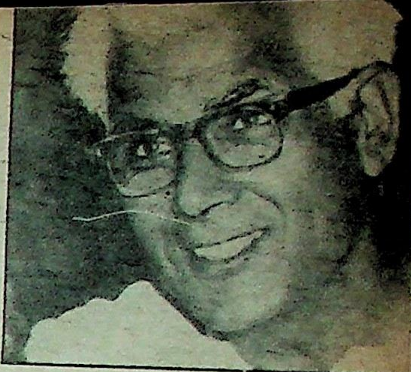

● रामदरश मिश्र

"यह तो बहुत अच्छा हुआ." मैंने संतोष के भाव से कहा.

"हां, अच्छा ही कहना चाहिए कि वह बहुत दिन तक कष्ट भोगने से बच गयी."

"क्या मतलब?" मैं पत्नी की इस उलटबांसी से चौंका.

"मैं एक दिन शाम को उधर से आ रही थी तो देखा उसके घर के सामने भीड़ जमा है. पूछा तो मालूम हुआ कि उसकी लड़की जलकर मर गयी."

"क्या?" मैं चौंका जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो.

"हां, जलकर मर गयी."

"या जलाकर मार दी गयी."

"एक ही बात है. ससुराल वालों की भाषा में खाना बनाने समय उसकी साड़ी में आग लग गयी लेकिन दुनिया जानती है कि क्यों सास या ननद की साड़ी में आग नहीं लगती, खाली बहू की साड़ी में लगती है."

"हे प्रभू, क्या हो गया जमाने को!"

"जमाने को नहीं तुम्हारे पुरुष समाज को."

बात सही थी. इसे मैं स्वयं हजार बार दुहराता रहा हूं लेकिन एक नारी की ओर से यह आरोप आया तो मेरा पुरुष-अहं फनफना उठा, "क्यों पुरुष क्यों? क्या सास पुरुष होती है? ननद पुरुष होती है? ये ही सब तो आग लगाती हैं."

"ठीक कह रहे हैं आप. औरतें औरतों का पक्ष लेने लगें तो पुरुष क्या कर लेगा? पुरुष तो बाहर रहते हैं, चौबीस घंटे तो ये ही घर में रहती हैं और बहू को कोंचती-लताड़ती रहती हैं और मरदों के घर आने पर उनके कान भरती हैं."

"फिर क्या हुआ?" पत्नी ने मेरे पुरुष-अहं को निरुत्तर कर दिया था.

"फिर होना क्या था? उन शरीफ लोगों ने लड़की को जलाकर यहां सूचना भी नहीं दी थी. वह तो उसकी एक सखी ने यहां किसी को फोन किया तो मालूम पड़ा. यहां से लोग वहां पहुंचे तो लड़की का दाह-कर्म हो चुका था. थाने में रपट लिखायी गयी और वही सारी प्रक्रिया. थाना, कचहरी, नेता सबके चेहरे तो जाने-पहचाने हैं. कुछ दिन सरगर्मी रहती है, फिर सब कुछ ठंडा पड़ जाता है. अखबार, संस्थाएं, अड़ोसी-पड़ोसी कुछ शोर मचाते हैं पर कब तक?"

पत्नी चुप हो गयीं और उस औरत को देखने लगी.

"हां, फिर सब कुछ ठंडा हो जाता है. यही यहां भी हुआ होगा." मैंने कहा.

"सब कुछ ठंडा हो जाता है लेकिन मां की वेदना की आग तो ठंडी नहीं होती. वह पहले तो हाहाकार करके जलती है, फिर धीरे धीरे खामोश होकर जलती है."

पत्नी की आंखें छलछला आयीं. लगा जैसे उनके भीतर का सार्व-भौम मातृत्व जाग उठा है.

"मैं कई दिन तक तो उस औरत के पास नहीं गयी. मेरी हिम्मत नहीं होती थी उसका सामना करने की. आखिर एक दिन गयी तो वह

. . पृष्ठ 67 पर जारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली कहां है?

महीपसिंह

लाहौर की सड़कों पर घूमना भी एक अजीब अनुभव है. व्यक्ति अकेला हो तो यह अनुभव और भी मजेदार हो जाता है. अपने होटल से निकलकर मैं माल रोड की फुटपाथ पर पैदल ही चल पड़ा था. दिल्ली वापस आने की फ्लाइट शाम को पांच बजे की थी. बीच में तीन-चार घंटे का समय गुजारना था. पीछे से आवाज आयी, "सरदारजी, सस्त्रीकाल."

मैंने देखा, दो साइकिलों पर चार लड़के मेरे पास से गुजर रहे थे और हाथ हिलाते हुए बड़े खुश दिखाई दे रहे थे. मैंने मुस्कराकर जवाब में अपना हाथ हिलाया. उन्होंने साइकिलों की गति धीमी कर दी. उनमें से एक बोला, "पाकिस्तान केहो जेहा लग्गा ?" (पाकिस्तान कैसा लगा.)

मैंने कहा, "बड़ा चंगा, बड़ा सोहणा ते निग्घा." (बहुत अच्छा, बहुत सुंदर और बहुत स्नेहपूर्ण.)

मेरी बात सुनकर उनके चेहरे खिल गये. यह पाकिस्तान की वह पीढ़ी थी, जिसने भारत के नाम पर जंग, नफरत और खिचाव ही सुना था, जिसने हिंदी फिल्मों और उनमें काम करनेवाले कलाकारों का नाम ही सुना था.

मैं चलता-चलता पंजाब असेंबली के भवन तक पहुंच गया. इस बीच रास्ते में मुझे बहुत लोग मिल चुके थे. प्रौढ़ आयु के मर्दों ने मुझे बहुत संकोच से देखा था. औरतों ने अपने दुपट्टों की कनखियों से झांका था, मुस्करायी थीं और फिर आपस में बातें करने लग गयी थीं और किशोर-जवान लड़कों ने मुझे घेर लिया था और बारी-बारी से मुझसे हाथ मिलाया था. पाकिस्तान की अपनी इस यात्रा में मुझे लगा था, वहां हर नौजवान लड़के और लड़की के दिल में दिल्ली और बंबई देखने की बड़ी लालसा है, वैसी ही जैसे हमारे नौजवानों में लंदन, पेरिस या न्यूयार्क देखने की है. कल जब मैं अनारकली से अपने होटल वापस आया था तो स्कूटरवाला मुझसे भाड़ा नहीं ले रहा था और मैं भाड़ा देने की लगातार जिद्द कर रहा था.

वह बोला, "देखिए साहब, मैं आपसे पैसे तो नहीं लूंगा, पर इसके बदले में आप मेरा एक काम कर दीजिए."

मैंने कहा, "बोलो, मैं आपका क्या काम कर सकता हूं ?"

उसकी आंखों में बेहिसाब अनुनय भर आया था, "देखिए साहब, आपके घर में किसी बच्चे-बच्ची की शादी हो तो दावतनामे का एक कार्ड मुझे भी भेज दीजिएगा."

मैं उसका मनोरथ नहीं समझ सका था.

वह बोला, "हजूर, मैं जबरदस्ती आपका मेहमान नहीं बनूंगा. मैं आपके दावतनामे की बिना पर इंडियन हाई कमीशन से बीजा ले लूंगा—दिल्ली-बंबई देखने की मेरी बड़ी तमन्ना है. यकीन कीजिए, मैं आपको किसी तरह की तकलीफ नहीं दूंगा."

मैंने उसका हाथ दबाया था. अपना पता उसे दिया था और उसका पता ले लिया था. उसे यह भरोसा भी दिलाया था कि मेरे घर में जब भी कोई शादी होगी, मैं उसे जरूर दावतनामा भेजूंगा.

असेंबली भवन के पास पहुंचकर मैंने सोचा, अब क्या करूं. दोपहर का एक बजा था. होटल मुझे चार बजे तक लौटना था. मैं दूकानों में घूमकर चीजें देखने लगा. खरीदारी मुझे करनी नहीं थी, क्योंकि पिछली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात अनारकली बाजार से मैं बहुत कुछ खरीद चुका था. दूकानदार बड़ी रुचि से मुझे चीजें दिखा रहे थे, पर अनारकली से यहां का बाजार काफी महंगा दिख रहा था, वैसे ही जैसे दिल्ली में करौल बाग और कनाट प्लेस के भावों का अंतर साफ दिखाई देता है.

फुटपाथ पर ही 'कोल्ड ड्रिंक' बेचने वालों की अनेक रेहड़ियां लगी हुई थीं. उनके पास से निकला तो लगभग सभी ने आवाज दी, "भ्राजी आओ, कुछ ठंडा-शंडा पी लओ."

जब से लाहौर आया था, मैं लगातार 'पेप्सी कोला' पी रहा था. मुझे याद है, एक जमाने में दिल्ली में भी 'पेप्सी कोला' चला था, फिर बंद हो गया. कोका कोला का एकछत्र राज भी अब दिल्ली में टूट चुका है. पाकिस्तान में दोनों ही धड़ल्ले से चल रहे हैं.

मैं सोच रहा था कि उनका शुक्रिया अदा करता हुआ मैं उनके पास से निकल जाऊंगा. तभी एक अधेड़ से व्यक्ति ने मेरा रास्ता रोक लिया, "भ्राजी, हमारे पास से कुछ पी लो और हमारा दिल ठंडा कर दो."

उसने अपने दोनों हाथों से मेरा दाहिना हाथ थाम लिया. उसके हाथों में कुछ ऐसी जकड़ थी कि मुझे लगा कि मुझ पर वशीकरण हो गया. मुझे लगा कि जैसे गहरे पानी के बीच उसने मुझे अपने बलिष्ठ हाथों में उठा लिया है, मैं अपना सारा भार खो बैठा हूं.

उसने पेप्सी कोला की दो बोतलें खोलकर एक जग में उड़ेल दीं.

जो लोग धर्म या रंग के नाम पर धरती और कौमों का बटवारा करने के आदी हैं, उनके दिमाग में यह बात कभी नहीं घुस सकती कि आम भारतीय के मन में क्यों ढाका, लाहौर, कोलंबो या रंगून अभी तक अपने शहरों की तरह बसे हुए हैं और क्यों पाकिस्तानी नागरिक आज भी दिल्ली, बंबई और कलकत्ता को नजर भर देख लेने की लालसा अपने मन में पाले हुए हैं? जवाब दे रहे हैं प्रतिष्ठित कथाकार महीप सिंह--

फिर उसने सोडे की दो बोतलें खोलकर उसमें डाल दीं. फिर उसने एक बड़ा-सा नींबू काटकर उसमें निचोड़ा और नमक मिलाया. मैंने कहा, "इतना कौन पियेगा?"

उसने मुझे इस तरह देखा, जैसे सारे आकाश को उसने अपनी आंखों में समेट लिया हो, "मैं भी तो पिऊंगा—बिछुड़े हुए भाई के साथ दो घूंट ठंडा पानी पीने का सुख अल्लाह पता नहीं फिर कब देगा!"

कितने ही लोग हमारे आस-पास जमा हो गये थे. बड़े गिलासों में हम दो लोग ठंडा पी रहे थे और बाकी लोग हमें देख रहे थे.

दो बजने वाले थे. मैंने सबका शुक्रिया अदा किया और वापस मुड़ लिया. सब कुछ बहुत अजीब-सा लग रहा था. एक ओर खून में डूबी हुई जंग और नफरत से सराबोर कुछ ही साल पहले की यादें, दूसरी ओर पेप्सी कोला, सोडा, नींबू के ठंडे पेय में तैरता हुआ वर्तमान. दोनों सच्चाइयों को अपने कंधों पर लादे हुए लोग—कैसी अजीब लड़खड़ाती हुई चाल चलते जा रहे हैं.

चौराहा पार करने के लिए मैं हरी बत्ती की राह देख रहा था. एक व्यक्ति मेरे पास से निकला और ठिठककर खड़ा हो गया. लाहौर में ऐसे बहुत से लोगों से मिलने और उनकी जिज्ञासाओं को शांत करने का मुझे पिछले तीन-चार दिनों में खासा अनुभव हो चुका था. इसलिए मैंने उसकी तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया, पर वह एकदम मेरे सामने आ गया, "मैं आपके दो-चार मिनट ले सकता हूं."

मैंने कहा, "बड़ी खुशी से."

"आप हिंदुस्तान में कहां रहते हैं?"

"दिल्ली में." मैं बोला, पर उसी के साथ मैंने महसूस किया, उसकी आंखें एकदम तरल हो आयी हैं.

"दिल्ली में...!" उसने फट से अपने दोनों हाथों में मेरा हाथ ले लिया, "दिल्ली में कहां रहते हैं."

"करौल बाग में..." मैं बोला.

"मैं फैज रोड पर रहता था."

"आप यहां कब आये?" मैंने पूछा.

"मुल्क के बंटवारे के वक्त. बंटवारा क्या हुआ, हमारा तो खानदान ही बंट गया. आधे रिश्तेदार यहां, आधे वहां--हम एक दूसरे के लिए परदेसी बन गये हैं."

उसका गला काफी भर्राया हुआ था.

"आपके पास थोड़ा वक्त हो तो आप दिल्ली के बारे में मुझे कुछ बताइए."

मैंने उसकी आंखों में झांका, "क्या आप उसके बाद एक बार भी दिल्ली नहीं गये."

उसने अपनी गर्दन हिला दी.

"लेकिन इतने साल बाद भी दिल्ली मेरे दिल में धड़कती है." उसने मेरा हाथ उठाकर अपनी छाती पर रख दिया, "आप मेरे दिल की धड़कन महसूस कर रहे हैं?"

कौन किसके दिल को धड़कनों को महसूस करे? कौन किसकी आंखों का रंग देखे? दिल्ली में मैंने कितने ही लोगों को लाहौर के लिए मरते देखा है. लाहौर का नाम सुनते ही कितनों की बाछें खिलती हैं और आंखों का रंग एकदम लाल हो जाता है. कल ही मुझे मेरे लाहौरी दोस्त शाहीन ने पाकिस्तान के मशहूर पंजाबी कवि उस्ताद दामन की एक कविता की दो पंक्तियां सुनायी थीं:

"लाली अखियां दी पई दसदी ए,
रोए तुसी वी हो, रोए असी वी हां."

(आंखों की लाली बता रही है कि तुम भी रोये हो, हम भी रोये हैं).

मैंने कहा, "पिछले तीस चालीस साल में दिल्ली बहुत बदल गयी है..... बहुत दूर-दूर तक फैल गयी है."

"अच्छा.... जामा मस्जिद ठीक है ना... उसके चारों तरफ बाजार लगता था. हम वहीं मस्जिद की सीढ़ियों पर बैठकर कबाब खाते थे." उसने बड़ी उत्सुकता से पूछा.

मैंने कहा, "जामा मस्जिद अब पहले से ज्यादा खूबसूरत लगती है. उसके चारों ओर का बाजार—ढाबे—कबाब की दूकानें—सब वहां से हटा दिये गये हैं. वहां अब बहुत खूबसूरत बगीचे भी लगा दिये गये हैं..."

"अच्छा...!" उसकी आवाज कुछ मद्धिम-सी पड़ गयी, "फूल वालों की सैर का मेला तो अब नहीं लगता होगा."

मैंने कहा, "नहीं, फूल वालों की सैर को अब भी धूमधाम से मनाया जाता है. अब महरौली जाने के लिए वीराने से होकर नहीं गुजरना पड़ता—अब तो वहां तक शहर आबाद हो गया है—खूबसूरत कालोनियां..सड़कें..मकान...और बड़े-बड़े बाजार...!"

वह बड़े उत्साह से बोला, "छुटपन में हम लोग रामलीला देखने जाया करते थे. रामलीला की सवारी निकलती थी तो हम उसके साथ-साथ चलते थे. बड़ा मजा आता था. एक बार की बात बताऊं—मुझे अच्छी तरह याद है—जैसे बस कल की बात हो." उसके प्रौढ़ चेहरे की कितनी ही लकीरें एक जगह सिमट आयीं." मेरा एक दोस्त था—परसू—वैसे उसका नाम परसराम था, पर सब लोग उसे परसू कहते थे. राम और सीता की सवारी निकल रही थी—परसू उनकी बगल में नकली मूंछें लगाये हाथ में एक जड़ाऊ डंडा लिए खड़ा था. मैंने साले को पहचान लिया और सड़क से चीखा "परसू, ओए परसू!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़िया पसन्द वाले दम्पतियों के लिए

डीलक्स निरोध

चिकनाईयुक्त

1 रु. के 5

*उत्तम कोटि
*इलेक्ट्रानिक तरीकों से परखा गया

सभी बड़े शहरों में बिकता है

davp 85/273

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

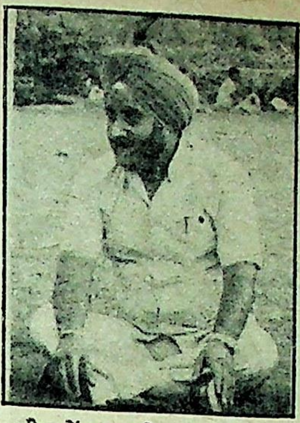

▣ महीप सिंह

परसू ने कनखियों से इधर-उधर देखा. भीड़ में वह मुझे नहीं देख पाया. मैंने फिर बुलाया, "अबे परसू, साले इतनी बड़ी मूंछें कहां से लाया. अब उसकी नजर मुझ पर पड़ गयी. मैंने नीचे से ही हाथ हिलाया. उसने वहां से हाथ हिला दिया. इतने में पीछे से किसी ने उसे एक घूंसा मारा—और परसू की मूंछें नीचे गिर गयीं—हम लोग हंसते-हंसते सड़क पर ही लोटपोट हो गये."

वह जोर-जोर से हंसने लगा. आस-पास आते जाते लोग हमारे पास ठिठक गये.

"सुना है, दिल्ली की आबादी बहुत बढ़ गयी है ?" उसने पूछा.

"हां. . . " मैं बोला, "करीब सत्तर लाख—आबादी बढ़ती जा रही है और शहर भी बढ़ता चला जा रहा है."

"अब अगर मैं दिल्ली आऊं तो उसे पहचान भी नहीं सकूंगा—लेकिन मरने से पहले मैं एक बार दिल्ली जरूर देखना चाहता हूं—पता नहीं, अल्लाह मेरी यह तमन्ना पूरी करेगा भी या नहीं." उसकी आवाज एकदम उदास हो गयी थी.

मैंने कहा, "आपकी मुराद जरूर पूरी होगी—जब भी दिल्ली आने का प्रोग्राम बन जाये, मुझे जरूर खबर कीजिएगा." मैंने जेब से अपना कार्ड निकाला और घड़ी देखी. कार्ड उसके हाथ में थमाकर मैं चलने को हुआ तो उसने मुझे फिर रोक लिया, "आपका बेशकीमती वक्त ले रहा हूं. . . " कहते-कहते उसकी आंखें डबडबा गयीं, "क्या करूं—उस हरामजादी—धरती की याद नहीं भूलती, जहां मैंने जनम लिया था—जहां मेरा बचपन गुजरा था—जहां मेरी जवानी परवान चढ़ी थी."

उसने दोनों हाथों से मेरा हाथ पूरी ताकत से दबाया, फिर एकदम झटके के साथ छोड़कर आगे बढ़ गया.

मैं एकटक उसे जाता देखता रहा.

मैं सड़क पार करके होटल की ओर चल दिया. एकाएक मुझे अपने चाचा नारायण दास की याद आ गयी. उन्नीस सौ इकहत्तर की भारत-पाकिस्तान लड़ाई में ढाका में हजारों पाकिस्तानी सिपाहियों ने आत्म-समर्पण कर दिया था. ये पाकिस्तानी सिपाही भारत के किसी रेडियो स्टेशन से सुबह-शाम बोलकर पाकिस्तान में अपने परिवार वालों को अपना संदेश भेजते थे—"मेरा नाम—मैं पाकिस्तान के जिला—तहसील—गांव का रहने वाला हूं—मेरे वालिद का नाम—है अगर कोई पाकिस्तानी भाई मेरी बात सुन रहा हो तो उनसे गुजारिश है कि मेरी खैर-खैरियत की खबर मेरे घर वालों को पहुंचा दे."

चाचा नारायण दास को पता नहीं क्या खब्त थी कि वे सुबह-शाम यह प्रोग्राम जरूर सुनते थे. एक दिन कोई गुलाम रसूल बोल रहा था—"मैं सूबेदार गुलाम रसूल वल्द अल्लारक्खा—गांव कुंजाह, तहसील फालिया, जिला गुजरात का रहने वाला हूं—मैं खैर-खैरियत से हूं—अगर कोई पाकिस्तानी भाई मेरी आवाज सुन रहा हो तो मेरे वाल्दान को इसकी इत्तला दे दे. . . !"

यह नाम सुनते ही चाचा नारायण दास एकदम चीख उठे थे. मेरे पिताजी को आवाज देते हुए बोले थे—"सुना तुमने, कुंजाह के अल्लारक्खा का पुत्तर गुलाम रसूल बोल रहा था—वह भी पाकिस्तानी फौज का कैदी है."

मेरे पिताजी के मुंह से तुरंत कुछ निकला नहीं था, पर चाचा नारायणदास की उत्तेजना सभी हदें तोड़ रही थी—"अपने गांव कुंजाह का लड़का गुलाम रसूल. . मेरे यार अल्लारक्खा का लड़का है. . सूबेदार गुलाम रसूल. . ."

घर में हम सब लोगों को लग रहा था कि कुंजाह—कुंजाह की रट लगाये बूढ़े चाचा नारायणदास सचमुच पागल हो गये हैं. □

● एच-108, शिवाजी पार्क, नयी दिल्ली-110026

वह औरत

. . पृष्ठ 63 से जारी

दौड़कर मुझसे लिपट गयी, "बहनजी, सब कुछ लुट गया. सब कुछ चला गया. तिल-तिल अपने को गलाकर, पल-पल मरकर बेटी के लिए जीती रही और उसके लिए यहां से, वहां से सुख बटोरती रही. तिनका-तिनका चुनकर पंछियों की तरह हमने यह मकान बनाया. दुनिया की रीत देखकर डर लगा रहता था कि मरद कहीं उसे छोड़ न दे. मकान बनाया था कि अगर मरद छोड़ देगा तो यह मेरी तरह बेघर नहीं हो जायेगी, बल्कि इस मकान में आकर रहेगी. मकान का आधा हिस्सा उसके नाम कर देने वाली थी, लेकिन सोचा था क्या, हुआ क्या?" वह चुप हो गयी, लगा, उसकी आंखों में आग की लपटें उठ रही हैं. वह बिलखने लगी, "बहनजी, कितने दरद से मेरी बेटी मरी होगी, पकड़कर उस पर किरासन का तेल डाला गया होगा, वह तड़पी होगी, आग लगायी गयी होगी, वह इधर-उधर चिल्लाती हुई भागी होगी, छटपटायी होगी, अपने को नोचा होगा, फिर बेहोश होकर गिर पड़ी होगी और ये सारे राक्षस दरवाजा बंद करके बाहर खड़े रहे होंगे. कितनी दर्दनाक मौत मरी होगी मेरी बेटी! हाय मेरी बेटी. . .!"

"वह जोर-जोर से रोने लगी. आसपास की दो-चार औरतें जुट आयीं, उसे संभालने लगीं. मुझे तो संभालना भी नहीं आता. किसी को चुप कराना भी नहीं आता. उसका बीस वर्षीय बेटा भी आ गया. वह खामोश होकर सब कुछ देखता रहा. उसकी सुन्न आंखों में एक ठंडी आग थी.

"वह औरत चुप हो गयी तो औरतों ने समझाया, "अब काहे को अपने को हलकान करती हो. जो होना था, हो गया. भगवान को यही मंजूर था तो कोई क्या कर सकता है.'

"नहीं!' वह लड़का चीखा, 'भगवान को भले मंजूर रहा हो, मुझे मंजूर नहीं है. मैं उन दरिंदों को छोड़ूंगा नहीं. मैं आखिरी दम तक उनसे लड़ूंगा. अगर वे कचहरी से छूट भी गये तो मैं जीजा नाम के हरामी का खून कर दूंगा."

"नहीं मेरे बेटे," मां गिड़गिड़ायी, "अब तू ही तो एक सहारा है, तू भी खून-खराबा करके फांसी चढ़ जायेगा तो मेरा कौन होगा." मां करुणा से हबसने लगी, लेकिन वह लड़का आंखों में आग भरे खामोश रहा—जैसे दूर कुछ देख रहा हो.

पत्नी चुप हो गयी. हम दोनों उस औरत की ओर देखने लगे. उसकी नजर हमारी नजर से मिली. कुछ देर तक उसने हमें बुझी आंखों से देखा, फिर अंदर चली गयी. गिरी हुई ईंटों के ढेर उसके मकान के चारों ओर बिखरे थे, जिनमें उस औरत की सुन्न आंखों का सन्नाटा पसर गया था. मैं बहुत भारी हो आया था, उस औरत के भीतर की औरत मुझमें उग आयी थी.

"चलो, चलते हैं." कहकर मैं पत्नी के साथ नीचे उतर आया. □

● आर-38, वाणी विहार, उत्तम नगर, नयी दिल्ली-110059

davp 85/273

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ और सारिका का संयुक्त आयोजन

कथा-पर्व

● ऋता शुक्ल

12-13 अक्तूबर के दो दिन, जाने-माने प्रकाशन संस्थान भारतीय ज्ञानपीठ एवं कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिक पत्रिका 'सारिका' द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित 'कथापर्व' के तहत विशेषकर दिल्ली निवासी पाठकों-साहित्यकारों के लिए अभिनव चिंतन और अनूठी स्मृतियों भरे दिन सिद्ध होंगे.

इंडिया इंटरनेशनल सेंटर के भव्य सभागार में प्रारंभ हुए कथापर्व के प्रथम सत्र की अध्यक्षता लोकप्रिय कथा-मनीषी शिवानी ने की. संचालक थे—पत्रकार, लेखक और भारतीय ज्ञानपीठ के अधिकारी बालस्वरूप राही. उन्होंने बताया, "पिछले वर्ष भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा उभरते हुए कथाकारों को प्रोत्साहन देने के लिए एक कथा–प्रतियोगिता का आयोजन किया गया था. इस प्रतियोगिता में उन कथाकारों से पांडुलिपियां आमंत्रित की गयी थीं, जिनका प्रतियोगिता की तारीख तक कोई कहानी संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है. कुल 86 पांडुलिपियां प्राप्त हुईं और उनमें से जिस पांडुलिपि की कहानियों ने सर्वाधिक आकर्षित किया, उस कहानीकार का नाम है—ऋता शुक्ल. ऋताजी के कथा-संग्रह ज्ञनपीठ ने 'क्रौंचवध' शीर्षक से पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया है."

इस अवसर पर ज्ञानपीठ के प्रबंध न्यासी श्री अशोक जैन ने 'क्रौंचवध' की एक प्रति ऋता शुक्ल को भेंट की. उन्होंने उन्हें पुस्तक की रायल्टी के एक अंश के तहत 5100 रुपये का एक चेक भी प्रदान किया. अपने सामार संभाषण में उन्होंने इस प्रतियोगिता का विवरण देते हुए शिवानी के लेखन और व्यक्तित्व के बारे में अपने उद्गार प्रकट किये और पर्व में पहुंचे लेखकों और पाठकों के प्रति आभार प्रकट करते हुए कहा, "कविता में मानवीय सद्गुणों को उभारने की अद्भुत क्षमता है. इसलिए अगले वर्ष इस कथा–प्रतियोगिता की भांति ज्ञानपीठ द्वारा काव्य-प्रतियोगिता का आयोजन किया जायेगा तथा नवांकुरों को सम्मानित करने के लिए ज्ञानपीठ के पास कुछ अन्य योजनाएं भी विचाराधीन हैं."

करतल ध्वनि के बीच शिवानीजी ने 'क्रौंचवध' कहानी संग्रह का विमोचन करने के बाद कहा, "दलगत राजनीति से बचे रहकर, निज संस्कृति और अपनी माटी से जुड़े रहना लेखक और लेखन के लिए अनिवार्य है." रामायण के संदर्भ में 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि सच तो यह है कि तुलसी ने भी वस्तुतः 'स्वांतः सुखाय' के लिए नहीं लिखा, क्योंकि स्वकेंद्रित लेखक दरअसल लेखक ही नहीं होता. हम अपने पाठक को नजरअंदाज नहीं कर सकते और पाठक हर समय 'पथ्य' ही नहीं चाहता, कभी-कभी 'कुपथ्य' भी चाहता है, किंतु हमें पथ्य और कुपथ्य का मिश्रण इस प्रकार करना है कि वह अपनी श्लीलता न खो बैठे, 'बोल्ड लेखन' के नाम पर अश्लील न हो जाये. इस संदर्भ में उन्होंने वागभट्ट और रवींद्रनाथ टैगोर को बाकायदा उद्धृत करते हुए कहा कि सामाजिक संवेदना एवं कलात्मक मूल्यों की रक्षा जरूर होनी चाहिए.

'क्रौंचवध' की पुरस्कृत लेखिका ऋता शुक्ल ने आभार व्यक्त करते हुए अपने पुरस्कार का श्रेय भोजपुर की उस सरजमी को दिया जिसकी पृष्ठभूमि ने उन्हें वहां की गाथाएं लिखने को प्रेरित किया. उन्होंने संस्कृति और विरासत्त को महत्वपूर्ण मानते हुए हर्षित मन से कहा कि मैं समझती हूं कि महत्वपूर्ण पुरस्कार नहीं, बल्कि आप लोगों के बीच होने का वह सुख और सम्मान है जो मेरी अभिव्यक्ति को और भी मुखर करेगा.

अंत में 'सारिका' की प्रकाशक एवं ज्ञानपीठ की वरिष्ठ अधिकारी सुश्री ऋचा जैन ने धन्यवाद ज्ञापित्त करते हुए आशा व्यक्त की कि हम भविष्य में भी इस प्रकार के आयोजन करते रहेंगे और हमें आपका पूरा सहयोग एवं समर्थन प्राप्त होगा. इसके बाद आकाशवाणी के कलाकारों द्वारा 'क्रौंचवध' कहानी और और फिर 'संभव' के कलाकारों द्वारा बंगला कथाकार सुब्रत्त सेन गुप्त की कहानी 'महापुरुष की हत्या' पर आधारित नाटक का प्रभावशाली मंचन किया गया.

13 अक्तूबर को कथापर्व का दूसरा सत्र दोपहर डेढ़ बजे से शाम साढ़े छह बजे तक अनवरत चला. मंच को विशेष रूप से शोभायमान कर रहे थे—सर्वश्री अमृतलाल नागर, गुलाब दास ब्रोकर एवं श्रीमती इस्मत चुगताई. विशेषता यह थी कि इसमें हिंदी, उर्दू, बंगला, मलयालम, गुजराती पंजाबी और कन्नड़ के

● अशोक जैन

● ऋचा जैन

● बालस्वरूप राही, शिवानी, अशोक जैन, ऋता शुक्ल, ऋचा जैन

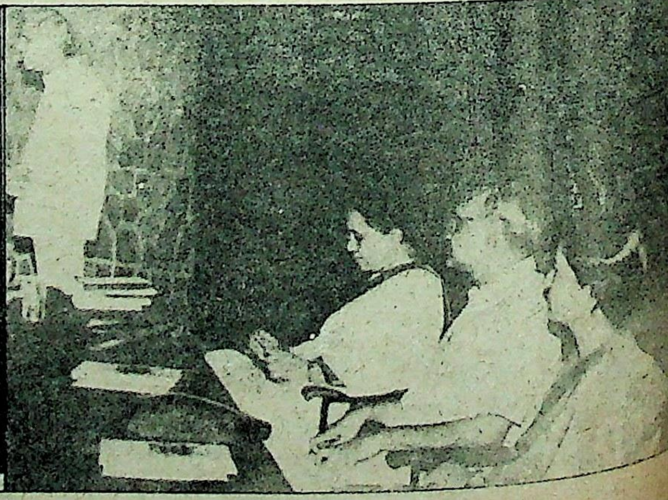

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● इस्मत चुगताई

● अमृतलाल नागर

● शिवानी

रचनाकार भी शामिल थे. विषय था—'कहानी जो मैंने जानी.' सत्र का संचालन कथाकार, कवि, पत्रकार और 'सारिका' के संपादक अवधनारायण मुद्गल ने किया. उन्होंने बताया, "आज हमारे बीच कथा-साहित्य की पहली पीढ़ी से लेकर चौथी और पांचवीं पीढ़ी तक के रचनाकार मौजूद हैं और अब हम यह जानना चाहते हैं कि कथा-जगत में एक कहानीकार के रूप में उन्होंने विरासत में क्या कुछ पाया और वे उसे कहां तक ले गये. परंपरा से तनिक हटकर इस सत्र की अध्यक्षता युवा लेखक संजीव कर रहे हैं और मेरा गहन विश्वास है कि इस रूप में युवा पीढ़ी को अग्रज रचनाकारों को स्नेह और आशीर्वाद प्राप्त होगा."

सबसे पहले गुजराती के वरिष्ठ कथाकार श्री गुलाब दास ब्रोकर को आमंत्रित किया गया. अपने लालित्यपूर्ण संवाद में उन्होंने गुजराती कहानी के पिछले पचास वर्ष का लेखा-जोखा बखान करते हुए कहा, "हमें साहित्य के नाम पर कपोल घटनाएं मिलीं और ऐसे पात्र मिले जो जीवन में कहीं दिखायी नहीं पड़ते. परंतु कहानी महज घटना नहीं होती और पात्र केवल गुलदस्ता नहीं होते. अच्छी कहानी का सीधा-साधा मतलब है कि इसमें जीवन कितना और किस तरह से धड़क रहा है." युवा कथाकार प्रियंवद ने व्यापक संदर्भों से जुड़ने की बात उठाते हुए कहा, "सबसे पहले हमें आज के मानवीय जीवन की चुनौतियों को समझना होगा." विवादास्पद लेखिका इस्मत चुगताई ने अपना अभिमत अपने जीवन के बेलाग और रोचक संस्मरण सुनाकर अभिव्यक्त किया और कहा, "लिखने के लिए जरूरी चीज है—समझ. समझ साफ हो तो आप कुछ भी लिखें कोई फर्क नहीं पड़ता. तब लेखक किसी की बुराई भी करता है तो वह अंततः अच्छाई बन जाती है. नये लेखकों को खुलकर लिखना चाहिए और संजीदापन, संजीदा बने रहने से नहीं, संजीदा काम करने से हासिल होता है." उन्होंने लेखकों और पाठकों को एक नुस्खा भी बताया—"जब कभी किसी पर बहुत गुस्सा आये और आप उसका कुछ न बिगाड़ सकते हों तो जो कुछ मन में उबाल खा रहा है उसे कागज पर उतार लीजिए. . . यकीन मानिए आपका मन सहज हो जायेगा."

मलयालम के समीक्षक और कथाकार आरसु ने बढ़ती हुई भद्दी और छिछली कहानियों को भर्त्सना करते हुए कहा, "संपादकों द्वारा खास और फलां तरह की कहानियों की मांग विरासत को आगे बढ़ाने में रोड़े अटका रही है. लेखकों को ऐसी वृत्तियों का शिकार नहीं होना चाहिए."

बंगला लेखक जयंत जोआरदार ने लेखन के क्षेत्र में बढ़ती हुई व्यावसायिकता और साहित्य को माल की तरह खपाने और अरुचिकर रुचियों वाले पाठकों-लेखकों की कटु आलोचना करते हुए कहा—"नयी पीढ़ी को पूंजीवाद के खतरों और नारेबाजी वाले साहित्य से सतर्क रहकर लिखना चाहिए."

युवा रचनाकार राजकुमार गौतम ने परंपरा के तहत अपने अग्रजों के प्रति सम्मानित भाव रखते हुए कहा, "हमें विरासत में बहुत

● संजीव

● गुलाब दास ब्रोकर

● शिवमूर्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● राजकुमार गौतम

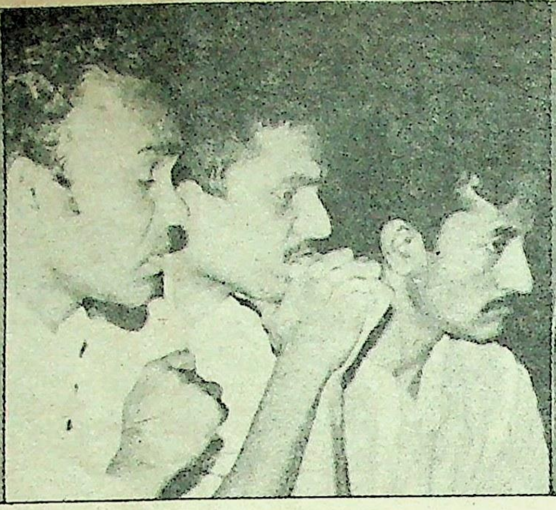

● आरसु, प्रियंवद एवं जयंत जोगारवार

● रमेश चंद्र जैन

कुछ ऐसा भी मिला जो कि समृद्ध है और ऐसा भी जो उथला है. पर हमने समृद्ध साहित्य को ही अपना माना है और उसे यथार्थ की अर्थवत्ता देते हुए आगे बढ़ाने की भरपूर कोशिश कर रहे हैं ताकि आने वाली पीढ़ी स्वस्थ परंपरा से परिचित हो. अंग्रेजों से हमारे मतभेद हो सकते हैं, पर इसका यह अर्थ नहीं कि हम उनका सम्मान नही करेंगे."

इसके बाद आये अशोक शुक्ल. उन्होंने कहा, "प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद को एक-दूसरे के खिलाफ खड़ा करना असल में जीवन को उसकी समग्रता में पकड़ने वाली रचनाशीलता की व्यस्क शुरुआत का अपमान है. बकौल चेखव 'कहानी का काम यह बताना है कि उस युग के लोग कैसे थे.' मात्र घटनाओं और चरित्रों से हटकर जीवन-पथ पर चलने वाले राजपथ के प्रथम यात्री प्रेमचंद ही थे."

पुरस्कार विजेता लेखिका ऋता शुक्ल ने हिंदी कथा-साहित्य के सौ-साला अतीत को रेखांकित करते हुए कहा, "आज बहुत जरूरी हो गया है कि हम उन स्वरों को मुखरित करें

● महापुरुष की हत्या (एक दृश्य)

जो देश के अंचलों में रहने के कारण बेआवाज होकर रह गये हैं."

अब बारी आयी कथा-सम्राट अमृतलाल नागर की. उन्होंने अपने सारगर्भित संभाषण में कहा, "यह जीवन इतना व्यापक है कि रवींद्रनाथ की एक कविता के अनुसार हम उसमें एक नन्हे से दीपक हैं. साहित्य को बहुत-बहुत काम करना है और उसे एक दीपक के रूप में हम जितनी रोशनी दे सकते हैं, देते रहेंगे. नयी पीढ़ी से हमारा न तो कोई वैर है न विरोध. अपने समय और देश-काल के अनुसार हम परिवेश को जितना समझ पाये हमने लिखा और जहां तक काम कर सके, किया. अब नयी पीढ़ी हमसे झगड़ा-टंटा न करे बल्कि उस काम को आगे बढ़ाये. वक्त की जरूरत हो तो बेशक उसे खारिज कर दे, हमें कोई ऐतराज नहीं होगा. हमारी शुभकामनाएं और आशीष उनके साथ हैं."

सत्र के अध्यक्ष युवा कथाकार संजीव ने बड़े संकोच भाव से ग्रहण किये गये अध्यक्षीय पद की दुखती रग का त्रास बयान करते हुए कहा, "हमें जो कुछ भी विरासत में प्राप्त हुआ, वह हमारे लिए उतना ही महत्वपूर्ण है जितने कि हमारे बुजुर्ग होते हैं. हां, मैं यह जरूर कहना चाहता हूं कि आज का यथार्थ वस्तुत: दिल्ली, अन्य नगर या महानगर नहीं, बल्कि वे क्षेत्र हैं जहां समस्या ट्रैफिक जाम की नहीं बल्कि यह है कि वहां सड़क ही नहीं है. यथार्थ नौकरी करती हुई स्त्री नहीं बल्कि वह स्त्री है जो सिर पर बोरी और पीठ पर बच्चा लादे बाढ़ के उस पानी को पार कर रही है, जो हर कदम पर गहरा होता जा रहा है." उन्होंने वर्तमान स्थितियों और कष्टप्रद जिंदगी की समस्याओं को रेखांकित करते हुए सभी से पूछा, "आज कहीं भी ईमानदार आदमी की कोई वुक्कत नहीं रह गयी है. . . . आखिर क्यों ?"

प्रत्येक वक्ता की बातचीत के बाद संचालक अवधनारायण मुद्गल श्रोताओं को उनके कथन का सार-संक्षेप भी बताते रहे. उन्होंने 'सारिका' द्वारा प्रकाशित किये जा रहे कथा-पीढ़ी विशेषांकों की चर्चा करते हुए कहा कि पांच विशेषांकों में पांच पीढ़ियों की कहानियों का प्रकाशन विरासत और उसके विस्तार को रचनाधर्मिता के आईने में मूल्यांकित करने का अवसर प्रदान करेगा. अंत में खुले सत्र के के तहत श्रोताओं में से शिवमूर्ति, मन्मथनाथ गुप्त, अहमद हमेश (पाकिस्तान), बी. आर. नारायण आदि ने अपने विचार प्रकट किये. शिवमूर्ति ने संजीव के कथनों की पुष्टि करते हुए समकालीन यथार्थ को रेखांकित किया.

मन्मथनाथ ने शिकायत की कि लेखक देश की बढ़ती हुई जनसंख्या की तरफ ध्यान क्यों नहीं दे रहे.

अंत में टाइम्स आफ इंडिया के प्रबंध निदेशक श्री रमेश चंद्र जैन ने समस्त उपस्थितजनों का शुक्रिया अदा करते हुए श्री अशोक जैन के कथन की पुष्टि की कि अगले वर्ष भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा काव्य प्रतियोगिता का आयोजन किया जायेगा. □

● क्रौंचवध (एक दृश्य)

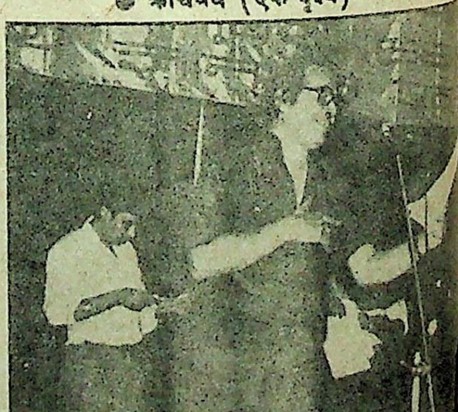

छाया: पवन महेंद्रू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समकालीन मुहावरे से जुड़ने की कोशिश

□ विनय दास

नयी कहानी के साथ अपनी विशिष्ट हैसियत लेकर उभरनेवाले प्रतिभासंपन्न रचनाकारों में एक नाम अमरकांत का भी है. अमरकांत ने अपनी पहचान उस जमाने में खासतौर से **दोपहर का भोजन, डिप्टी कलेक्टरी, हत्यारे** तथा **सूख** जैसी कहानियों से बनायी थी, जिसमें मानवीय करुणा को एक व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में रखकर पहली बार जांचा गया. उनमें संवेदना का घनापन था, व्यक्तिगत अनुभूतियों को वृहद मानवीय भावना से जोड़कर देखने तथा उसे सार्वजनीन बनाने की अद्भुत क्षमता थी और इन सबसे परे वे एक विशेष प्रकार (मध्य और निम्न मध्यवर्गीय) की सामाजिक चिंता के सतत जागरूक कथाकार थे. कुछ-कुछ इसी भावभूमि पर उनके नव्यतम कहानी संग्रह **'कुहासा'** (**कृतिकार, कक्कड़ नगर, दरियाबाद, इलाहाबाद**) को जांचा-समझा जाना चाहिए.

'कुहासा' को आधुनिक समाज के वृहद् सामाजिक संबंधों और उनके अधुनातन स्वरूप को समझने की कुंजी कहा जा सकता है, क्योंकि इन कहानियों में समाज के बनते-बिगड़ते संबंधों को समझने का सच्चा प्रयास निहित है. सामाजिक संबंधों के इस भूगोल की पड़ताल रचनाकार ने उस समाज के प्रतिनिधि चरित्रों के माध्यम से की है. इसलिए **एक बाढ़ कथा** और **आमंत्रण** को छोड़कर शेष सभी कहानियों में चरित्रों की प्रधानता है. इन चरित्रों के द्वारा जहां रचनाकार ने उनके सामाजिक असंतोष, आक्रोश, बेहतर जीवन जीने की लालसा तथा उनको अप्राप्ति पर उनके क्षोभ को दर्शाया है, वहीं समाज की शोषणधर्मी ताकतों द्वारा इंसान की मजबूरियों का उन्हीं मुहावरे में कहें तो 'चुसी हुई गंडेरी की हद तक' चुसते रहने का सूक्ष्म ब्यौरा भी मिलता है. कदाचित हर बड़े सृजनशील रचनाकार का यह दायित्व है कि वह अपने आसपास के समाज के नये संबंधों को पहचाने, परिभाषित करे. समाज को रचनात्मक और विध्वंसात्मक दोनों ताकतों की रही-सही पहचान कर पाठकों को परिचित कराये.

कहना न होगा, अमरकांत यह दोनों काम अपनी रचनाओं द्वारा बड़ी कुशलता से करते हैं. उदाहरण के लिए उनकी कहानी 'कुहासा', जो ऊपर से देखने में दूबर की मजबूरियों का विभिन्न सामाजिक इकाइयों द्वारा नाजायज लाभ लेने की कथा भर लगती है, मगर यह क्या उतना ही सत्य है? इस कहानी में समाज के उस धूर्त किस्म के लोग, जो सीधे-सादे लोगों को बर्गलाकर उनके परिश्रम तथा धन आदि को अवशोषित कर स्वयं मौज का जीवन बिताते हैं, उसमें उस नये वर्ग की स्पष्ट पहचान छिपी है. इसी तरह 'घर' में बलराम सिंह मानव सेवा के नाम पर विनय को अपने क्रूर पंजों में फंसाये रखता है. यहां रामचरन नये मध्यवर्ग का वह चरित्र है, जो चुनाव के दौरान हर दल के लिए दूबर जैसे निम्न, निम्न मध्यवर्गीय लोगों की मकान, रिक्शा अर्थात् बेहतर जीवन-भविष्य की लालसाओं को उकसाकर उन्हें किराये पर ले जाता है, किंतु मध्यवर्ग के इस छली चरित्र की निर्ममता तब उभरकर आती है, जब दूबर को म्युनिसपाल्टी द्वारा ओढ़ने के लिए मिला कंबल उसे बर्गलाकर 30 रुपये में छीन कर चलता बनता है. निष्कर्षतः जाड़े की कुहासेभरी रात में मकान और रिक्शा के स्वप्न को लिये वह सुरलोक सिधार जाता है.

निश्चय ही दूबर का कथन उस समाज के विद्रोह और एक समाज परिवर्तन की ओर संकेत है, किंतु क्या यह दूबर का सच बनकर, उस वर्ग की सच्चाई बनकर अभिव्यक्त हुआ है? यहां लेखकीय विचार और चरित्र में फांक है, अन्यथा जहां उसकी मृत्यु होती है, उतना ही समाज पर तीखी टिप्पणी से कम नहीं है. यही कारण है कि अपने शिल्प सौष्ठव, चरित्र गठन तथा परिवेश में एकतानता की बुनावट और व्यंग्यपूर्ण भाषा के बावजूद **'कुहासा'** अपने समय की एक जबर्दस्त उदाहरणीय कहानी बनते-बनते रह जाती है. यहां रचनाकार का वर्गीय चिंतन रचना की बुनावट में घुला है, जो उनकी उपलब्धि कही जा सकती है. अपने संवेदनात्मक घनेपन, शिल्प की सहजता और मानवीय नियति की क्रूरता की पहचान में यह बहुत कुछ प्रेमचंद की कहानी **'पूस की रात'** की याद दिलाती है.

इन सभी कहानियों में संघर्षपूर्ण जीवन की प्रधानता है. यह संघर्ष अमरकांत के अनुसार भूख और सामाजिक अव्यवस्था से उपजा है, जो रचनाकार की दृष्टि में एक बड़ी चीज है. और है भी, जिसके चलते व्यक्ति शारीरिक और आर्थिक शोषण रूपी दो पाटों के बीच लगातार पिसता रहता है. शोषण के यही मुद्दे बार-बार रचनाओं द्वारा उठाये गये हैं. अपने समय के यह कम अहमियत भरे सवाल नहीं हैं. इनका व्यावहारिक और रचनात्मक दोनों स्तरों पर कोई सरल हल है भी नहीं, लेकिन शोषण के इस चालू स्वरूप के अतिरिक्त भी उसके रूप हैं, मसलन व्यक्ति का मानसिक और भावनात्मक शोषण आदि.

इतना ही नहीं **'एक बाढ़ कथा'** और **'आमंत्रण'** में उन्होंने समाज तथा शासन पर बढ़ते पूंजीपतियों के असर और खतरे से लोगों को आगाह किया है. **'एक बाढ़ कथा'** रिपोर्ताज और डाकूमेंटेसन की शैली के योग से सृजित कहानी है, जहां समाज के प्रतिष्ठित लोगों के भूखंड को बाढ़ से घिरा देखने और सरकार द्वारा वहां चलाये जा रहे राहत कार्य के बीच के अंतर्विरोध को धारदार व्यंग्यों से अभिव्यक्त किया है. विरोध के रूप में यहां नारों का सार्थक इस्तेमाल हुआ है. अक्सर बाढ़ आदि के कथानक पर आधारित कहानी गरीबों, असहायों की चीख या पाठक की करुणा को जगाने भर के काम आती है, किंतु दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण यह कहानी बांधती है.

समकालीन कहानी के मुहावरे से जहां अमरकांत की यह कहानियां एक ओर जुड़ने का प्रयास करती हैं, वहीं अपनी विशिष्टता को भी बनाये रखती हैं, क्योंकि इनमें रचनाकार का पात्रों के प्रति सर्वथा निगेटिव एप्रोच नहीं है, बल्कि वे एक पाजिटिव एप्रोच भी रखते हैं. जो समकालीन रचनाशीलता में एक दुर्लभ गुण हो चला है. मिसाल के लिए **'घर'** कहानी को लिया जा सकता है, जहां नायक विनय पारिवारिक असंतोष से जीवन के मुक्ताकाश में आ बलराम सिंह जैसे लोगों के साथ खट्टे-मीठे अनुभवों को अर्जित करता आगे बढ़ता है. यहां नायक का संघर्ष नौकरी पाने के साथ शमित होता है, किंतु महत्त्व की बात यहां यह नहीं है, बल्कि यह है कि नायक विनय का यहां बलराम सिंह के आर्थिक शोषण के कारण उसे विरोध करके उसके समाजद्रोही, फार्मूलिस्टिक क्रांतिकारी बनने की पूरी-पूरी गुंजाइश थी, लेकिन वह छद्म इसके विपरीत पैसे पाने पर उसे पारिवारिक जनों की याद आती है और वह सब के लिए सामग्री क्रय करके घर की ओर प्रयाण करता है. यहां हम रचनाकार की इस दृष्टि के कायल होते हैं, जिसमें समसामयिकता से उबरकर एक व्यापक मानवीय भावना का स्पर्श किया गया है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निजता तक पहुंचने की शेष यात्रा

▣ दिनेश द्विवेदी

पति-पत्नी या औरत-मर्द के जुड़ाव, बिखराव, अनुराग-विराग, टूटन-सिहरन आदि स्थितियों के विविध आयामों को लेकर कथा जगत् में अनेकों कथाकृतियां सामने आयीं, मगर उषा प्रियंवदा का 'शेष यात्रा' नारी के 'रिवेल' को रेखांकित करती हुई अलग-सी कृति है. 'शेष यात्रा' उपन्यास का परिवेश विदेशी है, परंतु उस संस्कृति में बढ़ते पनपते पात्र भारतीय हैं. अनुका उर्फ अनु एक बहुत ही सीधी सहज बिना मां-बाप की लड़की हुआ करती है. घर की चारदीवारी और उसके हवेलीनुमा संस्कार पूर्णतः रूढ़िवादिता से ग्रस्त हैं. मामा-मामियां और उनके बच्चों के बीच किशोरी अनु सहसा उस परिवार की बड़ी लड़की के अमरीकावासी सुदर्शन पुत्र प्रणवकुमार द्वारा पसंद कर ली जाती है; जब तक अनु इस सब घटनाचक्र की गहराई तक पहुंचे, प्रणव से उसका ब्याह हो जाता है और अमरीका के लिए अपने महत्वाकांक्षी पति के साथ रवाना हो जाती है. अमरीका का भागता हुआ-सा माहौल अनु को कुछ समय तो बौखलाये रखता है, परंतु तुरंत ही अनु अपने आप को विदेश की संपूर्ण आधुनिकता में ढाल लेती है. कस्बाई मानसिकता वाली लड़की आकंठ डूब जाती है इस वैभव समुद्र में. अन्य प्रवासी भारतीयों की पत्नियां, जो कि वे सब भी उसी चकाचौंध की अनुगामिनियां होती हैं, अनु की सहेलियां हो जाती हैं, मगर चौंधियायी-सी अनु अपने आप को सिर्फ प्रणव से जुड़ा हुआ मानती है. अचानक से प्रणव का दूसरी स्त्री के साथ संबंध अनु की सारी एकनिष्ठता को धराशायी कर देता है. यहीं से अनु के जीवन की त्रासदी, घुटन, कुंठा और विक्षिप्तता के मानसिक दौरों से शुरू होती है,जिसका समापन तलाक के रूप में होता है. अनु के जीवन का यह दुखद मोड़ प्रणव कुमार के एकतरफा फैसले का परिणाम होता है. प्रणव के रूप में हमेशा 'नंबर वन' रहने वाला पुरुष सामने आता है. प्रणव के लिए शानदार बंगला, चमचमाती कार, एक दूसरे को परास्त करती हुई आधुनिकता-संपन्न पार्टियां तथा आधुनिकतम सुविधाओं से लैस जिंदगी मात्र दूसरों को जलाने और 'नंबर वन' पर रहने की चेष्टा है. अनु भी इस महत्वाकांक्षा की शिकार एक वस्तु है. कस्बाई से आधुनिक बनने में अनु अपने संपूर्ण 'स्व' को तिल-तिल कर गला देती है—प्रणव कुमार की सारी महत्वाकांक्षाओं के सामने. कथा के इस त्रासद मोड़ तक आने के बाद अनु का सारा दब्बूपन एक झटके के साथ समाप्त हो जाता है और अतीत की उस जली हुई राख के ढेर से तनतनायी हुई जिस स्वाभिमानी या खुद्दार औरत का जन्म होता है, वह नारी जीवन की त्रासदी से हटा हुआ एक तीसरा ही क्षितिज है. अनु दांपत्य के बिखराव की सीलन भरी अंधेरी सुरंग से निकलकर न केवल स्वावलंबी बनती है, बल्कि दीपांकर से विवाह कर जिंदगी की फिर से शुरुआत करती है. और फिर बीमारियों से ग्रस्त प्रणव से अनु की भेंट जब एक नर्सिंग होम में होती है तो प्रणव इस स्वनिर्मित व्यक्तित्व से दंग है.

उषाजी ने विदेशों में बसे हुए भारतीयों की आधुनिकताबोध से ग्रस्त मानसिकता का बड़ा गहरा और जीवंत चित्रण किया है. उपन्यास का सबसे अनूठा और जीवंत पक्ष है अनु के माध्यम से औरत की 'सेल्फ डिगनिटी' को रेखांकित कराना. अनु संबंधों के टूटन के प्रारंभिक दौर में प्रणव को ही सारे घटनाचक्रों के उलटफेर के लिए दोषी ठहराती है, लेकिन बाद में जब वह अपने व्यक्तित्व को अलग खड़ा करके देखती है तो उसे यह महसूस होता है कि प्रणव ही नहीं, वह भी दांपत्य के उस अलगाव में कहीं न कहीं किसी न किसी बिंदु पर खुद भी जिम्मेदार है. अनु प्रणव की अनुगामिनी और पत्नी धर्म का निर्वाह करती हुई स्वयं को भारतीय मानसिकता में पूर्णतः सौभाग्यवती समझे हुए थी, परंतु प्रणव को उस परिपक्वता की भी आवश्यकता थी, जो अनु में बाद में आयी. और वही परिपक्व अनु प्रणव को माफ भी कर देती है, क्योंकि अनु के सोच की सीमा फैलाव ले लेती है, हालांकि अतीत की पूरी टीस को लिये हुए. पुरुष के शोषण से टूटते-टूटते फिर से जीवन का सृजन न सिर्फ अनु की जीत बल्कि नारी की समग्र विजय का जय-घोष है.

उषा प्रियंवदा की भाषा की सहजता और अभिव्यक्ति की आत्मीय शैली ने उपन्यास को रवानगी से भर दिया है. 'शेष यात्रा' **(राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली)** औरत की निजता की तलाश और उसकी पैरवी करता हुआ नारी जीवन का एक 'सागा' है, औरत की निजता तक पहुंचने की यात्रा का जीवंत दस्तावेज. □

'जागृति' का 'मोहन राकेश विशेषांक'

▣ दिव्या कुमारी

किसी भी पत्रिका का विशेषांक सामान्य सामग्री से विशिष्ट सामग्री का आयोजन करता है. इस दृष्टि से 'जागृति' का 'मोहन राकेश विशेषांक' उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण बन पड़ा है. 'जागृति' पंजाब सरकार की पत्रिका है, जो हिंदी, पंजाबी भाषा में प्रकाशित होती है. 'जागृति' का जून अंक अतिथि संपादक डॉ. यश गुलाटी के संपादन में मोहन राकेश विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ है. इस प्रकाशन से पंजाब सरकार ने मोहन राकेश के प्रति पुन: अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है.

प्रस्तुत अंक में मोहन राकेश पर जो अधिकांश महत्वपूर्ण सामग्री दी गयी है, उसमें अनेक लेख मोहन राकेश पर काफी नये तरीके से विचार करते हैं. 'राकेश की रचना दृष्टि' संपादकीय में यश गुलाटी ने अत्यंत संक्षेप में राकेश के रचनात्मक सरोकारों पर विचार किया है. उनका कहना बहुत सही है कि "मोहन राकेश ने अपनी रचना-दृष्टि अपने जीवन संघर्षों तथा तत्कालीन समाजार्थिक और साहित्यिक माहौल से निरन्तर अंतर-क्रिया के द्वारा अर्जित की थी." कहना न होगा कि लेखों के चयन और विषयगत निर्धारण में संपादक की यह दृष्टि बराबर बनी रही है. यह एक आश्चर्यजनक संयोग ही हो सकता है कि नाटक, उपन्यास और कहानी से संबंधित लेखों में राकेश की समाजार्थिक सरोकार की भावना और रचनात्मक अंतर-क्रिया की पड़ताल लगभग प्रत्येक लेख में हुई है.

धर्मवीर भारती की कविता 'खाली हाथ' इस अंक का विशेष आकर्षण है. और लेखों में सुरेश सेठ के यादों के वीराने और प्रताप सहगल का राकेश के नाट्य सरोकार और जयदेव तनेजा का 'लहरों के राजहंस' पर लेख अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण बन पड़े हैं. सत्येंद्र कुमार तनेजा का लेख 'प्रसाद और राकेश' दो नाटककारों में एक सेतु बनाता हुआ रचना संदर्भ और काल की शाश्वतता पर प्रकाश डालता है. डॉ. विनय के लेख में घर और मोहन राकेश की रचनाधर्मिता की पड़ताल की गयी है. डॉ. रतनलाल शर्मा और पुष्पपाल सिंह के लेख भी राकेश के अंतर्जगत को विशेष रूप से अभिव्यक्त करते हैं. नरेंद्र मोहन के लेख में रचनाकार के बड़प्पन और विकसित आलोचनात्मक बुद्धि का संयोग बिठाया गया है. कुल मिलाकर यह विशेषांक राकेश पर सर्जनात्मक आलोचना के स्तर की सामग्री देता है. बहुत अच्छा होगा, यदि यह सारी सामग्री पुस्तक रूप में भी प्रकाशित की जाये. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

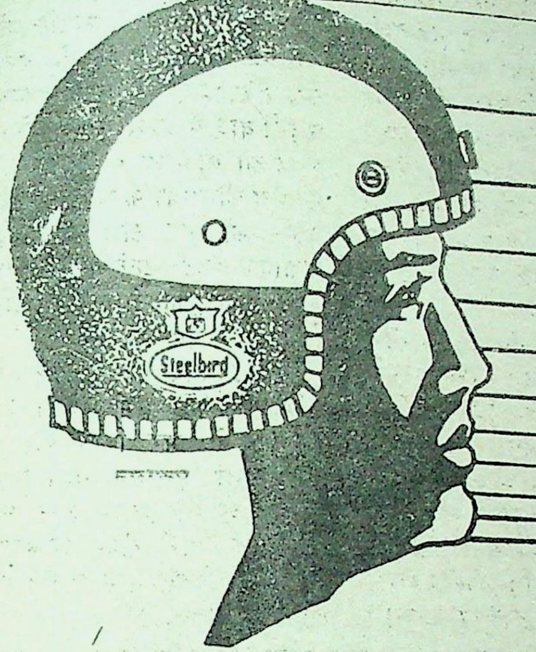

Steelbird®
HELMETS
your life guard
IS 4151 hi-reliability on road

ISI certified fibre glass helmets

NEW STEEL BIRD INDUSTRIES
2E/2, JHANDEWALAN EXTN.,
NEW DELHI-55. PHONE: 527849/525639

ANKUR

तन बदन का नूर
गंजी कोहिनूर
कोहिनूर

• गंजी
• जांघिया

कोहिनूर निटिंग मिल्स
कलकत्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशन विभाग की उत्कृष्ट नियतकालीन हिन्दी पत्रिकाएं

सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार का प्रकाशन विभाग विभिन्न विषयों से संबंधित हिन्दी की पाँच नियतकालीन पत्रिकाएं प्रकाशित करता है । ये सभी पत्रिकाएं अपने-अपने विषय से संबंधित सर्वोत्कृष्ट साहित्य पाठकों को बहुत ही कम मूल्य पर उपलब्ध कराती है ।

आज ही अपनी प्रति सुरक्षित करायें ।

	मूल्य एक प्रति रु० पै०	वार्षिक चन्दा रु० पै०	द्विवार्षिक चन्दा रु० पै०	त्रिवार्षिक चन्दा रु० पै०
* **आजकल (मासिक)** हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू भाषा में भी उपलब्ध । (आधुनिक साहित्य एवं संस्कृति का संवाहक मासिक ।)	1-50	15-00	27-00	38-00
* **बालभारती (मासिक)** बच्चों की सचित्र, रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक संपूर्ण मासिक पत्रिका	1-50	15-00	27-00	38-00
* **कुरुक्षेत्र (मासिक)** ग्रामीण पुनर्निर्माण पर उत्कृष्ट पत्रिका	1-50	15-00	27-00	38-00
* **योजना (पाक्षिक)** देश के बहुमुखी विकास एवं योजना की निष्पक्ष समीक्षा करने वाली पत्रिका	1-50	30-00	53-00	75-00

उपरोक्त पत्रिकाओं में से किसी भी एक पत्रिका का ग्राहक बन जाने पर प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित सभी प्रकाशनों की खरीद पर 10% की छूट । विभिन्न विषयों पर भारत की सभी भाषाओं में उपयोगी पुस्तकें उपलब्ध हैं निःशुल्क सूची-पत्र मंगाए । चन्दे की अग्रिम राशि बैंक ड्राफ्ट/मनिआर्डर/भा०पो०आर्डर द्वारा हमारे निम्न में से किसी भी एक कार्यलय को भेंजें ।

(डाक खर्च मुफ्त)

संपर्क करें
व्यापार व्यवस्थापक,
विक्रय केन्द्र,
प्रकाशन विभाग

- पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110 001
- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल) कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110 001
- बिहार स्टे. को-आपरेटिव बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800 004
- 10-बी स्टेशन रोड, लखनऊ-226 001
- 8, एसप्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700 067
- कामर्स हाउस (दूसरी मंजिल), करीम भाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई-400 038
- एल.एल.ए. आडिटोरियम, अन्ना सलै मद्रास-600 002
- स्टेट आर्कीलाजिकल म्यूजियम बिल्डिंग, पब्लिकगार्डन, हैदराबाद-500 004
- प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम-695 001

डी.ए.वी.पी 85/284

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित सस्ती, सुंदर और ज्ञानवर्द्धक पुस्तकें

1.	पूर्ण कुंभ	रानी चंद	11.25
2.	आखिर जो बचा	बुच्ची बाबू	8.50
3.	सुदामा के चावल	श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर	12.00
4.	स्वतंत्रता संग्राम	विपिनचंद्र, अमलेश त्रिपाठी तथा वरुण डे	11.50
5.	गांधी एक जीवनी	कृष्ण कृपलानी	9.25
6.	सूरदास	ब्रजेश्वर वर्मा	4.50
7.	भगवान महावीर	जगदीश चंद्र जैन	4.00
8.	मौसम शस्त्र	एन. शेषगिरि	14.75
9.	हम और हमारा आहार	के. टी. अच्चया	7.50
10.	हम और हमारा स्वास्थ्य	वी. एन. भावे एवं अन्य	21.50
11.	बैलगाड़ियां और उपग्रह	मोनिशा बॉब	5.00
12.	प्रदूषण	एन. शेषगिरि	2.50
13.	स्वराज्य की कहानी (भाग 1–2)	विष्णु प्रभाकर	2.50 प्रत्येक
14.	प्रेमचंद	अमृत राय	2.50
15.	हमारा नाटक	डा. हरिकृष्ण देवसरे	7.50
16.	भारत के त्योहार	संकलित	12.00
17.	पांच कहानियां	संपादक–मोहिनी राव	4.00
18.	टूटा पंख और अन्य कहानियां	बेलिंदर धनौआ	2.50
19.	महाभारत	के. कुटुंबराव	2.50
20.	इंद्रधनुष	उषा जोशी	2.50

प्राप्ति स्थान

सभी प्रमुख पुस्तक विक्रेताओं तथा ट्रस्ट के निम्नलिखित पुस्तक केंद्रों से––

ए–4, ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016
67/2, महात्मा गांधी मार्ग, कलकत्ता–9
सिटी सेंट्रल लाइब्रेरी बिल्डिंग, अशोक नगर, हैदराबाद-20
गवर्नमेंट हायर सेकेंड्री स्कूल, टाउन हाल, अमृतसर
यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, विश्वभारतीय यूनिवर्सिटी, शांति निकेतन (प. बंगाल)
यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, मानस गंगोत्री, मैसूर-575006
सिडको बिल्डिंग, सेक्टर 1, दूसरा माला, वशी, नयी बंबई
पूर्वी खंड, दूसरा तल्ला, जयानगर शापिंग कम्पलेक्स, बंगलूर

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ए–5, ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"एकला चलो रे"

सत्य पथ पर
आपके अग्रसर होने का
दृढ़ निश्चय ।
आपका साहस
आपका नेतृत्व
विपन्न और दलितों के प्रति
आपकी चिंता ।
भारत और भारतीयता
के प्रति आपकी आस्था ।
सर्वत्र मानवाधिकारों
के प्रति आपका संघर्ष ।
हमें स्मरण आता है,
आता रहेगा ।
आपके स्मरण का
सही ढंग हम जानते हैं —
वह है अटूट एकता
और देश निर्माण ।

शांति और सद् भाव की
एक सतत् स्मृति ।

डीएवीपी 85/296

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

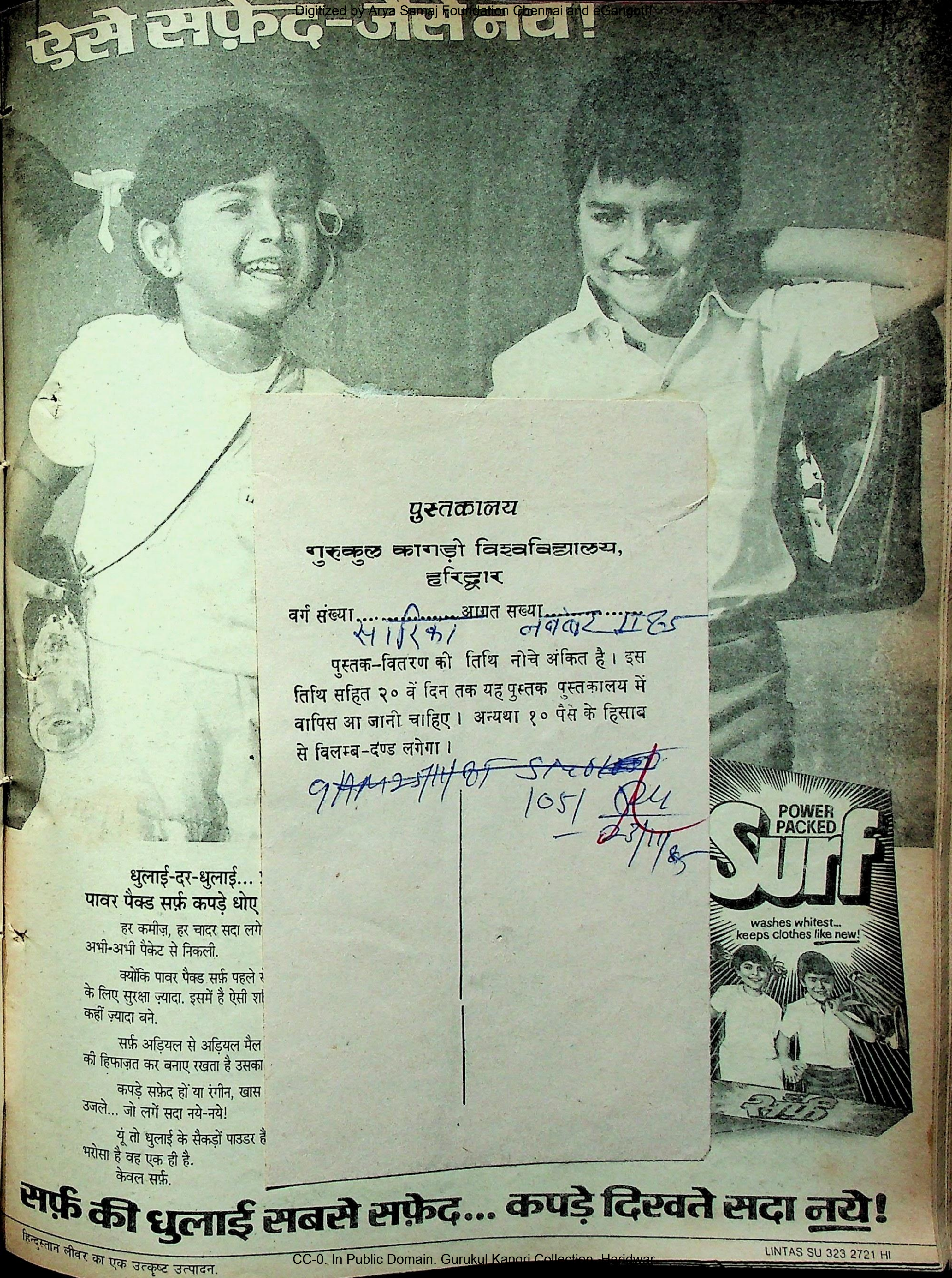

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार
वर्ग संख्या............ आगत संख्या............
सारिका नवम्बर II 85
पुस्तक-वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित २० वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा १० पैसे के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे सफ़ेद

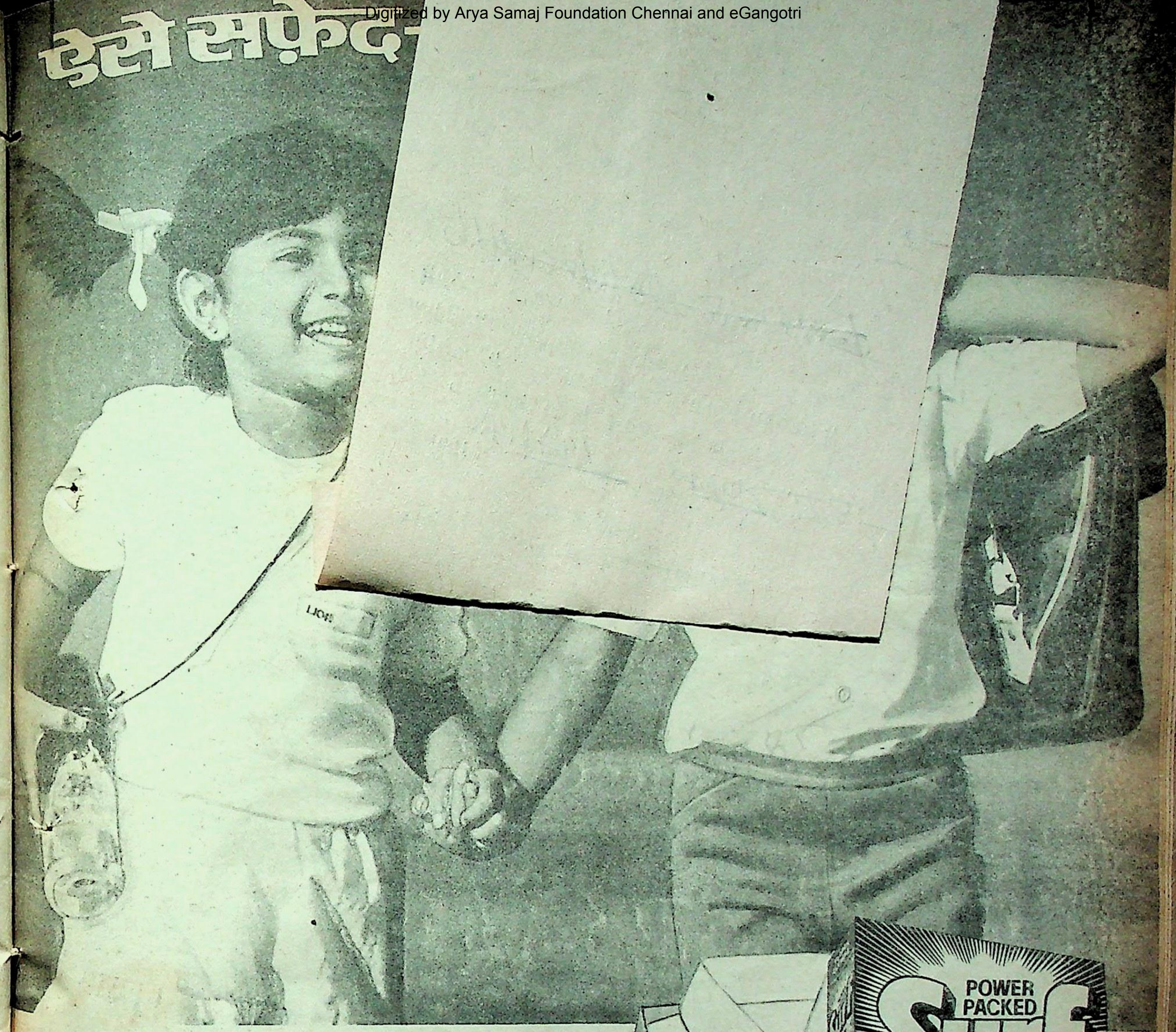

धुलाई-दर-धुलाई... प्रति धुलाई.
पावर पैक्ड सर्फ़ कपड़े धोए ऐसे सफ़ेद—जैसे नये!

हर कमीज़, हर चादर सदा लगे कोरी-कोरी, शानदार, सफ़ेद. बिल्कुल वैसी ही नयी जैसे अभी-अभी पैकेट से निकली.

क्योंकि पावर पैक्ड सर्फ़ पहले से कहीं ज़्यादा बेहतर है... धुलाई की शक्ति ज़्यादा... कपड़ों के लिए सुरक्षा ज़्यादा. इसमें है ऐसी शक्ति जो गहरी सफ़ाई-धुलाई करे... और झाग भी पहले से कहीं ज़्यादा बने.

सर्फ़ अड़ियल से अड़ियल मैल को साफ़ कर कपड़ों में ले आता है टिकाऊ सफ़ेदी और कपड़े की हिफाज़त कर बनाए रखता है उसका नयापन.

कपड़े सफ़ेद हों या रंगीन, खास मौकों के या रोज़ाना के, सर्फ़ से सभी धुलें सबसे सफ़ेद, सबसे उजले... जो लगें सदा नये-नये!

यूं तो धुलाई के सैकड़ों पाउडर हैं मगर अपने परिवार के सारे कपड़ों के लिए जिस पर आपको भरोसा है वह एक ही है.
केवल सर्फ़.

सर्फ़ की धुलाई सबसे सफ़ेद... कपड़े दिखते सदा नये!

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन.

LINTAS SU 323 2721 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अगला अंक

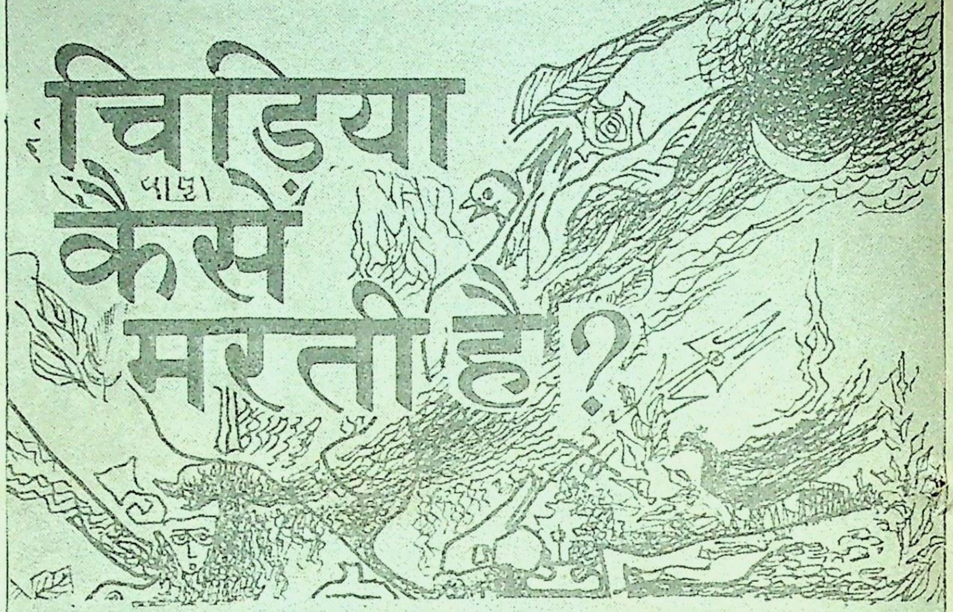

भारत की प्रतीक—सोने की वह चिड़िया जो गुलामी के गुमनाम गुमाशतों में गर्त हो गयी थी. स्वाधीनता के बाद फिर चहक उठी. मगर फिर सहसा ऐसा क्यों हुआ कि खुले आसमान में परवाज करती इस चिड़िया के पंख कट गये? इस 'पर-कटी' चिड़िया ने हिंदी कहानी पर क्या प्रभाव डाला और उसे कौन-सी दिशा देते हुए अभिव्यक्ति के कौन-कौन से आयाम सृजित किये?—जवाब दे रहे हैं हिंदी के वे कथाकार जिन्होंने स्वाधीनता और गणतंत्र के भ्रम एवं परिवेश के संत्रास से उबर कर, यथार्थ को अभिव्यक्त करने वाला रास्ता चुना !...इनकी एक दर्जन से भी अधिक कहानियां प्रस्तुत कर रहा है—सारिका : रजत जयंती वर्ष का तेइसवां उपहार—

कथा-पीढ़ी विशेषांक: चार

गोविंद मिश्र, स्वयं प्रकाश, मृणाल पांडे, मृदुला गर्ग, अशोक अग्रवाल, राकेश वत्स, व्रजेश्वर मदान, सूर्य बाला, राजी सेठ, बटरोही, नमिता सिंह, स्वदेश दीपक, विजयकांत आदि की ताजातरीन और सशक्त कहानियां.

- तुम्हारी रोशनी में

गोविंद मिश्र के सद्यः प्रकाशित उपन्यास पर सर्वश्री जैनेंद्र कुमार, अमृतलाल नागर, अमृतराय, विष्णु प्रभाकर, श्रीलाल शुक्ल, बटरोही, गिरिराज किशोर, चंद्रकांत बांदिवडेकर आदि लेखकों की पत्र-प्रतिक्रियाएं.

- आपकी बात, अपनी बात, पखवारे की पुस्तकें, लघुकथा आदि स्थायी स्तंभों सहित—

सारिका 1-15 दिसंबर, 1985

हर वर्ग और उम्र के पाठक के लिए पठनीय एवं संग्रहणीय दस्तावेज

पाठकों की बचत एवं सुविधा के लिए

हमें अक्सर पाठकों से शिकायती-पत्र मिलते हैं कि उन्हें 'सारिका' अपने बुक स्टॉल पर मिल नहीं पाती, उनके पहुंचने से पहले ही सारी प्रतियां बिक जाती हैं. पाठकों की सुविधा के लिए हम उन्हें सलाह देंगे कि वे अपना शुल्क आज ही ड्राफ्ट/मनीआर्डर के रूप में नीचे दिये गये कूपन के साथ हमें भिजवा दें ताकि उन्हें 'सारिका' डाक से नियमित भिजवायी जा सके.

शुल्क की रियायती दरें :

वार्षिक : 115 रुपये

अर्धवार्षिक : 60 रुपये

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह माह के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम.....................

पता.....................

....

....

हस्ताक्षर.....................

शुल्क तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें :
प्रसार अधिकारी,
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुर शाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002.